गणेश पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन

CULTURAL STUDY OF GANESH PURANA

डी० फिल० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

पर्यवेक्षिका
डॉ० पुष्पा तिवारी
वरिष्ठ प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास, सस्कृति एव पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोधकर्ता
रचना पाण्डेय

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

2002

पर्यवेक्षिका का प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोध प्रबध **'CULTURAL STUDY OF GANESH PURANA' (गणेश पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन)** विषय पर श्रीमती रचना पाण्डेय द्वारा मेरे निर्देशन मे लिखा गया है।

यह मौलिक कार्य है, जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी॰ फिल॰ उपाधि के शोध प्रबध की सभी अनिवार्यताओ /औपचारिकताओ को पूरा करता है।

पुष्पा तिवारी
डॉ0 पुष्पा तिवारी
पर्यवेक्षिका
वरिष्ठ प्रवक्ता
प्राचीन इतिहास, सस्कृति
एव पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

अनुक्रम

भूमिका I-XII

प्रथम अध्याय 1-44

गणेश की उत्पत्ति

द्वितीय अध्याय 45-104

गाणपत्य सप्रदाय का विकास

तृतीय अध्याय 105-166

गणेश पुराण मे सामाजिक एवं आर्थिक बोध

चतुर्थ अध्याय 167-220

गणेश पुराण मे धार्मिक एवं दार्शनिक तत्व

पचम अध्याय 221-260

गणेश पुराण में गणेश का प्रतिमा-स्वरूप

षष्ठ अध्याय 261-269

उपसंहार

परिशिष्ट

भूमिका

प्राचीन भारतीय धर्म एव दर्शन का अध्ययन प्राच्य विद्या (ओरियटलिज्म) एव भारत विद्या (इडोलॉजी) के अतर्गत 18वी-19वी शताब्दी मे पाश्चात्य और भारतीय विद्वानो द्वारा विशुद्ध रूप से किया गया था। स्वतत्रता प्राप्ति के बाद इस दिशा मे नयी ऐतिहासिक शोध पद्धति के अतर्गत कतिपय विद्वानो ने धर्म का अध्ययन समाजशास्त्रीय और नृतत्वशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य मे किया है। इसमे मार्क्सवादी इतिहासकारो, विशेष रूप से डी०डी० कोशाम्बी, मैक्समूलर, विलियम जोस, वेबर आदि की इतिहास-दृष्टि नयी और मौलिक है। रेडफील्ड ने समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य मे धर्म के अध्ययन का नया आयाम प्रस्तुत किया। उन्होने महत्तर तथा लघुतर परम्परा की दृष्टि से पुराणो के अध्ययन की अनन्त सम्भावनाये प्रस्तुत की है। उनमे उक्त दोनो परम्पराओ का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। कुणाल चक्रवर्ती ने हाल ही मे प्रकाशित अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक 'द बगाल पुराणाज' मे बगाल के पुराणो की व्याख्या करते हुये रेडफील्ड तथा श्रीनिवास के 'ब्राह्मणाइजेशन' (ब्राह्मणीकरण) तथा 'सस्कृताइजेशन' (सस्कृत भाषा का परिधीय क्षेत्रो मे विस्तार) के सन्दर्भ मे बगाल के शाक्त सम्प्रदाय एव परम्पराओ की व्याख्या की है। प्राय धर्म का अध्ययन आदर्शो, मूल्यो, अवधारणाओ, विश्वासो, सिद्धातो जैसे अभूत तथ्यो के आधार पर किया जाता है। मिथक और मीमासा इसके अभिन्न अग माने जाते है। प्रतीकात्मकता, आध्यात्मिकता एव रहस्यवादिता के साथ कर्मकाण्ड के यथार्थ एव ठोस धरातल का भी अध्ययन किया जाता है। 'कर्मकाण्ड' शून्य मे नही उत्पन्न हो सकते।उनकी एक निश्चित मनौवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक एव राजनैतिक पृष्ठभूमि देश एव काल की सीमाओ के भीतर होती है। धर्म के सामाजिक आयामो का अध्ययन भी स्वतत्रता प्राप्ति के बाद के इतिहास-लेखन मे प्रारभ हुआ।

भारतीय धर्म और उससे सम्बद्ध विविध पक्षो के अध्ययन की अनत सम्भावनाये ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत समाहित है। इतिहासकार एव धार्मिक भाष्यकार की दृष्टि धर्म के प्रति अलग-अलग होती है। इतिहासकार धर्म का अध्ययन देश-काल के सन्दर्भ मे करता है। वह उन कारणो को उद्घाटित करना चाहता है जो किसी निश्चित देश-काल की सीमाओ मे विशिष्ट तरह के धर्मो को जन्म देते है। इस आधार पर देखा जाय तो प्रस्तुत शोध विषय 'गणेश पुराण का सास्कृतिक अध्ययन' मे शोध की अनन्त सम्भावनाये अतर्भूत है।

गणेश को केन्द्र मे रख कर ही गणेश पुराण का सास्कृतिक अध्ययन सभव है। गणेश अपने स्वरूप की विस्मयकारी छवियो और व्याख्याओ के साथ भारत के सास्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक चिन्तन-धारा मे विद्यमान है। गणेश पुराण इस चिन्तन-धारा को आलोकित तो करता ही है, पौराणिक काव्य की विशिष्ट शैली से भी परिचित कराता है। अत शोध के लिए यह बहुत उपयुक्त और महत्व का विषय है।

गणेश की उपासना प्राचीन काल से जनसाधारण मे प्रचलित रही है। साहित्य, कला एव लोकपरम्परा मे उनकी उपासना से सबधित विविध आख्यान, गणेश के स्वरूप के भेदोपभेद तथा व्रत-पर्व आदि अनेक रूपो मे आज तक विद्यमान है। 'गणेश पुराण' तथा 'मुद्गल पुराण' दोनो ही गाणपत्य सम्प्रदाय के अध्ययन हेतु सर्वाधिक विशद् एव महनीय स्रोत है। लेकिन अभी तक इन पुराणो का ऐतिहासिक सन्दर्भ मे, अन्य पौराणिक साक्ष्यो के साथ, तुलनात्मक अध्ययन नही किया जा सका है। गोकि यह अध्ययन अनिवार्य और उपयोगी है।

गणेश का पौराणिक स्वरूप विभिन्न सास्कृतिक धाराओ के पारस्परिक अन्तर्भावन का प्रतिफल है। वैदिक वाड्मय मे 'गण' और 'गणपति' एक सामान्य नाम था। उत्तरवैदिक काल तक 'विनायक' नाम भी उल्लिखित हुआ है। अथर्वशिरस् उपनिषद् मे रुद्र को 'विनायक' कहा गया है। महाभारत मे गणेश्वरो और विनायको का देवताओ के साथ उल्लेख हुआ है और उन्हे सर्वत्र विद्यमान माना गया है। मानवगृह सूत्र मे शालकटकट, कुष्माण्डराजपुत्र, उस्मित् तथा देवयजन का उल्लेख हुआ है, जिनसे ग्रसित होने पर मनुष्य विविध प्रकार के दु स्वप्न देखता है, अनेक विघ्नो से आक्रात हो जाता है। इन उल्लेखो से सभावित लगता है कि रुद्र के शिव-परम्परा मे पूर्णतया समाहित होने के कारण गणपति भी शिव परिवार के अग बन गये होगे। इसी प्रकार रुद्र को अथर्वशिरस् उपनिषद् मे विनायक कहने की परम्परा ने विनायक और गणपति को एकाकार कर दिया होगा। विनायक द्वारा विघ्न उपस्थित करने की कल्पना से ही विघ्नप्रदाता, विघ्नविनाशक आदि के रूप मे गणपति या गणेश की अवधारणा विकसित हुई। विनायको की शान्ति के लिये किये जाने वाले कृत्य भी महत्वपूर्ण है। इन कृत्यो मे सरसो के तेल से विनायको को आहुति दी जाती है तथा चत्वर पर धान या चावल के साथ पकी और कच्ची मछली रखी जाती है। इसप्रकार का कृत्य विनायको को निश्चय ही वैदिकेतर सिद्ध करता है। यह कहा जा सकता है कि गणेश अवैदिक देव है तथा उनका उद्भव मानवगृह सूत्र के चार दुष्ट विनायको से माना जा सकता है। विनायक का अस्तित्व लोकदेवता और ग्रामदेवता दोनो ही रूपो मे प्रचलित था। याज्ञवल्क्य स्मृति मे इन चारो विनायको का समजन करके एक विनायक का स्वरूप दिया गया। स्कद या कार्तिकेय या कुमार, मौलिक रूप मे एक

अन्य ग्रामदेवता है, जिन्हे महाभारत मे विघटनकारी कहा गया है। कालान्तर मे स्कद देव सेनापति बन जाते है और ब्राह्मण देव समूहो मे सम्मिलित हो जाते है। विनायक अब कार्तिकेय के दुष्ट आत्माओ के समूह के प्रमुख बन जाते है।

याज्ञवल्क्य स्मृति मे विनायक के ब्राह्मणीकरण का प्रथम चरण प्रारभ होता है। उन्हे अम्बिका के पुत्र के रूप मे रखा गया है। गुप्तोत्तर काल के पुराणो मे वह शिव और पार्वती के पुत्र बन जाते है। इसी काल मे वे शिव गणो के नेता बन जाते है। इसप्रकार विनायक गणेश, धीरे-धीरे गणो के प्रमुख, ब्राह्मण धर्म के प्रमुख देव एव शिव और पार्वती के पुत्र के रूप मे कल्पित होते है। शिव-पार्वती के पुत्र के रूप मे वे बाधाओ और विपत्तियो को दूर करने वाले विघ्नहर्ता, सिद्धिदाता, भाग्य प्रदाता बन जाते है। मानवगृहसूत्र और याज्ञवल्क्य स्मृति के विनायक के ब्राह्मणीकरण की प्रक्रिया पुराणो मे जाकर पूरी होती है। विनायक एक नियमित और असीमित परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरते है तथा ब्राह्मण देव समूह के प्रमुख देवताओ के समकक्ष की स्थिति प्राप्त कर लेते है। विनायक और गणेश के रूप मे उनके व्यक्तित्व की द्वद्वात्मक प्रकृति से उन्हे लोकप्रियता मिली। विनायक ग्राम देवता के रूप मे विघ्नहर्ता है, जबकि गणेश के रूप मे एक पौराणिक देव विघ्नहर्ता है। ब्राह्मण देव समाज मे शिव-पार्वती के पुत्र रूप मे ऊँचा स्थान उन्हे प्राप्त हुआ। इस स्तर को प्राप्त कर लेने के बाद पुराण स्वय उनकी विलक्षण विशेषताओ की व्याख्या करते है।

ब्राह्मण देव-समाज मे गणेश के तीव्र उत्थान का प्रमुख कारण गाणपत्य सम्प्रदाय का उद्विकसित होना भी है। 'गाणपत्य' आरम्भ मे गणपति या गणेश के उपासक थे। उनके लिये गणेश वास्तविक सत्य थे। शिव, विष्णु तथा अन्य देवो से भी उच्च। इस विचारधारा को समाज मे स्थापित करने तथा अपने आराध्य को लोकप्रिय बनाने के लिये गाणपत्यो द्वारा श्रुति, स्मृति और पुराणो के समानातर नया साहित्य रचा गया। गाणपत्य साहित्य की प्रमुख रचना 'गणेश पुराण' है। इसमे गणेश के जन्म से सम्बन्धित रोचक आख्यान है, जिनमे एक ओर सभी देवो से ऊँचे उन्हे प्रतिष्ठित-स्थापित करने की भावना सन्निहित है, दूसरी ओर, उनके गजवदन होने के मूल मे पौराणिकेतर तत्व का समावेश है। 'गणेश पुराण' मे गणेश के अवतारवाद, स्वरूप, सगुण, निर्गुण, दर्शन, जनजीवन से सम्बन्धित विभिन्न परम्पराओ का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है।

गणेश के प्रतिमा स्वरूप को समझने मे भी 'गणेश पुराण' सहायक है। कुमारस्वामी ने यह संभावना व्यक्त की थी कि गणेश प्रतिमा का मूल, अमरावती स्तूप से मिले एक उष्णीष पर अकित गजमुखी यक्षो से स्थापित किया जा सकता है। गणेश के प्रतिमा लक्षण का प्रथम उल्लेख वृहत्सहिता मे है, जिसमे उन्हे द्विभुजी तथा हाथ मे परशु और मूली लिये हुये प्रदर्शित

करने का विधान है। उल्लेखनीय है कि गणेश पुराण मे कलिपूज्य गणपति के वर्णन मे उन्हे द्विभुजी ही बताया गया है। यद्यपि उन्हे चतुर्भुजी, बहुभुजी, सर्पयज्ञोपवीती आदि रूपो मे भी वर्णित किया गया है। यह वर्णन विष्णुधर्मोत्तर पुराण से मेल खाता है। इस प्रकार गणेश पुराण मे एक ओर प्राचीन परम्पराओ का निर्वहन दिखाई देता है, दूसरी ओर, नवीन परम्पराएँ भी स्थापित हुयी है। नगर, खर्वर, ग्राम आदि मे गणेश के विभिन्न स्वरूपो की प्रतिष्ठा का उल्लेख भी गणेश पुराण मे आया है। इसमे अन्य पुराणो की ऐसी सामग्री बहुतायत से प्राप्त होती है, जिनका अध्ययन अभी तक नही हो सका है। कालान्तर मे विकसित होने वाले नृत्तगणपति, महागणपति, उच्छिष्टगणपति आदि का तथ्यपरक उल्लेख भी गणेश पुराण करता है। गणेश प्रतिमाओ का निर्माण तीसरी-चौथी शताब्दी मे आरभ हो गया था। यद्यपि हुविष्क के सिक्के पर धनुष तथा बाण धारण किए एक आकृति के नीचे 'गणेश' अकित है, लेकिन गजवदन गणेश से उसे सम्बन्धित करना उचित नही लगता। मथुरा सग्रहालय मे गुप्तकालीन गणेश मूर्तियाँ सग्रहीत है। इसीप्रकार उदयगिरि, अहिच्छत्रा, भीतरगाँव, देवगढ, राजघाट आदि से प्राप्त प्रतिमाएँ भी प्रारम्भिक कोटि मे रखी जा सकती है। पूर्वमध्यकाल मे गणेश का स्वरूप और अधिक जटिल हो जाता है। अशुमदभेदागम, सुप्रभेदागम, अपराजितपृच्छा, विष्णुधर्मोत्तर पुराण आदि मे गणेश के इसी जटिल एव सकुल स्वरूप का उल्लेख है। गणेश पुराण के विवरणो के साथ इन सबका तुलनात्मक अध्ययन ऐतिहासिक एव कलात्मक विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण जान पड़ता है।

गणेश की ब्राह्मण देवसमूह मे स्वीकारोक्ति और उनका उत्थान स्पष्टत कला मे व्यक्त हुआ है। मौलिक रूप मे विनायक दुष्टात्मा व केवल द्विभुजी है, किन्तु पौराणिक देवता के रूप मे वे चतुर्भुजी और बहुभुजी है। वे हाथो मे भिन्न-भिन्न प्रकार के आयुध तथा वस्तुएँ धारण किये हुये है। सर्वप्रथम वे शिव मन्दिर मे विनीत स्थिति मे है, अर्थात् द्वार देवता है। अग्रमण्डप, मुखमण्डप और अर्द्धमण्डप की दीवारो पर पार्वती के साथ अकित है। मदिर की दीवारो के गवाक्षो मे शिव के अनुचर देव के रूप मे, शिव से सन्दर्भित पौराणिक घटनाओ के अंकन मे गौण भूमिका मे दिखाई देते है। बाद मे, शिव मदिरो मे वे परिवार देवता या पार्श्व देवता के रूप मे अकित होने लगे। अतत स्वतत्र रूप से गणेश के लिये मदिरो का निर्माण प्रारभ हुआ, जिसमे वे मुख्य गर्भगृह मे प्रतिस्थापित हुये। महाबलीपुरम् मे पल्लवकालीन एकाश्मक रथ-मदिरो की शृंखला मे गणेश-रथ भी प्राप्त होता है।

गणेश पुराण मे विभिन्न व्रतो एव पर्वो का उल्लेख भी है। इन पर्वो और व्रतो मे किये जाने वाले कृत्यो से लौकिक एव पौराणिक पक्षो के परस्पर अन्तरावलम्बन पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। मत्स्य पुराण मे वर्णित विभिन्न पर्व-तिथियो एव गणेश पुराण की उन्ही पर्व-

तिथियो के कर्मकाण्ड मे कतिपय अतर भी परिलक्षित होता है, जिनके विश्लेषण के माध्यम से ऐतिहासिक-सास्कृतिक तथ्यो को उद्घाटित किया जा सकता है। इसीप्रकार गणेश पुराण मे आये तीर्थो का भौगोलिक ज्ञान भी गभीर शोध का विषय है।

गणेश पुराण ऐतिहासिक, पौराणिक और सास्कृतिक दृष्टि से भी स्वतत्र एव सपूर्ण अध्ययन के क्षेत्र मे अभी तक उपेक्षित ही रहा है। गाणपत्य सम्प्रदाय से सम्बधित कुछ विकीर्ण कार्य अवश्य प्रकाशित हुए है। सर्वप्रथम 1828 ई० मे एच०एच० विल्सन ने अपने लेख 'ए स्केच आफ द रिलिजियस सेकट्स ऑफ द हिन्दूज' (एशियाटिक रिसर्चेज, भाग-16, 1 8 28) के माध्यम से इस सम्प्रदाय की ओर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट हुआ। लेकिन इसमे ऐतिहासिक गवेषणा का अभाव था। इसीप्रकार डब्लू०वी० स्टीवेन्सन ने 'एनालिसिस ऑफ 'गणेश पुराण' (जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, भाग-8, 1845) के माध्यम से पहली बार विद्वानो के समक्ष गणेश पुराण के वर्ण्य विषय को रखा। स्टीवेन्सन की यह मान्यता है कि गणेशोपासना से सम्बन्धित कर्मकाण्ड बौद्ध परम्परा का ही अनुपालन करते है। यह पुनर्विवेचनीय है तथा गणेश पुराण के सम्यक अध्ययन से निराकृत हो जाता है। काक्स ने 'दि माइथोलॉजी ऑफ द आर्यन नेशन्स' (लदन, 1870) मे लैटिन देवता 'कोनसस' तथा 'हेलेसिक' के साथ गणेश के उद्भव और स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डालने का स्तुत्य प्रयास किया। 1896 ई० मे क्रुक ने गणेश को 'एनिमल कल्ट' मे पशु-पूजा परम्परा से उद्भूत मानते हुए उन्हे द्राविड़ सूर्य देवता के रूप मे स्वीकार किया। 1901 ई० मे हापकिन्स ने 'इपिक माइथोलॉजी' मे (स्ट्रेसबर्ग, 1913) मे यह विचार व्यक्त किया कि महाभारत मे उल्लिखित गणेश वास्तव मे परवर्ती प्रक्षेप है। उनके इस विचार का समर्थन विंटरनित्स ने भी किया। 1913 ई० मे आर०जी० भण्डारकर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजियस सिस्टम्स' द्वारा बौद्धेत्तर अवधि से लेकर शकराचार्य तक गाणपत्य सम्प्रदाय की रूपरेखा प्रस्तुत की। इस अध्ययन की महत्ता निर्विवाद है परन्तु इसमे प्रतिमापरक साक्ष्यो का विवरण प्राप्त नही होता। इसीप्रकार 1914-16 ई० मे प्रकाशित टी०ए० गोपीनाथ राव की कृति 'एलिमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी' मे गणेश के विभिन्न स्वरूपो की चर्चा करते हुए उनके प्रतिमा लक्षणो पर प्रकाश डाला गया है। 1920 ई० मे जे०एन० फर्कुहर ने 'आउटलाइन ऑफ द रिलिजियस लिटरेचर इन इण्डिया' मे गणपति उपनिषद, गणेश सहिता, गणेश पुराण, मुद्गल पुराण व गणेश गीता आदि ग्रन्थो का उल्लेख किया है। 1936 ई० मे एलिस गेटी की पुस्तक 'गणेश' के प्रकाशन ने साहित्य, प्रतिमापरक उदाहरण तथा सहिताओ के प्रतिमा-लक्षण आदि के आधार पर गणेश से सम्बन्धित सभी पक्षो का विस्तार से उद्घाटन किया। यह ग्रन्थ आठ अध्यायो मे विभाजित है। यद्यपि इस कृति मे ऐतिहासिक तिथिक्रम के सदर्भ

मे विवेचना का अभाव है। गेटी ने बौद्धधर्म मे गणेश के स्वरूप पर भी प्रकाश डाला है। 1936 ई० मे पहली बार गणेश के सन्दर्भ मे सर्वथा नवीन दृष्टिकोण ए०के० कुमारस्वामी के 'गणेश' (बुलेटिन ऑफ द म्यूजियम ऑफ फाइन आर्ट्स, बॉस्टन, खण्ड-XXVI सख्या-154), तथा अमूल्य चरण विद्याभूषण का 'गणेश एण्ड द इमेजेज ऑफ गणेश' (बगाली, प्रवासी, 1936) लेखो मे प्रकाशित हुआ। 1938 ई० मे रायकृष्ण दास ने गणेश-पूजा, परम्परा और प्रतिमा विज्ञान के सन्दर्भ मे एक विस्तृत विवरण 'श्री गणेश' शीर्षक लेख के अतर्गत (नागरी प्रचारिणी पत्रिका, XLIII) प्रस्तुत किया। एच०डी० साकलिया ने 'जर्नल ऑफ इडियन हिस्ट्री' के भाग 18, अक 1-3 मे अपने लेख के माध्यम से जैन धर्म और गणेश के परस्पर सम्बधो पर प्रकाश डाला है। 1939 ई० मे इन्होने सेट जेवियर कॉलेज, बाम्बे के म्यूजियम ऑफ इडियन हिस्टारिकल रिसर्च इस्टीट्यूट मे सग्रहित कासे की मूर्तियो का वृहद विश्लेषण अपने लेख 'सिक्स डिफरेन्ट टाइप ऑफ गणेश फीगर्स' (जे०आई०एच० खण्ड- XVIII, पृ० 1-3, 1939) के अतर्गत किया। 1939-40 मे साकलिया ने पुन 'ए जैन गणेश ऑफ ब्रास' लेख मे (जैन एन्टीक्वेरी, खण्ड- V, 1939-40) मे पुन उन्ही तथ्यो को विश्लेषित किया। 1939 ई० मे डी०सी० सरकार ने अपने लेख 'द ऑस्पीशियस सिम्बल ऐट द बिगनिग ऑफ द इस्क्रिप्शन्स (पी०आई०एच०सी० III, 1939) मे गणेश के समानान्तर दक्षिण मे प्रचलित पिलैइयार सूली के सन्दर्भ मे नयी खोज प्रस्तुत की। 1940 ई० मे स्वामी हरिहरानद ने अपने लेख 'ग्रेटनेस ऑफ गणपति' (जे०, आई०, एस०, ओ०, ए०, खण्ड- VIII, 1940) मे गणपति को वैदिक परम्परा से जोड़ा। काणे ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र' के प्रथम भाग मे गणेश से सम्बन्धित स्मृतिपरक साक्ष्यो की विवेचना प्रस्तुत की है। 1941 ई० मे जे०एन० बैनर्जी ने गणेश की प्रतिमाओ का विकासात्मक अध्ययन अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'डेवलेपमेन्ट ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी' मे प्रस्तुत कर अध्ययन के नये आयाम की ओर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट किया है। 1941 ई० मे ही एच०डी० साकलिया ने प्रतिमा विज्ञान और गुजरात के पुरातात्विक तथ्यो के आधार पर गणेश के साथ अन्य पूज्य देवो को अपनी पुस्तक 'आर्केलॉजी ऑफ गुजरात' (बाम्बे, 1941) मे विश्लेषित किया। दक्षिण भारतीय ग्रथो के आधार पर गणेश के विविध रूपो का विवेचन सी०बी० सीथाराम द्वारा 'भारतीय विद्या' के अक XIII -1952 मे प्रस्तुत किया गया।

इसीप्रकार सम्पूर्णानद की प्रसिद्ध 'गणेश' (1944 ई०) तथा एच० मित्रा द्वारा लिखित 'गणपति' मे भी गाणपत्य सम्प्रदाय के उद्भव और विकास की विशद विवेचना की गयी है। 1972 ई० मे एच० हेराज की प्रकाशित पुस्तक 'द प्राब्लम ऑफ गणपति' मे भी गणेश के

सन्दर्भ मे नवीन विश्लेषण और तथ्य दिये गये है। इन समस्त अध्ययनो के पश्चात् भी गणेश पुराण की सामग्री का पूर्णत अध्ययन नही हो सका। 1951-52 ई० मे आर०सी० हाजरा ने पहली बार 'गणेश पुराण' के वर्ण्य विषय और उसकी तिथिपरक विवेचना प्रस्तुत की। 'गणेश पुराण' (गगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट IX 1951-52)। 1968 ई० मे कियोशी योरोई ने 'गणेश-गीता, ए स्टडी' (हेज, 1968) नामक ग्रन्थ मे गाणपत्य सम्प्रदाय से सम्बन्धित प्रचुर-स्रोत सामग्री पर प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त प्रो० पी०सी० श्रीवास्तव का 'हिस्टिरियोग्राफी ऑफ गणेश कल्ट' (के०सी० चट्टोपाध्याय मेमोरियल वाल्यूम) लेख भी इस क्षेत्र मे महत्वपूर्ण कार्यो की परपरा से जुडा है। इन अनुसधानपूर्ण कार्यो के बावजूद गणेश तथा गाणपत्य सम्प्रदाय से सन्दर्भित विभिन्न क्षेत्रो मे शोध व विश्लेषण की बहुत सभावनाएँ बची थी। ऐतिहासिक सदर्भो मे गणेश की परम्परा, महत्व, नवीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियो मे उनके उद्‌भव व विकास की आवश्यकता का परीक्षण करना अभी भी शेष था।

परिवर्तित होती भौतिक परिस्थितियो के अनुरूप मानवीय आवश्यकताएँ भी बदल जाती है। बदलती भौतिक परिस्थितियाँ और मनुष्य के धार्मिक जीवन पर इसके प्रभाव के अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला गया कि सामाजिक परिवर्तन मनुष्य को नये विचारो और नयी आकाक्षाओ की प्रेरणा देते है, जिससे धार्मिक व्यवस्था के विभिन्न पहलुओ का नवीनीकरण होता है।

आधुनिक इतिहासकारो ने गणेश को एक कालक्रमिक ढाँचे मे रखकर परीक्षण करने का प्रयास किया है, जिसमे गणपति का आविर्भाव हुआ तथा उन कारणो को भी तलाशने की कोशिश की है कि वह क्यो धीरे-धीरे विभिन्न धार्मिक धाराओ मे स्थान बना लेने मे सक्षम होते है ? इन नवीन विचारको व विश्लेषको मे 1985 ई० मे पॉल बी० कॉर्टराइट, 'गणेश लार्ड ऑफ आब्सट्‌कल्स' - लार्ड ऑफ बिगनिग्स, 1991 ई० मे आर०एल० बाऊन (सम्पा) के 'गणेश · स्टडीज ऑफ एन एशियन गॉड', 1992 ई० मे जगन्नाथ शाकुन्थला एण्ड कृष्णा नदिता गणेश - द आस्पीशीयस, 1992 ई० मे ही शातिलाल नागर की 'द कल्ट ऑफ विनायक', 1997 ई० मे निर्मला यादव ने 'गणेश इन इण्डियन आर्ट एण्ड लिटरेचर', 1997 ई० मे अनिता रैना थापन ने 'अण्डरस्टैण्डिग गणपति', 1999 ई० मे युवराज कृष्णन ने 'गणेश , अनरिवेलिग एन एनिग्मा' के माध्यम से यह परीक्षण करने का प्रयास किया कि कैसे गणेश पर ब्राह्मणवादी मुलम्मा चढ़ाया गया। कैसे गाणपत्य सम्प्रदाय मध्यदेश से बाहर फैलकर सीमातो तक पहुँच गया। और कैसे इस विस्तार मे प्रातीय विश्वासो व परम्पराओ का समावेश होता गया। कैसे और कब गणपति वणिको व व्यावसायिक समूहो से जुड़ गये। क्यो गाणपत्य सम्प्रदाय अस्तित्व मे आया और कैसे गणपति विभिन्न धर्मो यथा बौद्ध, जैन, स्मार्त मे भी महत्वपूर्ण बन

गये। इन विचारको का विश्लेषण विश्वासो और व्यवहार की प्रातीय विविधता के साथ-साथ उन तत्वो पर भी प्रकाश डालता है जो किसी देवता को वृहद व विस्तृत फलक पर सार्वभौमिकता प्रदान करते है। इतना ही नही, इन विचारको ने गणपति से सम्बधित पौराणिक कथाओ और उन पर आधारित कर्मकाण्ड एव उपासना का विशद् विश्लेषण भी किया है। गणपति के पौराणिक व्यक्तित्व मे समाहित विभिन्न अन्तर्विरोधो और आयामो के कारणो पर भी प्रकाश डाला गया है। मिथकीय-पौराणिक गणपति की भूमिका तब ज्यादा स्पष्ट होती है जब उनकी तुलना पौराणिक देव समूह के अन्य द्वितीयक देवताओ से की जाती है। स्पष्ट है, आधुनिक शोधो व नवीन विश्लेषणो मे गणेश को उनकी मिथक व परम्परा के नवीन आयामो के अतर्गत अध्ययन करने का प्रयास किया गया है तथा हिन्दू सस्कृति, विभिन्न धर्मो, शास्त्रोक्त पद्धतियो व सामाजिक मनोविज्ञान आदि से गणेश के सम्बन्ध को विश्लेषित किया गया है।

गाणपत्य सम्प्रदाय के इतिहास-लेखन से सम्बधित उपर्युक्त निष्कर्षो की समीक्षा करते समय समस्त लेखन को तीन वर्गो मे रखा जा सकता है–

1 धर्म के सम्बन्ध मे किया गया इतिहास-लेखन

2 कला के सम्बन्ध मे किया गया इतिहास-लेखन

3 साहित्य के सम्बन्ध मे किया गया इतिहास-लेखन।

यहॉ यह उल्लेखनीय है कि धर्म एव कला से सम्बन्धित गाणपत्य विषयक इतिहास-लेखन तो बहुत समृद्ध और विस्तृत है। पर गाणपत्य सम्प्रदाय के विशिष्ट साहित्य से सम्बन्धित स्वतत्र इतिहास-लेखन लगभग नगण्य और उपेक्षित है। हाजरा के पश्चात् 'गणेश पुराण' पर विस्तृत अध्ययन नही हुआ। इतना ही नही, अग्रेजी या हिन्दी भाषा मे इसका अनुवाद तक अनुपलब्ध है। प्रस्तुत शोध-विषय 'गणेश पुराण का सास्कृतिक अध्ययन' का चयन दो महत्वपूर्ण बिन्दुओ को ध्यान मे रखते हुए किया गया है। प्रथमत , गणेश पुराण को उसके सम्पूर्ण वर्ण्य विषय के साथ सम्यक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे प्रस्तुत करना। द्वितीयत , गाणपत्य सम्प्रदाय के स्वतत्र अस्तित्व के आधारभूत मौलिक ग्रथ के रूप मे इसके महत्व की विवेचना करना। यद्यपि 'गणेश' शब्द की प्राचीनता वैदिक काल तक जाती है किन्तु पौराणिक देवता के रूप मे जिस गणेश की प्रतिष्ठा हुई, उसके विकास मे वैदिक, अवैदिक, श्रुति-स्मृति, आर्य-अनार्य, महत्तर एवं क्षुद्र लोक परम्पराओ आदि का योगदान दिखाई देता है। स्वतत्र सम्प्रदाय के रूप मे गाणपत्य धर्म गणेश के विकास की अतिम तथा सर्वोच्च अवस्था है। इस अवस्था का परिचय कराने वाला एकमात्र महत्वपूर्ण ग्रथ 'गणेश पुराण' है। 'मुद्गल पुराण' इसके समकक्ष है।

प्रस्तुत विषय को शोध के लिये चयन करने का उद्देश्य इस भ्रान्त धारणा की तर्कसगत समीक्षा करना भी है, कि गाणपत्य सम्प्रदाय मध्यकाल मे, विशेषकर पेशवाओ के समय मे, स्वतत्र सम्प्रदाय के रूप मे विकसित हुआ।

गणेश पुराण की सरचना के अनेक स्तर है। स्वय गणेश पुराण मे इसे कई व्यक्तियो द्वारा श्रवण करने और कराने का सन्दर्भ प्राप्त होता है। इसमे प्राचीन एव नवीन परम्पराओ का समावेश भी है। इन विविध ऐतिहासिक एव तिथिक परिप्रेक्ष्य मे क्रम निर्धारण करने का प्रयास इस शोध कार्य के माध्यम से किया गया है। गणेशोपासना के साथ-साथ इस पुराण से तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक पक्षो पर भी पर्याप्त प्रकाश पडता है। यद्यपि यह गणेश पुराण का प्रमुख प्रतिपाद्य नही है। फिर भी कथा एव उपासना के तारतम्य मे ऐसे तथ्य स्वत ही आ गये है।

गणेश पुराण पर शोध कार्य करने के लिये मैने 'श्री गणेश पुराणम्', नाग प्रकाशन, (पुनर्मुद्रित–1993) सस्करण को चुना है, जो पोथी शैली मे सस्कृत भाषा मे छपा है। इसका हिन्दी अनुवाद अभी तक उपलब्ध नही था। हिन्दी अनुवाद करने मे डॉ0 मनोहर लाल गौड, निवर्तमान विभागाध्यक्ष सस्कृत/हिन्दी, धर्म समाज स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अलीगढ का अकथ सहयोग मुझे प्राप्त हुआ। डॉ0 गौड़ हिन्दी तथा सस्कृत दोनो ही भाषाओ पर अद्‌भुत पकड़ रखने वाले विषय के निष्णात विद्वान् है। उनके सहयोग से सम्पन्न हुआ 'गणेश पुराण' का प्रथम हिन्दी अनुवाद स्वय मे ही एक महत् कार्य है। श्रमसाध्य भी है। मै हिन्दी अनुवाद मे सहयोग देने के लिए आदरणीय गौड जी की अनुग्रहीत हूँ।

गणेश पुराण के सास्कृतिक अध्ययन के अतर्गत ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एव दार्शनिक पटलो को सम्यकरूपेण विश्लेषित एव समीक्षित करने का प्रयत्न प्रस्तुत शोध ग्रथ मे है। अपने अध्ययन मे मैने शोध की ऐतिहासिक प्रणाली का ही प्रयोग किया है। यद्यपि समाजशास्त्रीय पद्धति का प्रयोग गणेश पुराण की रचना की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करने मे किया गया है। ऐतिहासिक प्रणाली का व्यवहार करते हुए 'गणेश पुराण' के समकालीन साहित्यिक, अभिलेखिक, मौद्रिक एव कलात्मक साक्ष्यो की सम्यक समीक्षा की गयी है। गाणपत्य सम्प्रदाय तथा गणेश पुराण से ज्ञात सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा कलात्मक पक्षो का तुलनात्मक विवेचन भी प्रस्तुत शोध मे किया गया है।

शोध-प्रबन्ध को पाँच अध्यायो मे बॉटा गया है।

प्रथम अध्याय मे गणेश की अवधारणा और प्राचीनता, वेदो मे उल्लिखित 'गणपति' से पौराणिक गणेश का समाकलन, गणेश पुराण को उपपुराण के अतर्गत रखने के लिये प्राप्त साक्ष्यो का परीक्षण, गणेश पुराण का काल निर्धारण आदि है। द्वितीय अध्याय मे गाणपत्य

सम्प्रदाय के उद्भव एव विकास, अभिलेखगत उल्लेख, गणेश पुराण के प्रतिपाद्य विषय की विवेचना करते हुये उसमे अतर्निहित सास्कृतिक पक्षो का अनुशीलन किया गया है। तृतीय अध्याय मे गणेश पुराण मे परिलक्षित सामाजिक एव आर्थिक स्थितियो का विश्लेषण है तथा पूर्वमध्यकाल मे होने वाले सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक परिवर्तनो का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किया गया है। इस काल मे मुद्राओ के अभाव से उत्पन्न ह्रासोन्मुखी अर्थ-व्यवस्था का आकलन किया गया है। चतुर्थ अध्याय मे धार्मिक एव दार्शनिक अवस्था का निरूपण करते हुये गणेश उपासना पर साख्य, योग, शैव, वैष्णव तत्वो, भक्ति परम्परा तथा तत्रोपासना के प्रभाव का विस्तृत विवेचन किया गया है। पचम अध्याय मे गणेश के प्रतिमा विज्ञान का अनुसधानपरक अध्ययन करके पौराणिक वाड्मय, आगमो तथा शिल्प-शास्त्रो मे उल्लिखित गणेश-प्रतिमाओ की गणेश पुराण मे वर्णित गणेश प्रतिमा से तुलनात्मक विवेचना है। पूर्व मध्यकाल की गणेश-प्रतिमाओ का अध्ययन भी इसी अध्याय मे है। गाणपत्य सम्प्रदाय के विकास तथा उसके द्वारा गणपति पूजा के प्रसार के लिये आवश्यक तत्वो को तलाशने का प्रयास भी प्रस्तुत शोध प्रबध मे दिखायी देगा।

प्रस्तुत शोध कार्य की सम्पूर्ति मे मेरे गुरुजनो, परिजनो, मित्रो एव अनेक विद्वत्जनो का अयाचित सहयोग एव मार्गदर्शन मुझे मिला है। इनके अभाव मे कदाचित् यह काम सभव ही न हो पाता। अतएव सबके प्रति कृतज्ञता जताना मेरा धर्म है। प्रस्तुत शोध कार्य डॉ पुष्पा तिवारी, वरिष्ठ प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास, सस्कृति एव पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के निर्देशन मे किया गया है। गुरु और ज्ञान एक दूसरे के पूरक और पर्याय है। इस तथ्य को मैने डॉ॰ तिवारी के साथ काम करते हुए अनुभव किया। वे इतिहास, पुरातत्व, सस्कृति, पुराण और कला की विदुषी है। उनके वैदुष्य, व्यक्तित्व और मानुष्य ने मेरे ऊपर बहुत प्रभाव डाला है। डॉ॰ तिवारी के आशीर्वाद, प्रोत्साहन और प्रेरणा से ही प्रस्तुत शोध कार्य वर्तमान स्वरूप मे सम्मुख है। यदि मैने उनके ज्ञान, अध्ययन और अनुभव का पूरा लाभ नही उठाया, तो यह मेरी पात्रता की कमी हो सकती है।

विभाग के अन्य पूज्य गुरुजनो प्रो बी एन एस यादव (पूर्व अध्यक्ष), प्रो एस एन राय (पूर्व अध्यक्ष), प्रो॰ एस॰सी॰ भट्टाचार्य (पूर्व अध्यक्ष) तथा प्रो॰ बी॰डी मिश्र (पूर्व अध्यक्ष) की सत्प्रेरणा मुझे निरन्तर प्रोत्साहित करती रही है। मै इनकी कृतज्ञ हूॅ। विभाग के वर्तमान अध्यक्ष डॉ ओमप्रकाश का स्नेह मुझे छात्र जीवन से मिलता रहा है। इनके अलावा डॉ आर॰पी॰ त्रिपाठी, डॉ॰ जी॰के॰ राय, डॉ॰ जे॰ एन॰ पाण्डेय, डॉ॰ जे॰एन॰ पाल, डॉ एच॰ एन॰ दुबे आदि गुरुजनो की भी मै विशेष रूप से आभारी हूॅ। इन सभी लोगो ने समय-समय पर अपने अमूल्य सुझावों से न सिर्फ काम को सुगम बनाया, बल्कि जल्दी पूरा करने की प्रेरणा भी दी। शोध के सदर्भ मे महत्वपूर्ण सुझावो के लिए मै विभाग के ही आदरणीय गुरुजन डॉ

डी०पी० दुबे और डॉ० सी०डी० पाण्डेय के प्रति आभार प्रकट करती हूॅ। डॉ० उदयशकर तिवारी, निदेशक, इलाहाबाद सग्रहालय एव डॉ० गयाचरण त्रिपाठी, पूर्व प्राचार्य, गगानाथ झा केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद के सत्परामर्शो से भी मै लाभान्वित रही हूॅ।

डॉ० कुवरपाल सिह (पूर्व विभागाध्यक्ष हिन्दी, अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय), डॉ रानी मजूमदार (रीडर, सस्कृत विभाग, अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय), प्रो० सत्यप्रकाश मिश्र (अध्यक्ष, सस्कृत विभाग, अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय) के प्रति मै कृतज्ञता प्रकट करती हूॅ। इन विद्वत्जनो के परामर्श, अपनत्व और आशीर्वाद का लाभ शोध कार्य के सदर्भ मे मुझे सर्वदा मिला है।

मेरी सहयोगी, लेकिन उससे भी अधिक मेरी अनन्य मित्र ममता श्रीवास्तव ने यथा अवसर बहुत कम समय मे अनेक पुस्तको से शोध-सामग्री मुझे उपलब्ध कराया है। शुभ्रा चतुर्वेदी ने अध्ययन के दौरान आये अवरोधो मे मुझे सतुलित रखा है। अच्छे और सचमुच के मित्रो से दुर्लभ होती जा रही इस दुनिया मे यह दोनो अपवाद है, इसलिए हमेशा स्मृति मे रहेगी। उम्मे कुलसुम और शालिनी चौधरी के सहयोग के लिए धन्यवाद ज्ञापन आवश्यक है।

विभागीय पुस्तकालय के श्री सतीशचन्द्र के प्रति भी मैं आभारी हूॅ। समय पडने पर उन्होने पुस्तके उपलब्ध करा के मेरी सहायता की है। इनके अलावा केन्द्रीय पुस्तकालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, गगानाथ झा केन्द्रीय शोध सस्थान, इलाहाबाद के पुस्तकालय, इलाहाबाद सग्रहालय के पुस्तकालय, अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय के सस्कृत और इतिहास विभाग के पुस्तकालय, सेन्टर फार आर्ट एण्ड आर्कलाजिकल अमेरिकन इस्टीट्यूट आफ इण्डियन स्टडीज के पुस्तकालय से भी मुझे शोधकार्य मे बहुत सहयोग मिला है। मै इन सभी के पुस्तकालय अध्यक्षो तथा अधिकारियो के प्रति आभार प्रकट करती हूॅ।

छायाचित्रो हेतु मथुरा सग्रहालय, मथुरा तथा सेटर फार आर्ट एण्ड आर्कलाजिकल अमेरिकन इस्टीट्यूट आफ इण्डियन स्टडीज, गुड़गॉव के आर्काज विभाग ने मेरी पूरी मदद की है। इनके निदेशको को मै धन्यवाद देना चाहूॅगी।

पिता और सतान के रिश्ते मे औपचारिकता नही, घनीभूत अपनत्व होता है। इसे सिर्फ अनुभव किया जा सकता है, व्यक्त नही किया जा सकता।मै सीधे-सीधे मन की बात कहना चाहूँगी कि मेरे आदरणीय पिता, हिन्दी के जाने-माने आलोचक डॉ धनजय ने इस कार्य मे अथ से इति तक साक्षीभूत रहकर स्नेहमय सस्पर्श के साथ मुझे आगे बढ़ाया है। जीवन मे और आगे बढ़ जाना ही सभवत उनके (पितृ) ऋण से मुक्ति होगी। भाषा सम्बन्धी समस्याओ का निराकरण करके उन्होने मेरे काम को अत्यधिक सुगम कर दिया है। अपने

श्वसुर श्री बी एल नागपाल जी की भी मै बहुत आभारी हूँ। वे शोध कार्य के दौरान मुझे केवल प्रोत्साहित ही नही करते रहे, बल्कि उनसे जो मदद सभव हो सकती थी, वह मुझे प्रदान किया। उन्होने मेरे अध्ययन-अध्यापन की दिशा मे सर्वदा मेरा मनोबल बढाया है। अपनी मॉ श्रीमती शैलबाला के स्नेह और छोटी बहन तुहिना के योगदान को कभी विस्मृत नही कर सकती। शोधकार्य मे अधिक एकाग्र हो सकूँ, इसके लिए उन्होने मेरी सारी जिम्मेदारियॉ अपने जिम्मे लिया। बहन वदना ने इलाहाबाद के पुस्तकालयो से सामग्री उपलब्ध कराने मे जो सहयोग दिया है और अनेक कठिनाइयो मे मेरे साथ रहकर अपनी आत्मीयता का एहसास कराया है, वह मेरे लिए अविस्मरणीय है। जब मैने शोध कार्य प्रारभ किया था तब मेरी बेटी यशवी और बेटा हेरम्ब बहुत छोटे थे। शोध प्रक्रिया मे उनके छोटे-छोटे प्रश्न भी मुझे मौलिक लगते थे और विषय के बारे मे उनकी सहज जिज्ञासा से कुछ नयी बाते सामने आती थी, जो सोचने को विवश करती थी। मै आशा करती हूँ कि जब वे बडे होकर इस पुस्तक को पढ़ेगे तो कही न कही अपनी उपस्थिति का अनुभव कर सकेगे।

अत मे, अपने पति श्री विनय कुमार नागपाल के प्रति मै बहुत कृतज्ञ अनुभव कर रही हूँ। शोध कार्य की लम्बी अवधि मे अनगिनत समस्याऍ, बाधाऍ और उतार-चढाव आते ही है लेकिन उन्होने सयम और सतुलन से उनका निराकरण किया। विचार-विमर्श, व्याख्या और अनुवाद कार्य मे उन्होने अथक परिश्रम किया है। मै उनकी विनोद-वृत्ति की भी सराहना करूँगी, जिससे अपने कार्य के दौरान, निराशा के क्षणो मे भी, सहज और आशावान बनी रह सकी। शोध प्रबध को वर्तमान रूप देने मे भाई अशोक सिद्धार्थ के सहयोग के लिए आभार व्यक्त करती हूँ।

रचना पाण्डेय

गणेश चतुर्थी, 2 मार्च, 2002 **रचना पाण्डेय**

इलाहाबाद

प्रथम अध्याय

गणेश की उत्पत्ति

अवधारणा एव स्रोत ❑ गणेश से सदर्भित मुद्राशास्त्रीय एव अभिलेखीय साक्ष्य ❑ मूर्तिकला के आधार पर गणेश की प्राचीनता ❑ वेदो मे गणेश ऋग्वेद मे गणेश, यजुर्वेद मे गणेश, अथर्ववेद मे गणेश ❑ गणेश एव वैदिक रीति रिवाज ❑ पुराणो मे गणेश ❑ बौद्ध धर्म मे गणेश ❑ पुराण ❑ पुराण और इतिहास का पार्थक्य ❑ अट्ठारह महापुराण ❑ पुराणो के लक्षण सर्ग,प्रतिसर्ग, वश, मन्वन्तर, वशानुचरित ❑ उप पुराण अर्थ एव वैशिष्ट्य ❑ उप पुराणो की संख्या ❑ उप पुराणो की सूची ❑ उप पुराणो के भेद ❑ गणेश पुराण का काल निर्धारण

प्रथम अध्याय

गणेश की उत्पत्ति

अवधारणा एवं स्रोत

गणेश हिन्दू देवमण्डल मे अग्रपूज्य देव के रूप मे जाने जाते है। 'गण' शब्द सर्वप्रथम वैदिक साहित्य मे अभिलेखित किया गया है।[1] सामान्य रूप से इस शब्द की व्युत्पत्ति 'गण' से मानी जाती है, जिसका अर्थ है 'गिनना' या 'गणना करना'। 'गण' सज्ञा का साहित्यिक अर्थ है 'समूह या झुण्ड'[2]। फलस्वरूप 'गणपति' शब्द का अर्थ एक सेनानायक के रूप मे लिया जाता है। गणेश या गणपति को सामान्य रूप से झुण्ड के नेता या शिव के अनुचर के रूप मे माना जाता है।

'गणेश' और 'गणपति' दोनो ही शब्द समान अर्थ रखते है, अर्थात् गणो के नेता या मालिक।गणेश से सम्बन्धित पहला नाम गणपति है, जो साहित्य मे प्रयुक्त हुआ है। यह नाम पहली बार ऋग्वेद मे आया है।[3] वहॉ इसे वृहस्पति या ब्रम्हणस्पति, जो ईश्वर समूह के मालिक या मत्रो के मालिक है, के लिये प्रयोग किया गया है।[4] वहॉ वृहस्पति को ज्येष्ठराज के रूप मे सम्बोधित किया गया है, जिसने हाथ मे एक कुल्हाड़ी पकड रखी है।[5] गणपति शब्द ऋग्वेद मे इन्द्र के लिये भी प्रयोग किया गया है। वहॉ इन्हे मालिक [6] या नायक [7] के रूप मे वर्णित किया गया है।

पूर्व ऐतिहासिक काल मे गज एक गणचिन्ह (टोटम) के रूप मे मान्य था। पशु का गणचिन्ह के रूप मे पूजन होना इस बात का द्योतक है कि व्यवस्थित धार्मिकता विकसित होने के पूर्व ही प्रतीकात्मकता का महत्व समझा जाने लगा था। कभी-कभी गणचिन्ह माने

---

1. ऋग्वेद, विश्वबधुत्व प्रकाशन, 1964, II 23 1, III 32 2, IV 35 30, V 50 6, X 112 9

2 मोनियर विलियम्स, सस्कृत अग्रेजी शब्दकोश, प्लीट जेवी, जे आर ए एस 1914, पृ० 745, 1915, पृ० 138-40, 402, 406,

3 ऋग्वेद II 23 1

4. वही, II 2.3 1

5 वही, X 53 9

6 वही, 112 9, III 53 7 9

7 वही, X 111 3

जाने वाले पशु का मानवीकरण किया जाता था तथा उसको अत्यधिक महत्व दिया जाता था। पश्चिम पर्शिया से प्राप्त, पेरिस सग्रहालय मे सग्रहीत, एक मूर्ति मे इस प्रकार का अकन पाया गया है। यह अकन 1200-1000 ई० पू० के बीच का माना जाता है। तत्व-मीमासा एव दर्शन शास्त्र मे मनुष्य द्वारा ईश्वर के मुखो तथा स्वरूपो का, अपनी मानसिक योग्यता एव कल्पनाओ के अनुसार निर्माण करने की प्रवृत्ति का, विकास टोटम के मनुष्यीकरण से शुरू हुआ था।[8]

भारतीय देव मदिरो मे अनेक प्रसिद्ध एव सुरुचिपूर्ण आकृतियो मे से एक देव की आकृति गज के समान मुख वाले देव गणेश की है। शिव के गणो एव व्यक्तिगत सहायको मे गणेश को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। गणेश का वाहन मूषक माना जाता है। गणेश को सामान्यत व्यक्तिगत रूप से या कही-कही अन्य देवताओ के साथ विघ्नविनाशक देव या सौभाग्य लाने वाले देव के रूप मे पूजा जाता है। गणेश पूजन के प्रारम्भ एव विकास का ज्ञान प्राप्त करने के लिए पुरातात्विक एव ऐतिहासिक साक्ष्यो के अध्ययन की आवश्यकता है।

प्राचीन आर्य जाति जो भारतवर्ष के मरुस्थलो, पर्वतो एव जगलो मे निवास करती थी, जगली गजो के आतक से बहुत आश्चर्यचकित एव आतकित थी।[9] किसी अन्य साधन, जो इनके आतक को समाप्त कर सके, की अनुपलब्धता होने पर और सभवत इस शक्ति के साथ स्वय को आत्मसात करने के लिये, प्राचीन जनजातियो ने गज के रूप मे सरक्षक देवता की पूजा प्रारम्भ की।[10]

सम्भवत गणेश पूजा का उद्भव उत्तरी एव उत्तर-पश्चिमी भारत के क्षेत्रो से हुआ है जहाँ गज बहुतायत से पाये जाते है।[11] यह परपरा इसके साथ ही दक्षिणी, पूर्वी व उत्तरी क्षेत्रो मे भी फैल गयी। पश्चिमी भारत के पूर्वीतट, विशेष रूप से महाराष्ट्र एव त्रावणकोर तक इसका प्रसार हुआ।[12]

इस बात के भी साक्ष्य मिलते है कि गणेश पूजा का सम्बन्ध गजो से है। इसके साक्ष्य पश्चिमी भारत मे तान्त्रिको, एव दक्षिणी भारत मे शैवगामिको, के लेखो मे उल्लिखित है। गजो की बढ़ोत्तरी होने के कारण (क्योकि गज राजाओ से सम्बन्धित हैं) राजाओ द्वारा अपनी जनता की भलाई के लिये गज-सवदना एव गज-ग्रह नामक कार्यक्रम

---

8 करुनाकरन, द रिडिल्स ऑफ गणेश, कुक क्वेस्ट प्रकाशन, बम्बई, 1992, पृ० 5

9 मित्रा, हरिदास, गणपति, विश्व भारती, शाति निकेतन, कलकत्ता प्रकाशन, 1992, पृ० 5

10 वही, पृ० 19

11 भारत मे गजो का विवरण देखने के लिये, इनसाइलोपीडिया ब्रिटिनिका, ग्यारहवाँ एडीशन,हिमालया एण्ड गज

12 राव गोपीनाथ, एलीमेट्स आफ हिन्दू, मद्रास 1914, खण्ड 1, भाग 1, पृ० 44

सम्पन्न कराया जाने लगा।[13]

गणेश के कृषि तथा कटाई से सम्बन्धित होने के सदर्भ भी कही-कही मिलते है।[14] उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ऋग्वेद मे 'गणपति' शब्द का प्रयोग 'ब्रह्मणस्पति' की उपाधि के रूप मे आया है। ऋग्वेद का मत्र[15] "गणाना त्वा गणपति हवामहे" जो गणेश के आह्वान के लिये प्रयुक्त होता है, ब्रह्मणस्पति का ही मत्र है। ऋग्वेद [16] मे इन्द्र को गणपति के रूप मे सम्बोधित किया गया है। तैत्तरीय सहिता [17] एव वाजसनेही सहिता मे पशु (विशेषत अश्व) रुद्र के गाणपत्य कहे गये है। ऐतरेय ब्राह्मण [18] मे स्पष्ट आया है कि "गणाना त्वा" नामक मत्र बह्मणस्पति को सम्बोधित है। वाजसनेही सहिता [19] मे बहुवचन (गणपतिभ्यश्च वो नम) तथा एकवचन (गणपतये स्वाहा) दोनो रूपो का प्रयोग हुआ है। मध्यकाल मे गणेश का जो विलक्षण रूप (हस्तिमुख, लम्बोदर, मूषक वाहन) वर्णित है, वह वैदिक साहित्य मे नही पाया जाता। वाजसनेही सहिता [20] मे मूषक को रुद्र का पशु अर्थात् "रुद्र को दिया जाने वाला पशु" कहा गया है। गृह एव धर्मसूत्रो मे धार्मिक कृत्यो के समय गणेश पूजन का कोई सकेत नही मिलता।[21] स्पष्ट है कि गणेश पूजा की परम्परा कालान्तर मे प्रारभ हुई होगी। बौधायन धर्म -सूत्र [22] मे देवतर्पण मे विघ्न विनायक, वीर, स्थूल, वरद, हस्तिमुख, वक्रतुण्ड, एकदन्त एव लम्बोदर का उल्लेख मिलता है। किन्तु यह अश क्षेपक-सा लगता है।[23] बौधायन गृह सूत्र[24] व मानव गृह सूत्र [25] मे विनायक चार माने गये है- शालकटक, कूष्माण्डराजपुत्र, उस्कित और देवयजन। इसमे कहा गया है कि ये दुष्ट आत्माये है तथा जिन्हे पकड़ लेती है उन्हे तरह-तरह

---

13 परिशिष्ट II पानाटोशन (तीसरी) सपा०, जिवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, पृ० 604

14 वद्योपध्याय, चारूचन्द्र, प्रवासी, बी एस प्रकाशन, 1327, पृ० 25

15 ऋग्वेद, वैदिक सशोधन मण्डल, वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना, 1946, 2 23

16 वही, 10 112 9

17 तैत्तरीय सहिता 4,1,2,2

18 ऐतरेय ब्राह्मण, ए० वी० कीथ द्वारा अनूदित, कैम्ब्रिज, 1920, 4 4

19 वाजसनेही सहिता, स० वासुदेव लक्ष्मण पन्सीकर, बम्बई, 1929, 16,25

20. वही, 3 57

21 काणे, पी० वी०, धर्मशास्त्र का इतिहास, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उ०प्र० लखनऊ, 1962 भाग-1 पृ० 185

22 बौधायन धर्मसूत्र, सपा० आर० शर्मा शास्त्री, नई दिल्ली, 1982, 2. 5 83-90

23 काणे, पी० वी०, वही, पृ० 185

24 बौधायन गृहशेष सूत्र, 3 10.6

25 मानव गृहसूत्र, सपा० रामकृष्ण हर्षाजी, नई दिल्ली, 1982 अनूदित, मार्क जे ड्रेस्डन 1941 2 4

के शारीरिक, मानसिक व आर्थिक कष्ट देती है। उन्हे दु स्वप्न आते है तथा कृषको की कृषि नष्ट हो जाती है। मानव गृहसूत्र ने इन विनायको द्वारा उत्पन्न बाधा से मुक्ति पाने के लिये पूजन की क्रियाओ का वर्णन किया है [26]। वैजवाय गृह (अपरार्क, याज्ञवल्क्य) [27] मे भी मित, सम्मित, शालकटक एव कूष्माण्डराजपुत्र नामक चार विनायको का वर्णन मिलता है। इनके द्वारा भी उन्ही बाधाओ के उत्पन्न करने की चर्चा की गयी है जैसा कि मानव गृहसूत्र मे है, तथा उन दुष्ट आत्माओ को शात करने हेतु उनके पूजन की विधि भी दी गयी है। याज्ञवल्क्य स्मृति मे चारो विनायक, एक विनायक बन जाते है । यह सभवत उपनिषदो के एकेश्वरवादी विचारधारा का प्रभाव रहा होगा।[28] इन दोनो सदर्भो से विनायक सम्प्रदाय के विकास की प्रथमावस्था का परिचय मिलता है। आरम्भ मे विनायक दुरात्माओ के रूप मे वर्णित है, जो भयकरता एव भॉति-भॉति का अवरोध खडा करते है। कालान्तर मे शाति हेतु उनकी पूजा के विधान की परम्परा शुरू हुई। काणे महोदय [29] का विचार है कि इस सम्प्रदाय मे रुद्र के भयकर स्वरूपो एव आदिवासी जातियो के धार्मिक कृत्यो का समावेश हो गया। याज्ञवल्क्य स्मृति मे विनायक सम्प्रदाय के कालान्तरीय स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। विनायक को यहॉ पर गणो के स्वामी के रूप मे ब्रह्मा एव रुद्र द्वारा नियुक्त दर्शाया गया है।[30] उसे न केवल अवरोध उत्पन्न करने वाला, प्रत्युत मनुष्य के क्रिया सस्कारो मे सफलता देने वाला कहा गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति [31] मे विनायक के चार नाम है – मित, सम्मित, शालकटक एव कूष्माण्ड राजपुत्र। उनकी माता का नाम है अम्बिका। विश्वरूप व अपरार्क[32] ने भी विनायक के चार नाम ही बताये है। किन्तु मिताक्षरा ने शाल कटकट एव कूष्माण्डराजपुत्र को दो-दो भागो मे तोड़कर छह नाम गिनाये है– मित, सम्मित, शाल, कटकट, कूष्माण्ड एव राजपुत्र।[33] अत यह कहा जा सकता है कि गणेश वैदिक देवो की पक्ति मे किसी देशोद्भव जाति से आये और रुद्र (शिव) के साथ जुड़ गये।[34] याज्ञवल्क्य ने विनायक की प्रसिद्ध उपाधियो जैसे – एकदन्त,

---

26 मानव गृह सूत्र, सपा० रामकृष्ण हर्षा जी, नयी दिल्ली, II 14

27 याज्ञवल्क्य स्मृति, सपा०, टी गणपति शास्त्री, बम्बई, 1940, 271-75

28 हाज़रा, आर.सी , गणपति, वरशिप एण्ड द उपपुराणाज डीलिग विद इट, जे जी जे आर आई , अक V, भाग 4, अगस्त, 1948 पृ० 225

29 काणे, पी० वी०, धर्मशास्त्र का इतिहास, वही, पृ० 186

30. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.271.

31 वही, 1 285

32 याज्ञवल्क्य स्मृति पर अपरार्क की कमेन्ट्री, आनदाश्रम सस्कृत सीरीज एडीशन, पृ० 563 और 565

33 काणे, पी वी , वही, पृ० 187

34. वही, पृ० 187

गजानन, लम्बोदर आदि की चर्चा नही की है।

गणपति सबधी विचार के विकास का अगला चरण महाभारत के प्रारभिक भागो मे तुलनात्मक रूप से प्राप्त होता है। वनपर्व[35] एव अनुशासनपर्व[36] मे वर्णित विनायक मानवगृह सूत्र के विनायक के समान ही है। महाभारत मे एक स्थल पर विनायक को अमैत्रीपूर्ण, दुर्गुण, दैत्य, भूत, राक्षस व पिशाच के रूप मे वर्णित किया गया है।[37] उनकी सख्या दो से अधिक बतायी गयी है।[38] आगे यह भी वर्णित है कि ये विनायक मनुष्य के कार्यो मे बाधा उत्पन्न करते है तथा आवश्यक रीतियो से पूजा करने पर वे सतुष्ट भी हो जाते है।[39] महाभारत मे एक स्थान पर विनायक को 'गणेश्वर' की उपाधि से प्रतिलक्षित किया है तथा यह भी उल्लिखित है कि ये गणेश्वर विनायक समस्त ब्रह्माड को नियत्रित करते है।[40] बौधायन गृहशेष सूत्र[41] ने विनायक की आराधना के लिये भिन्न ढग अपनाया है और उसे भूतनाथ, हस्तिमुख, विघ्नेश्वर कहा है एव 'अपूप' तथा 'मोदक' की आहुतियो की चर्चा की है। स्पष्ट है कि याज्ञवल्क्य की अपेक्षा बौधायन मध्यकाल के धर्मशास्त्रकारो के अधिक समीप लगते है। इन उल्लेखो के अतिरिक्त आधुनिक स्मृतियो मे गणेश की पूजा परम्परा का उल्लेख मिलता है जहाँ उन्हे मातृकाओ के साथ पूजा जाता है।[42] गोमिल स्मृति के अनुसार सभी कृत्यो के आरभ मे गणाधिप के साथ 'मातृका' की पूजा होनी चाहिये।[43] इन उल्लेखो से स्पष्ट है कि ईसा की पाँचवी एव छठी शताब्दी के उपरान्त ही गणेश एव उनकी पूजा से सम्बन्धित सभी प्रसिद्ध विशिष्टताएँ स्पष्ट हुई होगी।[44]

---

35 महाभारत, बम्बई सस्करण, सपा०, आर० किजावाडेकर, पूना 1929-33, भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना 1927-1966 III 65 23

36 वही, XIII 150 25

37. वही, XII 284 131

38. वही, III 65 23., XII 284 131, XIII 150 25

39 वही, III 65 23

40 वही, XIII 65 23

41. बौधायन गृहशेष सूत्र, सपा०, आर० शास्त्री, मैसूर, 1920, 3 10

42. भण्डारकर, आर. जी , वैष्णविज़्म शैविज्म एण्ड माइनर रीलिजियन सिस्टम, 1918, पृ० 147-50

43. गोमिल स्मृति, अनूदित, एच० ओल्डनबर्ग, सेक्रेड बुक ऑफ द ईस्ट, भाग-30 , 1 13

44 काणे, पी० वी०, वही, पृ० 186

गणेश से संदर्भित मुद्राशास्त्रीय एवं अभिलेखीय साक्ष्य

कुषाण शासक हुविष्क (111-138 ई0) के काल के दो सिक्के प्राप्त हुये है, जिन पर ब्राह्मी मे 'गणेश' शब्द उत्कीर्ण है। उसमे एक आकृति को धनुष की प्रत्यचा खीचे हुये अकित किया गया है। इस आकृति को शिव से समीकृत किया गया है। इन सिक्को के माध्यम से विद्वानो ने यह निष्कर्ष निकाला है कि 'गणेश' शब्द कुषाण काल मे गजमुखी देव के लिये नही प्रयुक्त होता था।[45] गुप्तकालीन सिक्को [46] मे लक्ष्मी, विष्णु, वरुण, दुर्गा एव कुमार या कार्तिकेय का चित्राकन तो प्राप्त होता है किन्तु गणेश का अकन अभी तक प्राप्त सिक्को मे कही भी उपलब्ध नही है।

नागमणिका (दूसरी-पहली शताब्दी ई0पू0) के नानाघाट शिलालेखो मे विभिन्न देवो का उल्लेख प्राप्त होता है, जैसे धर्म, इन्द्र, सकर्षण वासुदेव, सूर्य, चन्द्र, चारो लोकपाल, यम, कुबेर, वरुण और वायु। किन्तु गणेश का उल्लेख यहॉ नही है।[47] वस्तुत 300 ई0 तक के ब्राह्मी शिलालेखो मे गणेश या विनायक का कोई सदर्भ नही मिलता है। प्रारभिक गुप्त शासको के[48] अभिलेखो मे गणेश, गजपति या विनायक का कोई उल्लेख नही है। विष्णु कुन्डिन शासक माधववर्मन (छठी शताब्दी) के वेलुपुरु के अभिलेख मे दन्तिमुख-स्वामी (गणेश) की प्रतिमा स्थापना एव विनायक पूजा का उल्लेख प्राप्त होता है। यह विनायक का सर्वप्रथम अभिलेखीय साक्ष्य है।[49] भास्करवर्मन के सिलहर (बाग्लादेश) के आठवी शताब्दी के अभिलेख मे गणेश का अप्रत्यक्ष सदर्भ प्राप्त होता है। भास्करवर्मन [50] के एक अन्य ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण लेख मे गणेश का उल्लेख हुआ है जिसमे उन्हे अगणित गुणो से युक्त, कलियुग को समाप्त करने के लिए जन्म लेने वाले तथा गजमुखी स्वरूप का कहा गया है। सकराई

---

45 गैटी, एस के , अर्ली इण्डियन क्वाइन्स एण्ड करेन्सी सिस्टम, नई दिल्ली 1970, पृ० 9-10

46 बैनर्जी, जे एन , डेवलपमेन्ट ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी, कलकत्ता, 1956, पृ० 125

47 युवराज कृष्णन, गणेश, अनरिवेलिग एन एनिग्मा, मोतीलाल बनारसीदास 1919, पृ० 105

48. प्रारभिक गुप्त अभिलेखो मे 'गण' को 'समघ' या एक कबीलायी जनजाति के सदर्भ मे प्रयोग किया गया है।

-कार्पस इन्सक्रिप्शं इन्डिका, खण्ड III

-इन्सकिप्शन ऑफ द अर्ली गुप्ता एज, सम्पादित बी च छाबड़ा, और जी एस घई, नयी दिल्ली 1981

49 एपीग्राफिया इण्डिका, खण्ड-37, 1967-68, पृ० 125-30

50 एपीग्राफिया इण्डिका, खण्ड XII, 1913-14, भास्कर वर्मन का निधानपुर ताम्रलेख- प्रो पी. भट्टाचार्य

(जयपुर) के 822 ई0 के अभिलेख मे गणेश का उल्लेख प्राप्त होता है।[51] राजस्थान मे जोधपुर के पास घटियाले [52] के स्तम्भ पर गणेश की चार प्रतिमाये है, जो चारो दिशाओ मे अकित है। इस अभिलेख का प्रारभ विनायक के सम्बोधन से किया गया है। इस की तिथि 862 ई0 मानी गयी है।

अनेक महत्वपूर्ण विदेशी यात्रियो के विवरणो मे गणेश का उल्लेख प्राप्त नही होता। 7 वी शताब्दी मे भारत आने वाले त्सग एव इत्सिग दोनो के विवरण मे गणेश या गजपति की चर्चा नही हुयी है। किंतु 10-11वी शताब्दी मे भारत आये विदेशी यात्री अल्बरुनी [53] ने विनायक का उल्लेख किया है। अल्बरुनी के अनुसार मयूर पर सवारी करने वाले स्कद के पिता महादेव (शिव) है, जबकि मनुष्य के शरीर पर गजशीर्ष धारण करने वाले विनायक, ब्रह्मा के पुत्र है। विनायक को अल्बरुनी ने सप्तमातृकाओ से भी सम्बद्ध कहा है।

मूर्तिकला के आधार पर गणेश की प्राचीनता

गणेश का कला के क्षेत्र मे जो प्रारभिक स्वरूप प्राप्त होता है वह द्विभुजी गणेश का है। उत्तर भारत मे गणेश की उपस्थिति तीसरी से पॉचवी शताब्दी के बीच शुरू हो गयी थी जबकि दक्षिण भारत मे चौथी शताब्दी मे यत्र-तत्र तथा क्रमबद्ध रूप मे उत्तर पल्लव काल से मूर्तियाँ प्राप्त होने लगती हैं। मोटे तौर पर कह सकते है कि 7वी शताब्दी के अत से 8 वी शताब्दी के प्रारभ तक गणेश की प्रतिमाये दक्षिण भारत मे प्राप्त होने लगी थीं। द्विभुजी गणेश का स्वरूप, उनके ग्राम देवता व स्थानीय पूज्य देव होने की परम्परा को प्रतिलक्षित करता है जबकि 5वी शताब्दी के पश्चात् वे बहुभुजी स्वरूप मे प्रदर्शित होने लगे, जो उनके पौराणिक देव स्वरूप को भी परिलक्षित करता है।

गांधार कला शैली मे शिव, पार्वती, स्कद और षष्टी (Sastı) का अकन तो हुआ है, किन्तु गणेश पूर्णतया अनुपस्थित है।[54] भारत के बाहर अफगानिस्तान मे सर्वप्रथम गणेश की द्विभुजी मूर्ति प्राप्त हुयी है जो काबुल के पास गर्डेज मे स्थित थी। उसका काल 4-5 वीं शताब्दी माना गया है।

---

51. ए.एस आई. की वार्षिक रिपोर्ट, 1908-09, पृ० 45
52. इपिग्राफिका इडिका, खण्ड IX, पृ० 227
53. अल्वरुनीज़ इडिया, अनु० ई० श्चाउ, पृ० 118-120
54 कृष्णन युवराज, गणेश अनरेवलिंग एन एनिग्मा, मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1919, पृ० 1.05-6

प्रारभ मे गणेश को मदिर मूर्तिकला मे उच्च स्थान नही प्राप्त था।[55] वस्तुत वह महत्वपूर्ण नही थे। उन्हे शिव के अनुचर के रूप मे, नवग्रह के बाद, सप्तमातृकाओ के सहचर या शिव की पौराणिक कथाओ के साथ दर्शाया गया है। गणेश की मूर्ति के गर्भगृह मे स्थापित होने तक का पूरा विकास-क्रम मदिरो के स्थापत्य मे दिखायी देता है। प्रारभ मे गणेश मदिरो के मुख्यद्वार पर, फिर मुख्य मण्डप, महामण्डप,अर्द्धमण्डप, रथिका पर तत्पश्चात् मदिरो के सहस्तम्भो मे पार्षद देवो के साथ दर्शाये गये। बाद मे गणेश मुख्य गर्भगृह पार्षद देवताओ के साथ मदिर मे स्थापित हुये। यह उनके विकास-क्रम का दूसरा चरण था, जिसका काल 5वी-10वी शताब्दी तक का माना गया है।[56]

मूर्तियो के विकास के इस चरण मे वे तात्रिक देव के रूप मे उभर कर आये।उन्हे उनकी शक्तियो, सिद्धि व बुद्धि के साथ, दर्शाया गया है। उत्तर भारत मे तात्रिक गणेश का सर्वप्रथम दर्शन झूमरा [57] से प्राप्त मूर्ति मे होता है जिसमे उन्हे शक्ति के साथ दिखाया गया है। यह गाणपत्य सम्प्रदाय के प्रारभिक चरण को रेखाकित करता है।[58]

गणेश को उनके वाहन [59] के साथ प्रारभ मे नही दर्शाया गया है। 10 वी -11वी शताब्दी के आस-पास उन्हे मूषिका या चूहे के वाहन के साथ दर्शाया गया। यह गणेश के विकास का अगला चरण प्रदर्शित करता है। इस चरण मे वे विशिष्ट वाहन के साथ प्रदर्शित हुये, जिस कारण उन्हे ब्राह्मण देवो के वर्ग मे रखा गया। स्पष्ट है कि गणेश ने पौराणिक देवमण्डल के स्थान को धीरे-धीरे प्राप्त किया। 8वी से 12वी शताब्दी तक का विकास चरण उन्हे गर्भगृह के मुख्य देव तक पहुँचाता है। यह सिद्ध करता है कि इस काल तक गणेश समाज मे मुख्यदेव के रूप मे स्थापित हो चुके थे।

वेदों में गणेश

भारतीय विचारको, इतिहासकारो ने अनेक तर्क-वितर्क के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि गणेश वैदिक देवता नही है। एलिस गेटी [60] के अनुसार तैत्तरीय आरण्यक मे 'दतिन' को

---

55. कुमार गुप्त के 414 ई० के भिलसा (Bilsad) प्रस्तर अभिलेख मे स्वामी महासेन (स्कद) के मदिर का उल्लेख है, किन्तु गणेश का कोई उल्लेख नही है।

56. कृष्णन युवराज, गणेश अनरिवलिंग एन एनिग्मा, मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सस्करण, 1919, पृ० 106

57 वही, पृ० 74-78

58 वही, पृ० 106

59 वही, पृ० 48-50

60. एलिस गैटी, गणेश, नई दिल्ली, 1971 (द्वि० स०), पृ० 1

सम्बोधित आराधना गजमुखी देव के लिये है। गेटी ने प्रजायलुस्की [61] के मत से सहमति जताया है कि रुद्ध, शिव और गणेश मूलत एक ही है। लुइस रिनॉव [62] ने यजुर्वेद की मैत्रायणी सहिता मे दिये गये साक्ष्यो से गणेश की वैदिक उत्पत्ति माना है। हेराज [63] के अनुसार ऋग्वेद मे सर्वप्रथम गणपति शब्द वृहस्पति के लिये प्रयुक्त हुआ है जो कि गणो के ईश है। हेराज का यह भी मानना है कि दतिन के सदर्भ मे तैत्तरीय आरण्यक मे प्रयुक्त शब्द गणपति के लिये है। कोर्टराइट [64] के अनुसार गणपति दतिन और वक्रतुण्ड के वैदिक और पौराणिक सदर्भ ऐतिहासिक उत्पत्ति की दृष्टि से उपयुक्त साक्ष्य नही है। जबकि बाद के साहित्य गणेश की उत्पत्ति का सूत्र इन्ही सदर्भो से जोडते हैं। यह महत्वपूर्ण है कि गणेश पूजन की उत्तरकालीन परम्परा गणेश की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए उन्हे वैदिक साहित्य से जोड़ती है तथा वैदिक देवसमूह मे प्रतिष्ठित करती है।

ऋग्वेद में गणेश

ऋग्वेद II 23 1, यजुर्वेद, कृष्ण यजुर्वेद, तैत्तिरीय सहिता 23 143 एव काठक सहिता 10 12 44 मे 'गणपति' शब्द का उल्लेख हुआ है।[65]

ऋग्वेद [66] तथा अन्य ग्रन्थो मे उल्लिखित है कि गणपति सेवको के देव, बुद्धिमानो मे बुद्धिमान, वृहस्पति एव ज्ञानी ब्रह्मणो मे प्रमुख हैं। ऋग्वेद मे इस मत्र के द्वारा ब्रह्मणस्पति को सम्बोधित किया गया है। काठक सहिता मे इसके द्वारा अग्नि एव विष्णु (आग्नावैष्णवम्) को सम्बोधित किया गया है। तैत्तिरीय सहिता [67] मे इस मत्र का उच्चारण विशिष्ट सम्मान प्रदान करने के लिए किया गया है।

इसमे से किसी भी मत्र का प्रयोग शास्त्रीय गणेश, गणपति या विनायक को सम्बोधित करने के लिए नही हुआ है।

---

61. एलिस गैटी, गणेश, नई दिल्ली, 1971 (द्वि० स०) पृ० 2-3
62 लुइस रिनॉव, 'नोत सर लेस ओरिजिन्स वैदिक्स द गणेशा' जर्नल एशियाटिक, पेरिस, 1937
63. एच हेराज़, द प्राब्लम ऑफ गणपति, दिल्ली 1972, पृ० 27-28
64. कोटिराइट पॉल बी, गणेश, न्यूयार्क, 1985, पृ० 9
65. ए बी कैथ एव ए ए मैकडॉनल वैदिक टैक्स ऑफ नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स, लन्दन 1912, 11 343
66 ऋग्वेद 11 23 1
67 तैत्तिरीय सहिता, 2 3 143 एव काठक सहिता 10 12 44

ऐतरेय ब्राह्मण [68] मे वर्णित "गणना त्वा गणपति हवामहे" की व्याख्या ब्रह्मणस्पति, जो कि वृहस्पति के रूप मे पहचाने जाते है, को सम्बोधित करते हुये की गयी है।[69] शतपथ ब्राह्मण मे गणपति शब्द 'अश्व' के लिये प्रयुक्त हुआ है, जो देवताओ को स्वर्ग ले जाता है।

सक्षेप मे कहा जा सकता है कि किसी भी मध्यकालीन स्मृतिकार ने इन मत्रो को शास्त्रीय गणपति या गणेश से सन्दर्भित करते हुये प्रस्तुत नही किया है।

यजुर्वेद मे गणेश

मैत्रायणी सहिता [70] मे एक मत्र है जो स्पष्ट रूप से शास्त्रीय गणपति को सन्दर्भित करता है। इस मत्र मे 11गायत्री है जो विभिन्न देवताओ को सम्बोधित करती है। चौथी गायत्री मे उल्लिखित मत्र मे 'पुन करता' गणेश का नाम है। हस्तीमुख (गज-मुखी) जो क्लासिकल गणेश, गज के सिर वाले देव, की ओर इगित करता है।

यह मत्र केवल पाण्डुलिपि मे ही मिलता है एव कृष्ण यजुर्वेद के किसी अन्य रूपान्तरण जैसे तैत्तिरीय सहिता, काठक सहिता एव कपिस्थल सहिता मे नही प्राप्त होता। यह शुक्ल यजुर्वेद के रूपान्तरण (कण्व मध्यान्दिन) मे भी नही है। यह भी महत्वपूर्ण है कि पाण्डुलिपि मे दन्ति गायत्री का एव आनद आश्रम के रूपान्तरण मे गणेश गायत्री का गजमुखी ईश्वर के रूप मे वर्णन है।

अथर्ववेद में गणेश

अथर्ववेद [71] मे अनेक मत्र है जो विभिन्न आसुरीय एव ईश्वरीय प्रवृत्ति के देवो को वर्णित करते है। ये है मित्र, विष्णु, प्रजापति, इन्द्र, वृहस्पति, आर्यमन, वरूण, विवासवेन्त, उत्पतास, उत्कास, राहु, धूमकेतु, रुद्र, वासुस, आदिव्यास इत्यादि नामो से सम्बोधित किये जाते है। लेकिन गणेश, गणपति या विनायक को वर्णित नही किया गया है।

---

68 ऋग्वेद, II 23 1

69 शतपथ ब्राह्मण, सेक्रेड बुक ऑफ द ईस्ट, भाग 12, आक्सफोर्ड 1882-1900

70 मैत्रायणी सहिता, 2 9 13-13

71 अथर्ववेद, 19 9 11, तैत्तरीय सहिता III 4 10, VI 1 7 7-8, ऐतरेय ब्राह्मण 3 2, 13 10 10, 32 4; 37 2, सख्याना ब्रह्मन् 3 3 तैत्तिरीय ब्रह्मगण 1 1 8 2

गणेश एवं वैदिक रीति-रिवाज

यह रेखाकित करना महत्वपूर्ण हो सकता है कि गणेश, विनायक या गणपति को वैदिक रीति-रिवाजो मे कोई स्थान नही दिया गया है।

शान्ति क्रिया मे, विशेष रूप से असुर को परास्त करने के लिए, ईश्वर की उपासना की जाती है। इन वैदिक शान्ति क्रियाओ मे गणेश, विनायक या गणपति का कोई स्थान नही है। यह क्रियाएँ विभिन्न वैदिक देवो जैसे इन्द्र, ब्रह्म, रुद्र, वासुस, आदित्य, सोम, वृहस्पति, वरुण, विष्णु, राहु, केतु आदि को सम्बोधित करके की जाती थी।[72]

वैदिककालीन रीति-रिवाजो एव शान्ति क्रियाओ मे गणेश या गणपति की अनुपस्थिति इस बात की द्योतक है या यह साक्ष्य प्रस्तुत करती है कि गणेश वैदिक देव नही है। मैत्रायणी सहिता मे वर्णित 'गणेश गायत्रियॉ' मात्र प्रक्षिप्त अतर्वेशित अश है।

पुराणों में गणेश

पुराणो मे गणेश की उत्पत्ति के सबध मे अनिर्णय की स्थिति है। ब्राह्मण पुराण [73] के अनुसार किसी भी सस्कार की पूर्ति के लिए गजानन का पूजन किया जाना आवश्यक होता है। वे किसी कार्य के पूर्ण होने या इच्छाओ की पूर्ति के लिए, जैसे प्रत्यय एव जन्म के सस्कार, यात्रा, वाणिज्य, गुरु एव देवो के पूजन के सस्कार एव सकट मे पूजे जाते है। यह कहा गया है कि गणेश का पूजन कष्ट के समय मे, कर्मकाण्डो की सिद्धि मे सफलता दिलाता है और इसमे भी सन्देह नही है कि गणेश सभी के कष्टो को दूर करने व सफलता दिलाने मे सहायक है।

मत्स्य पुराण [74] कहता है कि गजमुखी विनायक सम्पन्नतादायक व बुद्धिदायक है। वह सुझाव देता है कि महादान का प्रारम्भ विष्णु, शिव व विनायक के पूजन से करना चाहिए। इस पुराण मे उल्लेख है कि मदिर मे गणेश की मूर्ति की स्थापना शुभ मानी जाती है। इसमे शिव की बायीं ओर निर्मित पार्वती के पास गणेश की मूर्ति बनाने का निर्देश दिया गया है।[75]

---

72 काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, पूना, 1971, खण्ड V, अश II, पृ० 719-20

73 ब्रह्माण्ड पुराण, 2 3 42 वेकटेश्वर प्रेस बम्बई, 1913, राय, एस एन, पौराणिव धर्म और समाज, 1968, इलाहाबाद

74 मत्स्य पुराण, 260 62 66, आनदाश्रम सस्कृत ग्रन्थावली, पूना, 1907, अनु० आर पी त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

75 वही, 769 56,18

लिग पुराण [76] मे गजमुखी विनायक को दैत्यो के मार्ग मे बाधा उत्पन्न करने के लिए जन्मित बताया जाता है। ब्रह्मवैवर्त पुराण [77] मे गणेश को शिव एव पार्वती के पुत्र के रूप मे एव विघ्नविनाशक के रूप मे सूर्य, विष्णु, शिव, अग्नि तथा दुर्गा से पहले पूजनीय कहा गया है।

वाराह पुराण [78] यह बताता है कि गजमुखी विनायक बुरे कर्म मे बाधा उत्पन्न करने के लिए जन्मित है। प्रस्तुत पुराण यह भी उद्घोषणा करते है कि विनायक को आराधना मे प्राथमिकता मिलनी चाहिए अन्यथा वह कार्य की सफलता को नष्ट कर देते है।[79]

स्कन्द पुराण [80] मे बताया गया है कि गणपति मनुष्य को मोक्ष के मार्ग से विमुख करता है। इसका अर्थ यह माना जा सकता है कि गणेश मनुष्य प्रजाति को इस लोक मे ही रखता है, उसको मुक्ति के मार्ग पर नही जाने देता। यह स्पष्ट रूप से स्कन्द पुराण 7 1 37 मे वर्णित किया गया है, जहॉ यह बताया गया है कि गणेश की उत्पत्ति इसीलिए की गयी है कि वह मनुष्य प्रजाति को दैवलोक मे प्रवेश करने से रोके। दैवलोक मृत्युलोक के जीवो से अत्यधिक भर गया है। गणेश विशेष रूप से स्त्रियो, म्लेच्छ, शूद्र एव पापियो को रोके जो सोमेश्वर या सोमनाथ की कृपा से स्वर्ग मे प्रवेश पा लेते है। इसके परिणामस्वरूप यज्ञ, तप, ज्ञान, स्वाध्याय एव व्रतो को प्रमुखता नही मिलती। शिव भी कुछ नही कर सकते क्योकि वह भी अपने भक्तो को स्वर्ग मे प्रवेश से नही रोक सकते। पार्वती ने अपने शरीर को रगड़ कर एक गजेन्द्र का निर्माण किया और घोषणा की कि यह सभी के लिए बाधाओ का निर्माण करेगा और उनको महान मोह से भर देगा – मोहनामाहिताविस्ता।

गौतम महात्म्य, जो ब्रह्म पुराण [81] का उत्तरी योग है, के अनुसार विनायक सस्कारो के सफल होने मे बाधा उत्पन्न करते है। सफलता के लिये उनका पूजन आवश्यक है।

अग्नि पुराण [82] मे विनायक को एक दुष्ट आत्मा के रूप मे वर्णित किया गया है जिसे

---

76 लिग पुराण, 103 75-81 बिब्लोपोथिका इण्डिका, कलकत्ता, 1885

77 ब्रह्मवैवर्त्त पुराण 3 7 9 जय विद्यासागर, कलकत्ता, 1880

78 वाराह पुराण 23 3-4 सपा० पी० एच० शास्त्री, कलकत्ता, 1893,

79 वही, 23 30

80 स्कन्द पुराण 6 131 151, वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1910

81 ब्रह्मपुराण, 41 1 14,

82 अग्निपुराण 266 1 6, आनन्द आश्रम सस्कृत ग्रन्थावली गुणाक 41 पूना, 1900 अनूदित एम एन दत्त, कलकत्ता, 1901

मनुष्य के कार्य मे बाधा डालने के लिये उत्पन्न किया गया है। अग्नि पुराण [83] ने निर्देशित किया है कि सफलता प्राप्त करने के लिए गणपति का पूजन अत्यत आवश्यक है।

नारद पुराण [84] के अनुसार, विनायक को गणो के नेता के रूप मे रुद्र, ब्रह्मा एव शिव द्वारा नियुक्त किया गया है। शिव पुराण [85] के अनुसार गणेश का उचित प्रकार से किया गया पूजन सभी तरह की सफलता दिलाता है तथा बाधाओ को दूर भी करता है।

पद्म पुराण [86] ने गणेश को सर्वसिद्धिकारक के रूप मे वर्णित किया है अर्थात् वह सभी सफलताये प्राप्त कराता है, सभी विघ्नो का विनाश करने वाला है।

बौद्ध धर्म मे गणेश

बौद्ध धर्म मे छठी शताब्दी तक गणेश की पूजा परम्परा स्वीकृत हो चुकी थी। पश्चिमी घाट के बौद्ध गुफा स्थापत्य मे गणेश के अकन के अनेक साक्ष्य प्राप्त होते है।[87] यह उल्लेखनीय है कि चीन मे कुग सीयेन नामक स्थल पर स्थित बौद्ध मदिर मे, जिसका काल 531 ई0 माना जाता है, गणपति के चितामणि स्वरूप का अकन प्राप्त होता है।[88]

चीनी बौद्ध धर्म की परम्परा मे गणेश का सबध नाग, हस्ति, वायु आदि देवताओ के साथ प्राप्त होता है।[89] बौद्ध परपरा मे गणपति से सम्बधित साहित्यिक सन्दर्भ आठवी शताब्दी के बाद मिलने प्रारभ हो जाते है। दुर्भाग्यवश नालदा, विक्रमशिला आदि मे सुरक्षित बौद्ध पाण्डुलिपियॉ मुस्लिम आक्रान्ताओ द्वारा नष्ट कर दी गयीं। तिब्बत, नेपाल व चीन मे जो बौद्ध साहित्य सुरक्षित बचा है उनसे बौद्ध परम्परा मे गणपति के महत्त्व पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। तिब्बती परम्परा मे कम से कम तीस ग्रन्थ निर्विवाद रूप से गाणपत्य ग्रन्थ माने जाते है। इनमे से पन्द्रह का अनुवाद अग्रेजी भाषा मे विल्किसन द्वारा किया जा चुका है।[90]

---

83 अग्निपुराण, 318 7-14 अनूदित एम०एन० दत्त, कलकत्ता, 1901

84 नारदपुराण, वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1905

85 शिवपुराण, 24 18 -10 12 पचानन तर्करत्न बवासी प्रेस, कलकत्ता, 1314

86 पद्मपुराण 1 66 सपा० एम०सी० आप्टे, आनदाश्रम सस्कृत ग्रन्थावली, पूना

87 ब्राउन, राबर्ट एल, गणेश इन साउथईस्ट एशियन आर्ट, स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयार्क प्रेस एलबॉनी, 1991, भूमिका, पृ० 8

88 थापन, अनिता रैना, वही, पृ० 181

89 गेटी एलिस, गणेश, द्वितीय सस्करण, मनोहरलाल, नयी दिल्ली, 1971 पृ० 68-69

90 विल्किन्सन क्रिस्टोफर, द तान्त्रिक गणेश, (राबर्ट एल ब्राउन की उपर्युक्त पुस्तक से उद्धृत), पृ० 235-36

यद्यपि तिब्बती परम्परा के इन गाणपत्य ग्रन्थो का काल निर्धारण दुष्कर कार्य है तथापि इनके मूल रचयिता या अनुवादको के नाम के आधार पर इन्हे 8वी - 11वी शताब्दी के बीच रखा जाता है। इनमे अधिकाश नाम भारत के प्रसिद्ध बौद्ध आचार्यो के है, जैसे अमोघवज्र (8वी शताब्दी), दीपकर श्रीज्ञान (11वी शताब्दी), नालन्दा के नागार्जुन (7वी-8वी शताब्दी), कोशल के वैरोचन तथा गया के गयाधन (दोनो 11वी शताब्दी) आदि। तिब्बती परम्परा के इन ग्रन्थो मे नालन्दा और विक्रमशिला के महाविहारो मे प्रचलित धार्मिक आस्थाओ व परम्पराओ पर प्रकाश पडता है।[91]

यह उल्लेखनीय है कि इनमे से कुछ बौद्ध गाणपत्य ग्रन्थो मे गणपति की पूजा से पहले अविलोकितेश्वर, वज्रडाकिनी, वज्रपाणि या सभी बुद्ध व बोधिसत्वो की पूजा परम्परा के प्रभाव प्राप्त होते है।[92] इसके विपरीत अन्य ग्रन्थो मे केवल गणपति की प्रतिमा और उनके मण्डल की रचना के विषय मे विस्तृत विवरण मिलता है।[93] इसी सन्दर्भ मे गणेश की पूजा विधि, मत्र, अनुष्ठान व उनकी शक्तियो पर प्रकाश डाला गया है।[94] बौद्ध परम्परा मे भी गणपति की पूजा विघ्नहर्ता तथा मनोकामनाओ को पूर्ण करने वाले देवता के रूप मे प्राप्त होती है।[95] गणपति को सिद्धि, बुद्धि और करुणा का देवता बताया गया है।[96] तिब्बती बौद्ध ग्रथ, बौद्ध गणपति तथा ब्राह्मण परम्परा के विनाशकारी देवता विनायक के बीच भेद स्थापित करते है।[97] मानवगृह सूत्र मे विनायक की शाति के लिए जो मत्र या अनुष्ठान प्राप्त होते है,[98] कुछ परिवर्तन के साथ उनका उल्लेख 'विनायक ग्रह निर्मोचन' नामक तिब्बती बौद्ध ग्रन्थ मे प्राप्त होता है।[99]

---

91 इन ग्रन्थो के रचनाकारो व अनुवादको की जानकारी हेतु देखे- विल्किन्सन क्रिस्टोफर, वही, पृ० 236-38, रचनाकारो व अनुवादको के काल हेतु देखे - मित्रा हरिदास, 'गणपति' पुनर्मुद्रित, विश्व भारती एनाल्सा - VIII पृ० 43

92 विल्किन्सन क्रिस्टोफर, वही, पृ० 259, 265-66

93 वही, पृ० 251, 253, 258

94 थापन, अनिता रैन, वही, पृ० 207, पाद टिप्पणी - 35

95 विल्किन्सन क्रिस्टोफर, वही, पृ० 251

96 वही, पृ० 254, 261, 265

97 थापन, अनिता रैना, वही, पृ० 283

98 मानव गृह सूत्र, II 14

99 विल्किन्सन क्रिस्टोफर, वही, पृ० 255

बौद्धो की तान्त्रिक परम्परा से जुडे गणपति के व्यक्तित्व के दो स्वरूप दिखायी देते है– रौद्र स्वरूप वाले देव और शात व करुण व्यक्तित्व वाले देव। गणपति के रौद्र स्वरूप के लक्षण भैरव शिव के अनुरूप बताये गये है।[100] उन्हे मुण्डमाल धारण किये हुए, वज्र लिये हुए, रक्त या नील वर्ण का बताया गया है।[101] शात स्वरूप वाले गणेश के व्यक्तित्व मे बोधिसत्व अविलोकितेश्वर का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है। उन्हे परमदयालु या महाकरुणा का देवता कहा गया है।[102] बोधिसत्व की कल्पना बौद्ध परम्परा मे एक ऐसे देवता के रूप मे प्राप्त होती है जो अपनी दया व करुणा से मानव की समस्त आकाक्षाओ को परिपूर्ण करते है। बौद्ध सन्दर्भ मे प्राप्त होने वाले गणपति के ऊपर उसी प्रकृति का आरोपण किया गया है और उन्हे अविलोकितेश्वर का ही प्रगट स्वरूप बताया गया है।[103] एक मत्र मे गणपति को श्वेतवर्णी तथा चतुर्भुजी बताया गया है। इनके सिर पर लक्षण के रूप मे अमिताभ की मूर्ति होने का भी सन्दर्भ प्राप्त होता है।[104] गणपति के इस सयुक्त स्वरूप मे भैरव शिव और बोधिसत्व अविलोकितेश्वर दोनो के व्यक्तित्व का समन्वय है। इस परम्परा का प्रचार जापान मे भी बौद्ध धर्म के सन्दर्भ मे हुआ तथा जापानी परम्परा मे इसी प्रकार के सयुक्त स्वरूप वाले गणपति को 'कागीटेन' (Kangı - Ten) कहा गया है।[105]

विद्वानो के अनुसार गणपति के इस प्रकार के स्वरूप मे बौद्ध तथा ब्राह्मण-शैव परम्पराओ के समन्वय, सामजस्य व सह अस्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। बहुसख्यक बौद्ध तत्र साहित्य मे बुद्ध व शिव का एकीकरण किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि आगे चलकर गणपति का सामजस्य बुद्ध व बोधिसत्व के साथ किया जाने लगा। बहुसख्यक साक्ष्य से सूचना मिलती है कि गणेश को शुद्ध बौद्ध देवता के रूप मे मान्यता प्राप्त थी।[106] गैटी ने चाम (8वी शताब्दी), ख्मेर (14वी शताब्दी), वर्मा (तिथि निर्धारित नही) से प्राप्त अनेक गणपति प्रतिमाओ का उल्लेख किया है जिनमे उनकी मुद्राएँ व लक्षण बुद्ध मूर्तियो के समान है।[107]

---

100 थापन, अनिता रैना, वही, पृ० 183

101 विल्किन्सन क्रिस्टोफर, वही, पृ० 252-259

102 वही, पृ० 260

103 वही, पृ० 266

104 वही, पृ० 262

105 थापन, अनिता रैना, वही, पृ० 184

106 चैटर्जी, वी० आर०, इडियन कल्चरल इफ्ल्यूएस इन कम्बोडिया, पृ० 241

107 गेटी एलिस, गणेश, पृ० 52-53

बौद्ध परम्परा का गाणपत्य साहित्य पालराजवश के काल से सम्बधित है जो कि भारत मे बौद्ध धर्म का अतिम रचनात्मक काल माना जाता है। इस काल मे अनेक सामाजिक परिवर्तन हुए। भक्ति तथा तत्र के प्रभाव से बौद्ध व ब्राह्मण धर्म के सम्प्रदायो ने प्रचलित लोकधर्मी विश्वासो व परम्पराओ को स्वय मे समायोजित किया।[108] गणपति समन्वय के सर्वोत्तम प्रतीक दिखायी देते है। गणपति मे ब्राह्मण, बौद्ध तथा प्रचलित विश्वास इन तीनो धाराओ का बडा सहज समन्वय हुआ। इन्हे धार्मिक सामजस्य का ऐसा प्रतीक कहा जा सकता है जिसने शास्त्रीय परम्परा और लोक परम्परा के मध्य सेतु का कार्य किया। बौद्ध साक्ष्यो से भी यह स्पष्ट होता है कि बदली हुई सामाजिक परिस्थितियो मे गणेश को प्रधान देवता बनाकर तत्कालीन धार्मिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये गाणपत्य सम्प्रदाय को प्रतिष्ठा मिली।

पुराण

प्राचीन भारतीय सस्कृति के स्वरूप, इतिहास व उसके विकास-क्रम को जानने मे धार्मिक-साहित्यिक ग्रन्थो की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इनमे भी पुराणो का विशेष महत्व है। इनमे विषय को सहज, सरल, कथापरक व आख्यान शैली मे अभिव्यक्त किया गया है। उच्चकोटि के धर्म व दर्शनमूलक तत्वो को भी सहज व सुग्राह्य शैली मे अभिव्यक्ति मिली है। जिस काल विशेष मे पुराणो की रचना हुई, उस काल की सस्कृति, धर्म, आदर्श, मान्यताएँ, समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीति आदि जीवन के सभी पक्षो को समग्र दृष्टिकोण से समाहित किया गया। इन्ही विशिष्टताओ के कारण पुराण जनसामान्य मे लोकप्रिय हुए। लोकप्रियता के कारण ही उनके माध्यम से सर्वोत्कृष्ट मूल्यों व आदर्शो को लोगो तक पहुँचाने का प्रयास किया गया। यदि हमे भारतीय सस्कृति के विविध पहलुओ को, उसकी समग्रता व व्यापकता के साथ जानना है, तो पुराण से ज्यादा सहयोगी अवयव कोई अन्य नही हो सकता।[109]

'पुराण' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद मे अनेक बार हुआ है। यहाँ उसका अर्थ है 'प्राचीनता' या 'पूर्वकाल मे होने वाला'। वायु पुराण के अनुसार[110] 'पुरा अनति', अर्थात् प्राचीन काल मे

---

108 थापन, अनिता रैना, वही, पृ० 185

109 ऋग्वेद, 3 54 9, 3 58 6, 10 130 6

110 वायु पुराण, 1 203
यस्मात् पुरा हवनत्तीय पुराण तेन तत् स्मृतम् ।निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापै प्रमुच्यते ।।

जो जीवित था। पुराणो की परिभाषा पद्म पुराण [111] मे इससे थोडी भिन्न दी गयी है। इसके अनुसार, जो प्राचीनता की अर्थात् परम्परा की कामना करता है, वह पुराण कहलाता है। ब्रह्माण्ड पुराण [112] की इससे भिन्न एक तृतीय उत्पत्ति है – 'पुरा एतत् अभूत्' अर्थात् 'प्राचीन काल मे ऐसा हुआ।' इन समग्र व्युत्पत्तियो की मीमासा करने से स्पष्ट है कि 'पुराण' का वर्ण्य विषय प्राचीनकाल से सम्बद्ध है।[113]

पुराण, सकलित ग्रन्थ है तथा इनके सकलनकर्ताओ को, इनकी सरचना के निमित्त एक विशद तथा पूर्व पौराणिक, विशेषत वैदिक साहित्य से भिन्न, शैली अपनानी पडी थी।[114] "इतिहास पुराणाभ्या वेद समुपवृहयेत्" के रूप मे जो पौराणिक शैली प्रचलित हुई, उसके प्राथमिक प्रयास के परिणाम मे अविकसित वैदिक आख्यानो तथा इतिवृत्तो को सकलित रूप देने की चेष्टा की गई।[115] पुराणो की यह विशिष्टता रही कि आख्यानो को पौराणिक रूप प्रदान करते समय, इनके अतीत और मौलिक तत्वो को ग्रहण करने के साथ-साथ नवोदित प्रवृत्तियो और नवीन परिस्थितियो के अनुकूल सशोधन और परिवर्द्धन लाने का प्रयास भी किया गया। पौराणिक आख्यानो मे दो बाते मुख्यत दिखाई देती है। एक तो इन्हे परिवर्तित परिस्थितियो के अनुकूल तथा सामान्य जनवर्ग की प्रवृत्तियो के अनुकूल आकार देना। दूसरा, वैदिक उक्ति को विस्तार देना तथा उसे जनवर्ग मे प्रचलित करना। वैदिक वाड्मय सभी के लिये सुगम नही था, अतएव वेदोक्ति को आख्यान के माध्यम से प्रस्तुत करने के पीछे अभिप्राय था– वेद से अपरिचित लोक-समुदाय के ज्ञान को बढ़ाना।

पुराण सरचना की जो विशिष्ट शैली प्रारभ मे अपनायी गई, उसका मूलभूत लक्ष्य था आख्यान, उपाख्यान, गाथा तथा कल्प जैसे विषयो को सहत रूप प्रदान करना।[116] ये विषय विकसित अथवा अर्द्धविकसित रूप मे अशत वैदिक वाड्मय मे, अधिकतर मौखिक रूप मे, विकीर्ण स्थिति मे पड़े हुये थे। पौराणिको ने लेखक, रचयिता और कवि की दृष्टि से कम, सग्रहीता और सकलनकर्ता की दृष्टि से अधिक, व्यवस्थित रूप देना चाहा। इसी सग्रहीत, सकलित और व्यवस्थित पद्धति का परिचय प्राथमिक पुराणो के एक श्लोक द्वारा प्राप्त होता है। [117]

---

111 पद्म पुराण, 5 2 53

112 ब्रह्माण्ड पुराण, 1 1 173

113 उपाध्याय, बलदेव, पुराण विमर्श, चौखम्बा, वाराणसी, 1987, पृ० 3

114 राय, एस० एन०, पौराणिक धर्म एव समाज, पचनद, नया कटरा, 1968, पृ० 3

115 वही, प० 3

116 वही, पृ० 13

117 विष्णु पुराण, 3 6 16 , वायु पुराण, 60 21 , ब्रह्माण्ड पुराण, 2 34 21

वेदो तथा पुराणो मे ऐसे आख्यान उपलब्ध होते है जिनके विवरण मे या तो समरूपता है या जिन्हे पहले के आधार पर दूसरे के अनुवर्ती विकास का साक्ष्य प्राप्त होता है।[118] परन्तु पौराणिक वाड्मय का यथार्थ स्वरूप तृतीय एव चतुर्थ शताब्दी से विकास क्रम प्राप्त करता है।[119] पुराण भारतीय परम्परा के पोषक है तथापि समय-समय पर परिष्करण एव सवर्द्धन प्रक्रिया द्वारा प्रक्षिप्ताशो के माध्यम से नव्य उपकरणो को समाविष्ट करके उन्हे समृद्ध बनाया गया है। पुरुरवा और उर्वशी का पौराणिक आख्यान इस तथ्य की पुष्टि करता है।[120] इस प्रकार पुराणो का रचना काल तृतीय-चतुर्थ शताब्दी से लेकर चौदहवी –पन्द्रहवी शताब्दी तक का माना जा सकता है।[121] पुराणो मे आचार्यो के वर्णन से लेकर वर्णाश्रम, ब्राह्मणधर्म, श्राद्ध, व्रत, साख्य, योग, प्रकृति, दर्शन, राजाओ की वशावली आदि सभी कुछ वर्णित है। दर्शन और भक्ति इनका मुख्य विषय हैं।

पुराण और इतिहास का पार्थक्य

प्राचीन काल मे इतिहास तथा पुराण की विभाजन रेखा बड़ी धूमिल थी। धीरे-धीरे आगे चलकर दोनो अभिधानो का वैशिष्ट्य निश्चित कर दिया गया।[122] कौटिल्य ने जिसे पुराण के साथ सयुक्त कर इतिवृत्त कहा है,[123] वह विभिन्न ग्रन्थो मे वर्णित 'इतिहास' शब्द का पर्याय प्रतीत होता है।[124] मनुस्मृति मे इतिहास, पुराण और आख्यान का अलग-अलग उल्लेख है।[125] जबकि महाभारत स्वय को 'इतिहास' ही नही बल्कि 'इतिहासोत्तम'[126] बताता है। वायु

---

118 विण्टरनित्स, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग 1, पृ० 518

119 हाजरा, आर सी पौराणिक रिकार्ड्स आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, पृ० 8-17
वायु पुराण तृतीय शताब्दी, विष्णु पुराण तृतीय–चतुर्थ शताब्दी, मार्कण्डेय पुराण तृतीय-चतुर्थ शताब्दी मे सरचित हुये।

120 विण्टरनित्स, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग 1 पृ० 530

121 पाण्डेय, सी डी , साम्ब पुराण का सास्कृतिक अध्ययन, इलाहाबाद, 1986, पृ० 2

122 उपाध्याय, बलदेव, पुराण विमर्श, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी 1987, पृ० 6

123 अर्थशास्त्र, 5 13-14

124 राय, एस एन वही, पृ० 9

125 मनुस्मृति, एशियाटिक सोसाइटी आफ बगाल, कलकत्ता, 1932, 3 232

126 महाभारत, आदि पर्व, 1 17

पुराण पुराणो के अतर्गत होते हुए भी अपने को 'पुरातन इतिहास' कहता है।[127]

इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्राचीन युग मे पुराण का इतिहास तथा आख्यान से पार्थक्य और वैशिष्ट्य माना जाता था परन्तु जैसे-जैसे पुराणो के स्वरूप मे अभिवृद्धि होती गई, यह पार्थक्य कम होता गया। परिणामत इतिहास और पुराण के लक्षण प्राय एकाकार होते गये। अमरकोश [128] की दृष्टि मे इतिहास 'पुरावृत्तम्' है, तो नीलकण्ठ की दृष्टि मे पुराण भी वही पुरावृत्त है – पुराण पुरावृत्तम् [129] आचार्य बलदेव उपाध्याय ने पद्म पुराण, वायुपुराण, ब्रह्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, नारदीय व मत्स्यपुराण के सदर्भो के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि इतिहास और पुराण का प्रथम प्रयोग अनेक अवातरकालीन वैदिक ग्रन्थो तथा पुराणो मे उपलब्ध होता है। कभी 'इतिहास' पुराण को गतार्थ करता था किन्तु अतिम काल मे 'पुराण' इतिहास को ही नही बल्कि समस्त वाड्मय को अपने मे गतार्थ करता है।[130] प्रो एस एन राय इस सदर्भ मे मानते है कि इतिहास के समावेश के कारण पुराण-सरचना को गति-विस्तार का अवकाश अवश्य मिला और यदि 'इतिहास' शब्द की पृथक सत्ता रही भी होगी तो वह पौराणिको द्वारा विहित शैली के कारण अपने सभावित मूल रूप मे स्पष्ट नही हो सकती।[131]

अट्ठारह महापुराण

पुराण परपरा की प्रतिष्ठा तथा पुराण सरचना के सकलित स्तर के बीच मे पर्याप्त व्यवधान था। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार, पुराण सख्या का विस्तार तीन स्तरो के साथ हुआ था। पहले स्तर पर, जैसा कि विष्णु पुराण से स्पष्ट है, पुराणो की सख्या चार थी। वायुपुराण मे इनकी सख्या दस बताई गई है। पुराण सख्या के विस्तार का यह दूसरा स्तर माना जा सकता है। तीसरा स्तर सर्वाधिक महत्वपूर्ण था, जबकि इनकी सख्या

---

127 वायु पुराण, 103 48, 51, कलकत्ता, 1880।
इम यो ब्राह्मणो विद्वानितिहास पुरातनम् ।
श्रृणुयाद् श्रावयेद्वापि तथा ऽध्यापयेऽपि च।।
धन्य यशस्यमायुष्य पुण्य वेदैश्च सम्मतम् ।
कृष्णद्वैपायनेनोक्त पुराण ब्रह्मवादिना।।
- यही श्लोक ब्रह्माण्ड पुराण 4 4 47, 50 मे भी उपलब्ध है

128 अमरकोश, 1 6 4

129 1 5 1

130 उपाध्याय, बलदेव, पुराण विमर्श, पृ० 7-8

131 राय, एस एन , पौराणिक धर्म एव समाज, पृ० 10

दस के स्थान पर अट्ठारह हो गयी।[132] पार्जीटर [133] तथा फर्क्यूहर [134] के मत यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके अनुसार पुराणो की सख्या उन्नीस मानी जा सकती है। इसमे उन्हेने शिव पुराण को भी सम्मिलित किया है। इस सदर्भ मे विंटनित्स ने कहा है कि शिव पुराण को भ्रमवश अथवा शैव परपरा के निर्वाह मे ही महापुराण माना जाता है।[135] इसका सबसे प्राचीन निर्देश अल्बरुनी के विवरण मे मिलता है, जिसके काल तक पुराणो का प्राचीन रूप बहुत बदल चुका था।[136] पुराण के स्थान पर 'महापुराण' शब्द का व्यवहार उत्तरकालीन स्तर से सम्बन्ध रखता है।[137] पुराणो की अष्टादश सख्या का विवेचन करते हुये पडित मधुसूदन ओझा ने इसे साभिप्राय एव सहेतुक माना है।[138] इनकी समीक्षा के अनुसार पुराणग्रन्थो का मौलिक वर्ण्य-विषय सृष्टि-प्रतिपादक है, जिसमे साख्य दर्शनप्रक्रिया का निर्वाह दिखायी देता है। सृज्यमान तत्व गणना मे अट्ठारह होते है। इसी प्रवृत्ति की प्रेरणा से सभवत पुराणो की सख्या का निर्धारण किया गया था। इसके अतिरिक्त उन्होने कई अन्य युक्तियॉ भी दी है जिनके द्वारा पुराण सख्या के अष्टादश होने का समाधान है। प्रो0 राय के अनुसार गीता मे अट्ठारह अध्यायो का परिकल्पन, महाभारत मे अट्ठारह पर्वो का निर्धारण, एक ही मूलभूत प्रवृत्ति के आलोक मे हुआ था।[139]

अष्टादश सख्या के काल-निर्णय मे मत्स्यपुराण का एक स्थल अधिक प्रामाणिक माना जाता है। इस पुराण के अध्याय 53 मे अट्ठारह पुराण उल्लिखित है, तथा इसकी तिथि भी निश्चित की जा चुकी है। हाजरा के अनुसार इस अध्याय को 550 ई0 से 650 ई0 के अन्तर्वर्ती काल मे रखा जा सकता है।[140] इसलिए पुराणो की अष्टादश सख्या का समय भी इसी के आस-पास मान सकते है।[141]

अनेक पुराणो जैसे, विष्णु पुराण (3 16 21-23) वराह पुराण (112 69-72) लिंग

---

132 राय, एस एन , पौराणिक धर्म एव समाज, पृ० 47

133 पार्जीटर, डायनेस्टीज़ ऑफ दि कलि एज, आक्सफोर्ड, 1913, पृ० 78

134 राय, एस एन , वही, पृ० 47

135 विंटरनित्स, एम, ए हिस्ट्री ऑफ इडियन लिटरेचर, कलकत्ता, 1927, पृ० 527, पाद टिप्पणी 4

136 प्रस्तुत प्रसग की विशद समीक्षा हेतु द्रष्टव्य, उपाध्याय, वही, पृ० 100, हाजरा, वही, पृ० 15, पुसाल्कर, वही, पृ० 41

137 द्रष्टव्य, हाजरा, वही, पृ० 2, पाद टिप्पणी 19

138 ओझा, मधुसदन, पुराण निर्माणाधिकरणम् तथा पुराणोत्पत्ति प्रसग, जयपुर, सवत् 2009, पृ० 5-10

139 राय, एस एन , वही, पृ० 49

140 हाज़रा, वही, पृ० 3

141 राय, एस॰एन , वही, पृ० 49

पुराण (1 39 61-63), मत्स्य पुराण (53 11), पद्म पुराण (10 51-54), भविष्य पुराण (1 1 61-64), मार्कण्डेय पुराण (बी यू टी-11), अग्निपुराण (271 1- 29), भागवत पुराण (12 13 4-8), वायु पुराण (134 1-11), स्कन्द पुराण (2 15-7) आदि मे पुराणो के नाम मिलते है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य स्थलो पर भी पुराणो की नामावली मिलती है, यथा, गरुड़ पुराण (1 215 15-16) , देवी भागवत (1 3 3-12), नारद पुराण (1 92 26-28), पद्म पुराण (6 236 13-20), ब्रह्मवैवर्त पुराण (4 133 11-22), भागवत पुराण (12 7 22-24), शिव पुराण (7 1 1 42-45) और स्कन्द पुराण (5 44 120-140)।[142]

देवी भागवत (1 3 21) मे प्रथम अक्षर के उल्लेख के साथ अट्ठारह पुराणो के नाम इस प्रकार बताये गये है – मद्य-मत्स्य, मार्कण्डेय, मद्य-भविष्य, भागवत, ब्रत्रय-ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड चतुष्टय-वराह, वामन, वायु, विष्णु अ, ना, प, लि और ग के क्रम से अग्नि नारदीय, पद्म, लिग, गरुड़ कू-कूर्म, स्कद।[143] विष्णु पुराण [144] तथा भागवत [145] आदि मे इन पुराणो की नामावली एक विशिष्ट क्रम मे दी गई है और यही क्रम तथा नाम प्राय अन्य पुराणो मे भी उपलब्ध होते है। अनेक तर्क-वितर्क के पश्चात् पुराणो का क्रम इस प्रकार मिलता है– 1 ब्रह्म 2 पद्म 3 विष्णु 4 भागवत 5 भागवत 6 नारद 7 मार्कण्डेय 8 अग्नि 9 भविष्य 10 ब्रह्मवैवर्त 11 लिंग 12 वराह 13 स्कन्द 14 वामन 15 कूर्म 16 मत्स्य 17 ब्रह्माण्ड।[146]

पुराणों के लक्षण

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वतराणि च।
वंशानुचरित चेति पुराण पचलक्षणम् ।।

पुराण के लक्षणो को बताने वाला यह श्लोक कुछ पुराणो को छोड़कर प्राय सभी महापुराणो मे मिलता है।[147] 'पच लक्षण' शब्द पुराण का इतना अनिवार्य द्योतक माना जाता था कि अमरकोश मे यह शब्द बिना किसी व्याख्या के ही प्रयुक्त किया गया है। व्याख्या-विहीन पारिभाषिक शब्द का प्रयोग उसकी सार्वभौम लोकप्रियता का सकेत माना जाता है।[148] सृष्टि, प्रलय, वशपरम्परा, मन्वन्तर का वर्णन और विशिष्ट व्यक्तियो का चरित्र, ये पॉच

---

142 त्रिवेदी, करुणा एस , कूर्म पुराण धर्म और दर्शन, वाराणसी 1994, पृ० 16-17

143 वही, पृ० 20

144 विष्णु पुराण, वेकटेश्वर प्रेस बाम्बे, 1889 3 6 20-24

145 भागवत पुराण, बम्बई, 1916, 12 13 4-9

146 त्रिपाठी, कृष्णमणि, वही, पृ० 47

147 उपाध्याय, बलदेव, वही, पृ० 125

148 वही, पृ० 124

विषय जिस ग्रन्थ मे वर्णित हों, उसे पुराण कहते है। ये पॉच विषय पुराणो मे अनिवार्यत प्रतिपादित है।

सर्ग

जगत तथा उनके नाना पदार्थो की उत्पत्ति अथवा सृष्टि सर्ग कहलाती है। भागवत के अनुसार [149] जब मूल प्रकृति मे लीन गुण क्षुब्ध होते है, तब महत् तत्व की उत्पत्ति होती है। महत् से तीन प्रकार के सात्विक, राजस् और तामस् अहकार बनते है। त्रिविध अहकारो से ही पचतन्मात्रा, इन्द्रिय तथा (पच) भूतो की उत्पत्ति होती है। इसी उत्पत्ति क्रम का नाम सर्ग है। पुराणो मे नाना प्रकार की सृष्टि वर्णित है।

प्रतिसर्ग

सृष्टि के प्रलय अथवा नाश को ही 'प्रतिसर्ग' कहते है। विष्णु पुराण [150] मे प्रतिसर्ग का शाब्दिक अर्थ है – 'सर्ग के विपरीत'। इस ब्रह्माण्ड का स्वभाव से ही प्रलय हो जाता है और यह प्रलय चार प्रकार का है – नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य तथा आत्यतिक।

वंश

भागवत [151] के अनुसार ब्रह्मा के द्वारा जितने राजाओ और ऋषियो की सृष्टि हुई, उनकी भूत, भविष्य तथा वर्तमान [152] कालीन सन्तान-परम्परा 'वश' नाम से जानी जाती है।

भागवत के उक्त श्लोक मे केवल राजवश का ही नही, ऋषिवश का भी समावेश किया गया है। ऋषिवंशो का विवरण अन्य पुराणो मे विस्तार से मिलता है।

मन्वन्तर

पुराणो के अनुसार सृष्टि के विभिन्न काल-मान का द्योतक यह शब्द है। मन्वन्तर चौदह होते है और प्रत्येक मन्वन्तर का अधिपति एक विशिष्ट मनु होता है,[153] जिसके पॉच

---

149 भागवत पुराण, 12 7 11

150 विष्णु पुराण, 1 2 25

151 भागवत पुराण, 12 17 16

152 उपाध्याय, बलदेव, वही, पृ० 126

153 उपाध्याय, बलदेव, पृ० 126

अन्य सहयोगी है। भागवत [154] मे कहा गया है – मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान के अशावतार–इन छ विशिष्टताओ से युक्त समय को 'मन्वन्तर' कहते है।

वंशानुचरित

भागवत के अनुसार[155] पूर्वोक्त वशो मे उत्पन्न हुये वशधरो का विशिष्ट विवरण जिसमे वर्णित होता है, वह 'वशानुचरित' कहलाता है। इस सम्बन्ध मे यह धारणा भी है कि महर्षियो के चरित की अपेक्षा पुराणो मे राजाओ का वर्णन अधिक प्राप्त होता है।[156] अमरकोश मे प्राप्त पचलक्षणो के व्याख्याविहीन परिभाषिक प्रयोग के आधार पर आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इन लक्षणो को सार्वमौमिक मान्यता दी। जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि अमरकोश के काल (चौथी शताब्दी) तक जितने पुराणो का सकलन हुआ, उनमे पॉचो लक्षणो के अनुसार प्रतिपाद्य विभाजन हुआ था। इससे यह भी सिद्ध होता है कि प्रमुख पुराणो का प्राथमिक सस्करण गुप्तकाल तक सम्पन्न हो चुका होगा।[157] पार्जिटर की व्यारव्यानुसार ये विषय पुराणो के प्राचीनतम वर्ण्य-विषय माने जा सकते है।[158]

पण्डित राजशेखर शास्त्री द्राविड ने पुराण पच-लक्षण की एक अतिरिक्त परिभाषा की ओर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट किया। इसका उल्लेख कौटिलीय अर्थशास्त्र की जयमगला व्याख्या मे हुआ है। व्याख्याकार ने इसका मूल किसी प्राचीन ग्रन्थ को बताया है–

सृष्टि-प्रवृत्ति-सहार-धर्म-मोक्ष प्रयोजनम् ।
ब्रह्मभिर्विविधै प्रोक्त पुराण पञ्चलक्षणम् ।।

इसके आधार पर आचार्य बलदेव उपाध्याय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि धार्मिक विषयो का पुराणो मे सन्निवेश प्रारम्भ से ही अभीष्ट था।[159] इस सदर्भ मे हाजरा आदि विद्वानो ने पुराणो मे धार्मिक विषयो के समावेश को उत्तरकालीन पौराणिक सकलन का परिणाम माना है। जबकि प्रो० एस० एन० राय का विचार है कि पुराणो की सरचना के आद्य स्तर से ही धार्मिक विषयो का सन्निवेश किया जा रहा था।[160]

---

154 भागवत पुराण, 12 7 15

155 वही, 12 7 16

156 उपाध्याय, बलदेव, वही, पृ० 127

157 पाण्डेय, सी० डी०, साम्ब पुराण का सास्कृतिक अध्ययन, इलाहाबाद, 1986, पृ० 8

158 पार्जिटर, एशियन्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन, पृ० 36

159 उपाध्याय, बलदेव, पुराण विमर्श, पृ० 127

160 कौटिल्य अर्थशास्त्र, 1 5 के आधार पर द्रष्टव्य राय, ए० एन०, पुराणपत्रिका, भाग 4, अक-1

भागवत [161] मे पुराणो के दस लक्षण भी प्रतिपादित किये गये है– सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, अन्तर, वश, वशानुचरित, सस्था, हेतु तथा अपाश्रय। इनके सक्षिप्त अभिप्राय इस प्रकार है–सर्ग–मौलिक सृष्टि, विसर्ग–चराचर रूप चेतन सृष्टि, वृत्ति–जीविका, रक्षा–ईश्वर का लोक रक्षार्थ अवतार, अन्तर–मन्वन्तर, वश-प्रसिद्ध राजपरिवार, वशानुचरित–प्रसिद्ध राजकुलो का इतिहास, सस्था–प्रलय, हेतु–जीव एव अपाश्रय–ब्रह्म।[162] भागवत के एक अन्य स्कन्ध मे पुराणो के दस अन्य लक्षणो का भी उल्लेख किया गया है, जो इस प्रकार है– सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, उति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति, आश्रय।[163] इस सदर्भ मे विद्वानो का मत है कि भागवत के दोनो स्कन्धो मे उल्लिखित लक्षणो मे शब्द-भेद अवश्य है, पर अभिप्राय-भेद नही है।[164] इन दस लक्षणो की समीक्षा पुसाल्कर ने भी की है। बारहवे स्कन्ध मे सकेत है कि दस या पॉच लक्षणो की योजना महान अथवा अल्प व्यवस्था की द्योतक है। पुसाल्कर ने अल्प-व्यवस्था से तात्पर्य 'उपपुराण ' से माना है।[165] परन्तु भागवत मे प्रयुक्त 'महदल्पव्यवस्था' से तात्पर्य कुछ और है। वस्तुत यहॉ पर सकेत उस पौराणिक प्रवृत्ति की ओर है, जिसके कारण समय-समय पर नूतन परिस्थितियो एव नवोदित सास्कृतिक तत्वो के अनुसार प्राचीन पुराणो का परिवर्द्धन कर उनका प्रतिसस्करण तैयार किया गया तथा उत्तरकालीन पुराणो की रचना की गयी।[166] इसीप्रकार का निष्कर्ष भागवत के एक अन्य श्लोक से भी प्राप्त होता है।[167] पुसाल्कर का यह मत समीचीन प्रतीत नही होता कि उप पुराणो मे अल्प-व्यवस्था का अनुसरण किया गया था।

उप पुराण : अर्थ एवं वैशिष्ट्य

महापुराणो की भॉति पौराणिक वाड्मय मे उप पुराणो की भी समृद्ध परम्परा है। ये उप पुराण विभिन्न सम्प्रदायो के विचार और विकास के महत्वपूर्ण साधन थे।

आकार-विस्तार, विषय-विविधता की दृष्टि से परम्परागत पुराणो के समीप होने के कारण ही सभवत इन्हे 'उप पुराण' नाम दिया गया होगा। 'उप' शब्द प्राय निम्नता या

---

161 भागवत पुराण, 12 7 8

162 उपाध्याय, बलदेव, वही, पृ० 131

163 भागवत पुराण, 2 10 1

164 उपाध्याय, बलदेव, वही, पृ० 128

165 पुसाल्कर, स्टडीज इन द एपिक्स एण्ड पुराणाज, पृ० 46

166 राय, एस एन वही, पृ० 21, पृ० 46

167 भागवत, 2 10 2

सहायक के रूप मे प्रयुक्त होता है। किन्तु यह शब्द समीपता अथवा निकटता के अर्थ मे भी प्रयुक्त होता रहा है।[168] उपनिषद् मे 'उप' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ मे किया गया है। उप पुराणो मे विभिन्न धार्मिक मतो का पोषण किया गया है। इसीकारण इनकी प्रतिष्ठा ऐसे साम्प्रदायिक ग्रन्थो के रूप मे भी प्रचलित हो गई जो किसी विशेष सम्प्रदाय के धार्मिक मतो का पोषण करते हो।[169]

उप पुराणो को महापुराणो का उपभाग निरूपित किया गया है। पुसाल्कर ने महापुराणो की तुलना मे उप पुराणो की रचना बाद मे मानी है तथा इनमे ऐतिहासिक महत्व की सूचनाओ का प्राय अभाव बताया है। इस कारण वे इन्हे बहुत उल्लेखनीय नही मानते है।[170] परन्तु सभी उप पुराण ऐतिहासिक रूप से महत्वहीन नही कहे जा सकते। इनमे कुछ, जैसे विष्णुधर्मोत्तर, नारसिह, देवी भागवत आदि सातवी–आठवी शताब्दी के मध्य रचे गये है तथा विषय-निरूपण की दृष्टि से महत्वपूर्ण भी है। कुछ विद्वान् उप पुराणो को महापुराणो का ही उपभेद स्वीकार करते है। मत्स्य पुराण मे भी उप पुराणो को पुराणो का उपभेद प्रतिपादित किया गया है और यह भी कहा गया है कि कोई भी पौराणिक कृति, जो अड्डारह पुराणो से पृथक सरचित है, उसे इन अट्ठारह पुराणो मे से एक या दूसरे से ही उद्भूत समझा जाये।[171] मत्स्य पुराण मे ही यह भी उल्लिखित है कि सभी उप पुराण अष्टादश या प्रमुख पुराणो के उपभेद है तथा उन्ही से उद्भूत हुए है। सौर पुराण ने स्वय को ब्रह्म पुराण से सम्बद्ध बताया है।[172] कूर्म पुराण मे भी यही मत थोड़े अन्तर के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसके अनुसार मुनियो ने अष्टादश पुराणो का सम्यक अनुशीलन करने के बाद उप पुराणो की रचना की।[173]

इस सन्दर्भ मे काणे महोदय का विचार उल्लेखनीय है। उनका मानना है कि इन पुराणो मे पचलक्षणो का निर्वाह नही किया है परन्तु इनके प्रचलित पाठ बहुधा महापुराणो के

---

168 पाण्डेय, सी० डी०, वही, पृ० 9

169 हाजरा, उपपुराणाज, भाग 1, पृ० 18

170 पुसाल्कर, ए० डी०, स्टडीज इन द एपिक्स एण्ड पुराणाज, भूमिका, पृ० 48

171 मत्स्य पुराण, 53 58-59 और स्कन्द पुराण, प्रमास खण्ड, 2 79-83

172 सौर पुराण, आनन्दाश्रम सस्कृत ग्रन्थावली, पूना, 1924, 9 12 ब 13 अ
खिलान्य उपपुपुराणानि यानि चोक्तानि सूरिभि ।
इद ब्रह्मपुराणस्य खिलम् सौस्मनुत्तमम्।।

173 "अन्यान्युपपुराणनि मुनिभि कथिलानि तु।
अष्टादश पुराणानि श्रुत्वा सक्षेपतौ द्विजा।।"
कूर्म पुराण, 1 1 16

विषयो से साम्य रखते है। अष्टादश पुराणो की श्लोक सख्या 'चार लाख'[174] है। इसमे इन पुराणो की श्लोक सख्या सम्मिलित नही मानी जा सकती। ऐसा इसलिए प्रस्तावित किया गया है क्योकि किसी भी पुराण की उक्त श्लोक सख्या मे उप पुराण श्लोक सख्या परिगणित नही मिलती है।[175]

यद्यपि महापुराणो की अपेक्षा उप पुराणो को कम महत्व दिया जाता है किन्तु उप पुराणो ने इस मान्यता को कभी स्वीकार नही किया तथा अपने स्वतत्र अस्तित्व को महापुराणो से अलग प्रतिपादित किया।[176] कही-कही उन्होने प्रचलित मान्यता से ऊपर उठकर स्वय को महापुराणो से श्रेष्ठतर उद्घोषित किया।[177] पुराणो के प्रतिपाद्य विषय के सम्बध मे सौर पुराण का कथन है कि सर्ग, प्रतिसर्ग, वश, मन्वन्तर तथा वशानुचरित ये पॉच लक्षण होने चाहिए। पुराणो के उपभेद होने के कारण उप पुराणो के भी यही लक्षण होने चाहिए।[178] परन्तु पुराणविदो ने महापुराणो के दस लक्षण निरूपित किये है जबकि उप पुराणो के उपर्युक्त पॉच लक्षण ही उल्लिखित है। उप पुराण मुख्यत स्थानीय सम्प्रदायो एव धार्मिक मान्यताओ का निरूपण करते है, महापुराण सम्प्रदायो और उनकी विभिन्नताओ का विवेचन करते है। उप पुराणो मे राजाओ एव ऋषियो की वशावली के वर्णन की प्राय उपेक्षा की गई है।[179] यदि कही वशावली वर्णन प्राप्त भी होता है तो वहॉ उनकी प्रामाणिकता की ओर विशेष ध्यान नही दिया गया है। उनके साथ नयी गाथाऍ जोड दी गई है। निष्कर्षत यह मान सकते है कि महापुराणो के दस लक्षण तथा उप पुराणो के पच लक्षण की मान्यता, उप पुराणो मे राजवशावलियो की उपेक्षा तथा इस साहित्य की प्राय अनुपलब्धता ने ही सभवत उप पुराणो को समाज मे समुचित स्थान व महत्व दिलाया। वे प्राचीन भारत के सम्बध मे बहुमूल्य जानकारी उपलब्ध कराते है तथा सस्कृत साहित्य की विलुप्त कृतियो के पुनर्निर्माण मे योगदान देते है।[180]

---

174 वायु पुराण, 1 60-61

175 काणे, वही, भाग 4, पृ० 384

176 पाण्डेय, सी० डी०, वही, पृ० 5, फुटनोट, 11

177 अनन्य उप-पुराणनि मुनिर्भि कथितानि तु।
अष्टादश पुराणनि श्रुत्वा सक्षेपतो द्विजा।।

कूर्म पुराण, 1 16

178 सौर पुराण, 9 45

179 हाज़रा, आर० सी०, स्टडीज इन उप पुराणाज, भाग 1, पृ० 26

180 हाज़रा, वही, पृ० 26

भारतीय इतिहास के अध्ययन के सदर्भ मे पुराणो का महत्व 20वी शताब्दी के प्रथमार्द्ध मे पार्जीटर,[181] भण्डारकर [182] तथा हाजरा [183] के महत्वपूर्ण कार्यो मे सामने आया। स्वतत्रताप्राप्ति के बाद के दशको मे ऐतिहासिक स्रोतो के रूप मे पुराणो की सम्यक समीक्षा प्रारभ हुई। राजनैतिक, सामाजिक एव धार्मिक प्रवृत्तियो, सस्थाओ और परिस्थितियो के अध्ययन के सदर्भ मे पुराणो की महत्वपूर्ण भूमिका निर्विवाद रूप से स्वीकार की गयी। यह उल्लेखनीय है कि पौराणिक अध्ययन के प्रसग मे जो महत्व पारम्परिक अट्ठारह पुराणो को प्राप्त है वह उपपुराणो को हाजरा [184] के महत्वपूर्ण कार्य के बावजूद नही प्राप्त हो सका। 'उप पुराण' सज्ञा के कारण इस वर्ग के साहित्यिक साक्ष्यो को पुराणो की तुलना मे ऐतिहासिक दृष्टि से निम्नतर करके ऑका गया और एक भ्रामक अवधारणा यह भी प्रचलित रही कि उप पुराण परवर्ती ग्रन्थ है, जिनसे प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन मे विशेष महत्वपूर्ण सूचना नही प्राप्त हो सकती। यदि सम्पूर्ण पौराणिक साहित्य के उद्‌भव और विकास की सम्यक समीक्षा की जाये तथा उन ऐतिहासिक परिस्थितियो को सामने रखकर इस प्रकार के साहित्य के उद्‌भव के कारणो का विश्लेषण किया जाये तो दो तथ्य निष्कर्षत समुपस्थित होते है। प्रथमत यह कि महापुराणो या पारम्परिक अट्ठारह पुराणो की सर्जना समाज मे जिन उद्देश्यो से की गयी थी उन उद्देश्यो को समाजशास्त्रीय विवेचनो [185] मे 'ब्राह्मणाइजेशन' अर्थात् ब्राह्मण सस्कृति का प्रसार तथा 'सस्कृताइजेशन' अर्थात् सस्कृत भाषा के ग्रन्थो मे ब्राह्मण आदर्शो का निबन्धन, इन दो सदर्भो से परिभाषित किया गया है।

दूसरा तथ्य यह सामने आता है कि सामाजिक परिवर्तन, अस्थिरता तथा सक्रमण के दौर से उत्पन्न अव्यवस्था मे प्राचीन परम्परागत धार्मिक आदर्शो और विश्वासो को इस प्रकार जीवित रखना कि वे नवीन परिस्थितियो और प्रवृत्तियो के साथ समायोजन और सहअस्तित्व स्थापित करके अपना वर्चस्व कायम रख सके, साथ ही समाज मे सस्थागत धार्मिक प्रवचनो के द्वारा एक ऐसी व्यवस्था बनाना जिसमे पुरातन एव अर्वाचीन तत्व परस्पर सश्लिष्ट रूप मे

---

181 पार्जिटर, एफ० ई०, द पुराण टेक्स्ट ऑफ दी डायनेस्टीज ऑफ दी कलि एज, दिल्ली 1975, पुनर्मुद्रित सस्करण

182 भण्डारकर, आर० जी०, वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजियस सिस्टम, वाराणसी, 1965, पुनर्मुद्रित

183 हाजरा आर० सी०, स्टडीज इन उपपुराण, 1005-I, II, कलकत्ता, 1958,
स्टडीज इन द पुराणिक रिकार्डस ऑन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, 1963

184 वही, स्टडीज इन उपपुराण, भाग-I, II

185 श्रीनिवास, एम० एन०, ए नोट ऑन सस्कृताइजेशन एण्ड वेस्टनाईजेशन,
य फार ईस्टर्न क्वार्टर्ली, एण्ड - 15, सख्या-4, अगस्त 1956,
-सोशल चेन्ज इन मार्डन इण्डिया, ओरिएण्ट लॉगमेन, नई दिल्ली, 1990

सामने आये– यह एक नितान्त जटिल प्रक्रिया थी। इसे पुराणकारो ने निरन्तर परिवर्तन, परिवर्द्धन और सशोधन के द्वारा सम्पन्न किया। इस दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि जिस प्रकार की परिस्थितियो ने पुराणो की रचना को उत्प्रेरित किया था, लगभग वैसी ही प्रवृत्तियाँ उपपुराणो की रचना के लिए भी उत्तरदायी रही होगी। हाजरा आदि विद्वानो ने पुराणो मे प्राप्त कलियुग के वर्णन को अव्यवस्था और सामाजिक सक्रमण का प्रतिबिम्ब बताया है।[186] इस प्रक्रिया मे एक समय ऐसा भी आया जब परम्परागत अट्ठारह पुराण तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये पूरी तरह समर्थ सिद्ध नही हो पा रहे थे। ऐसे मे एक दूसरे प्रकार के साहित्य की आवश्यकता अनुभव की गयी, इन्हे ही 'उप पुराण' सज्ञा प्रदान की गयी। हाजरा के अनुसार [187] इस वर्ग का साहित्य लगभग 650 ई0 से 800 ई0 के बीच अस्तित्व मे आ चुका था। यह कालखण्ड उपपुराण जैसे विस्तृत साहित्य की रचना के लिये बहुत अल्प है। क्योकि इनकी रचना एक लम्बे कालखण्ड मे विविध क्षेत्रो मे समय-समय पर होती रही।

कूर्म पुराण के अनुसार, उप पुराणो की रचना ऋषियो ने व्यास से अट्ठारह पुराण सुनने के बाद की।[188] निष्कर्ष यह है कि उप पुराण अट्ठारह पुराणो के बाद लिखे गये और पुराणो की तुलना मे इनका धार्मिक महत्व कम है। मत्स्य पुराण के अनुसार, उप पुराण स्वतत्र सवर्ग के ग्रन्थ नही थे अपितु वे मुख्य पुराणो के उपभेद मात्र थे।[189] इसके विपरीत स्वय उप पुराणो मे इस प्रकार के वर्गीकरण की सूचना नही मिलती। अधिकाश उप पुराण स्वय को पुराण की सज्ञा प्रदान करते है और मुख्य पुराणो के साथ अपना कोई सम्बध नही दिखाते।

अमरकोश मे पुराणो के पचलक्षण का उल्लेख मिलता है किन्तु उप पुराण के विषय मे वह भी मौन है।[190] इसी प्रकार विष्णु और मार्कण्डेय पुराण मे अट्ठारह पुराणो की सूची मिलती है, किन्तु उपपुराणो का कोई सदर्भ इनमे भी नही है।[191] इससे यह सिद्ध होता है कि अट्ठारह पुराणो की रचना उप पुराणो से पूर्व हो चुकी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि अट्ठारह पुराणो की रचना के बाद भागवत, पाचरात्र शैव और पाशुपत धर्मो मे अनेक नवीन तत्व तथा तद्जनित

---

186 हाजरा, आर॰ सी॰, स्टडीज इन द पुराणिक रिकार्डस इन हिन्दु राइट्स एण्ड कस्टम्स, दिल्ली, 1975, पुनर्मुद्रित, पृ॰ 193-205

187 वही, स्टडीज इन द उपपुराणज, भाग 1, 1958, पृ॰ 15

188 वही, पृ॰ 16

189 वही, पृ॰ 17

190 वही, पृ॰ 23

191 वही, पृ॰ 23

भेद और उपभेद प्रस्तुत हुये। इनकी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए स्मार्त परम्परा के अनुयायियो ने पूर्व रचित पुराणो मे या तो नवीन अश प्रक्षिप्त किये या पूरी तरह स्वतत्र ग्रन्थो की रचना की। चूँकि पौराणिक धर्म मे परम्परागत अट्ठारह पुराणो की मान्यता स्थिर हो चुकी थी इसलिए नवीन रचनाओ को अट्ठारह पुराणो के समकक्ष रखना सभव नही था। तत्कालीन जनमानस की धार्मिक भावनाओ की सतुष्टि का माध्यम होने के कारण नवीन वर्ग की रचनाये अत्यत लोकप्रिय हो चुकी थी। उन्हे पूर्णत उपेक्षित भी नही किया जा सकता था। इस समस्या का निदान देने के लिये उप पुराणो की कल्पना की गयी। इससे एक ओर परम्परागत पुराणो की सख्या अट्ठारह ही बनी रही तथा नवीन ग्रन्थ उप पुराणो के रूप मे स्वतत्र किन्तु द्वितीय स्तर के धार्मिक साहित्य के रूप मे प्रतिष्ठित हुये। यह उल्लेखनीय है कि सातवी से तेरहवी शताब्दी के बीच भारतीय समाज मे परिधीय क्षेत्रो मे ब्राह्मण सस्कृति का प्रसार हुआ। इस सस्कृति का स्वरूप बहुत लचीला था। इसमे वेद, स्मृति और पुराण इन तीनो परम्पराओ के साथ-साथ परिधीय क्षेत्रो के स्थानीय देवी-देवताओ को पौराणिक धर्म मे समायोजित व प्रतिष्ठित किया गया। सौर, शाक्त तथा गाणपत्य सम्प्रदायो का विकास इसी प्रकार के क्षेत्रीय व स्थानीय तत्वो के सहयोग से हुआ।

पारम्परिक पुराणो के साथ उप पुराणो की भी सख्या अट्ठारह मानने का आग्रह दिखता है। मुख्य पुराणो के नामकरण के बारे मे जहॉ पारस्परिक सहमति दिखती है, उप पुराणो के सदर्भ मे नामकरण की समस्या अत्यत जटिल है। हाजरा [192] ने परस्पर विरोधी पुराणो और उप पुराणो की दीर्घ सूचियो से कम से कम 100 ग्रन्थो का नाम प्रस्तुत किया है, जिनमे से अधिकाश अब प्राप्त नही है। हाजरा के अनुसार, महापुराणो और उप पुराणो मे प्रमुख भेद यह है कि उप पुराणो का क्षेत्रीय स्वरूप बहुत स्पष्ट है। यद्यपि ब्रह्म, पद्म, अग्नि, वराह, वामन, कूर्म तथा मत्स्य पुराणो के कुछ अश और अध्याय उनके क्षेत्रीय स्वरूप को स्पष्ट करते है किन्तु अपनी सम्पूर्णता मे इनमे से कोई भी ग्रन्थ किसी एक क्षेत्र विशेष से सम्बद्ध प्रतीत नही होता।[193] इसके विपरीत धार्मिक तथा सामाजिक रीति-रिवाज, पूजा-परम्परा, आचार-विचार व विश्वास आदि की दृष्टि से लगभग सभी उप पुराण अपना क्षेत्रीय स्वरूप सुस्पष्ट करते है। उदाहरणार्थ, विष्णुधर्मोत्तर की रचना कश्मीर मे, कालिका की आसाम मे तथा गणेश पुराण व अन्य बहुसख्यक उप पुराण बगाल मे लिखे गये प्रतीत होते

---

192 हाजरा, आर० सी०, स्टडीज इन द उपपुराणज, भाग 1, 1958, पृ० 2-13

193 चक्रवर्ती, कुणाल, रिलिजस प्रोसेज - द पुराणज एण्ड द मेकिंग आफ ए रिलिजन ट्रेडिशन, आक्सफोर्ड, 2001, पृ० 49

है।[194] हाजरा ने इस तथ्य की ओर भी विद्वानो का ध्यान आकृष्ट किया है कि महापुराणो की तुलना मे उप पुराणो का मूल स्वरूप अधिक सुरक्षित है, क्योकि उनमे उतने परिवर्तन, परिवर्द्धन, सशोधन तथा परवर्ती प्रक्षेपण नही हुये जितने महापुराणो मे हुये। उन्होने तुलनात्मक अध्ययन से यह भी स्पष्ट किया है कि अनेक उपपुराण कुछ महापुराणो से भी प्राचीन प्रतीत होते है।[195]

उप पुराण पचलक्षण को उतना महत्व नही देते जितना स्थानीय और नवीन धार्मिक प्रवृत्तियो तथा आदर्शो को ब्राह्मण धर्म के साथ समायोजन को देते है। कलियुग के राजवशो का वर्णन उप पुराणो मे प्राय नही मिलता। इसके स्थान पर धर्म तथा सामाजिक व्यवस्था, पौराणिक आख्यान, मूर्तिपूजा, देवसमूह, बहुदेववाद, सम्बधित उत्सव, अनुष्ठान, सस्कार, नीति तथा अन्धविश्वास उप पुराणो के वर्ण्य विषय रहे है।[196]

उप पुराणों की संख्या

उप पुराणो की प्राचीनता एव सख्या को लेकर विद्वानो मे मतैक्य नही है। इनका उल्लेख कुछ प्रारम्भिक महापुराणो मे किया गया है। मत्स्य पुराण,[197] नारसिह, नन्दी, आदित्य एव साम्य को उप पुराण की सज्ञा प्रदान की गई है। नारसिह उप पुराण की कुल श्लोक सख्या 18,000 बतायी गयी है। इसीप्रकार कूर्म,[198] पद्म [199] तथा देवी भागवत [200] मे अट्ठारह उप पुराणो के नाम उल्लिखित है। इनमे कुछ नाम– वामन, स्कन्द, ब्रह्माण्ड, नारदीय आदि महापुराण के नामो से साम्य रखते है। ध्यान देने योग्य है कि वामन पुराण केवल गरुड़ [201] तथा बृहद्धर्म [202] पुराणो की सूचियो मे उप पुराण के रूप मे उल्लिखित है, शेष सभी पुराण-सूचियो मे इसे महापुराण उद्घोषित किया गया है। कूर्म पुराण [203] मे इसे महापुराण एव उप पुराण दोनो कहा गया है। उप पुराणो की सख्या पर विमर्श करते हुये

---

194 हाजरा, उपपुराणाज, खण्ड 1, पृ० 214, खण्ड 2, पृ० 223
195 वही, खण्ड 1, पृ० 27
196 वही, पृ० 25-26
197 मत्स्य पुराण, आनदाश्रम सस्कृत ग्रन्थावली, पूना, 1907, 53-59-62
198 कूर्म पुराण, इण्डिका, कलकत्ता, 1890, 1 1 16-20
199 पद्म पुराण, 4 111, 95-98
200 देवी भागवत, गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता, 1960, 1 3 13-16
201 गरुड़ पुराण, 1 215 15-16
202 वृहत् धर्म पुराण, 1 25 20-22
203 कूर्म पुराण, 1 1 13-20

हाजरा [204] ने इनकी 23 विभिन्न सूचियॉ प्रस्तुत की है, जिनमे लगभग 100 उप पुराणो के नाम सकलित है। इनमे से कुछ का ही प्रकाशन हो सका है, शेष उप पुराणो की पाण्डुलिपियॉ विभिन्न पुस्तकालयो मे सुरक्षित है।

उप पुराणों की सूची

सूत सहिता [205] मे बीस उप पुराणो का नामोल्लेख है। विभिन्न पुस्तको मे उप पुराणो की अलग-अलग सूचियॉ दी गयी है। इनमे सख्यामूलक भिन्नता है। विभिन्न स्रोतो से उपलब्ध उप पुराणो की सूची निम्नवत है

क [206]

1	आद्य सनतकुमार द्वारा उद्घोषित	2	नारसिह	3	स्कन्द
4	शिवधर्म	5	दुर्वाससोक्त	6	नारदीय
7	कपिल	8	वामन	9	उशनसेरित
10	ब्रह्माण्ड	11	वरुण	12	कालिका
13	माहेश्वर	14	साम्ब	15	सौर
16	पराशरोक्त	17	मारीच	18	भार्गव

ख [207]

1	सनतकुमारीय	2	नारसिह	3	नान्दी पुराण
4	शिवधर्म	5	दुर्वासा पुराण	6	नारदीय
7	कपिल	8	वामन	9	औसनस
10	ब्रह्माण्ड	11	वारुण	12	कालिका
13	माहेश्वर	14	साम्ब	15	सौर
16	पराशरोक्त	17	मारीच	18	भार्गव

---

204 हाजरा, उपपुराणाज, खण्ड 1, पृ० 4-13

205 सूत सहिता, 1 13 18, माधवाचार्य कृत व्याख्या सहित, आनदाश्रम सस्कृत ग्रथावली, पूना, 1924

206 कूर्म पुराण, 1 1 16-20, बिलियोविल इण्डिका कलकत्ता, 1890, भाग 1 पृ० 4

207 नित्याकार प्रदीप - 1, नारसिह वाजपेयिनका, पृ० 9, (कूर्म पुराण के आधार पर 18 उप पुराणो की सूची प्रतिपादित है)

ग [208]

1	आद्य	2	नारसिह	3	वायवीय
4	शिवधर्म	5	दुर्वाससोक्त	6	नारदीय
7-8	उशनसेरित	9	नार्दिकेश्वर युग्म		
10	कपिल	11	वारुण	12	कालिका
13	माहेश्वर	14	साम्ब	15	दैव
16	पराशरोक्तमपर	17	मारीच	18	भास्कर

घ [209]

1	आद्या	2	नारसिह	3	कुमार द्वारा उच्चारित नान्द
4	शिवधर्म	5	दुर्वाससोक्त	6	नारदीय
7	कपिल	8	मानव	9	उशनसेरित
10	ब्रह्माण्ड	11	वारुण	12	कालिका
13	माहेश्वर	14	साम्ब	15	सौर
16	पराशरोक्तमपर	17	मारीच	18	भार्गवा

च [210]

1	आद्य	2	नारसिह	3	नान्द
4	शिवधर्म	5	दुर्वाससोक्त	6	नारदोक्त
7	कपिल	6	मानव	9	उशनसेरित
10	ब्रह्माण्ड	11	वारुण	12	कालिका
13	माहेश्वर	14	साम्ब	15	सौर
16	पराशरोक्तमपर	17-18	भागवत द्वयम्		

---

208 रघुनदन के यलयास तत्व मे उद्धृत कूर्म पुराण, द्रष्टव्य, हाज़रा, स्टडीज इन उपपुराणाज, भाग 1, पृ० 4-5

209 मित्रमिश्र् के वीलित्रोदय परिभाषा प्रकाश, पृ० 13-14 मे उद्धृत कूर्म पुराण, द्रष्टव्य हाजरा, वही, पृ० 5

210 हेमाद्रि के चतुर्वर्ग चिन्तामणि, भाग-1, पृ० 32-33 मे उद्धृत, कूर्म पुराण, दृष्टव्य, हाजरा, वही, पृ० 5-6

छ [211]

1	आद्य	2	नारसिह	3	नान्द
4	शिवधर्म	5	दुर्वाससोक्त	6	नारदोक्त
7	कपिल	8	मानव	9	उशनसेरित
10	ब्रह्माण्ड	11	वरुण	12	कालिका
13	माहेश्वर	14	साम्ब	15	सौर
16	पराशरोक्तप्रथम	17-18	भागवत द्वयम्		

ज [212]

1	आद्य	2	नारसिह	3	वायवीय
4	शिवधर्म	5	दुर्वाससोक्त	6	नारदीय
7	नन्दिकेश्वर-युग्म	8	उशनसेरित	9	कपिल
10	वारुण	11	साम्ब	12	कालिका
13	माहेश्वर	14	पाद्म	15	दैव
16	पराशरोक्तम् अपर	17	मारीच	18	भास्कर

झ [213]

1	आद्य	2	नारसिह	3	कन्द
4	शिवधर्म	5	दुर्वाससोक्त	6	नारदीय
7	कपिल	8	मानव	9	उशनसेरित
10	पवित्र ब्रह्माण्ड	11	वारुण	12	कलि-पुराण (कलि-कथा)
13	वशिष्टलिग माहेश्वर	14	साम्ब (सुसूक्ष्म)	15	सौर पुराण (सवित्र)
16	पराशर्य	17	मारीच	18	भार्गव

---

211 हेमाद्रि के चतुर्वर्ग चिन्तामणि, भाग-2, पृ० 21 मे उद्धृत कूर्म पुराण, दृष्टव्य, हाज़रा, वही, भाग 1 पृ० 6

212 शब्द कल्पद्रुम (उपपुराणान्तर्गत) मे उद्धृत कूर्म पराण, द्रष्टव्य, वही, भाग 1, पृ० 6-7

213 स्कन्द पुराण की सौर सहिता, द्रष्टव्य, वही, भाग 1, पृ० 7

ट[214]

1	सौर	2	नारसिह (पद्मपुराण से सबधित)
3	साडकेय (वैष्णव पुराण से सबधित)	4	ब्राहस्पत्य (वायव्य पुराण से सबधित)
5	दुर्वासा (भागवत से सबधित)	6	नारदोक्त (भविष्यपुराण से सबधित)
7	कपिल	8	मानव
9	उशनसेरित	10	ब्रह्माण्ड
11	वारुण	12	कालिका
13	माहेश्वर	14	साम्ब
15	सौर	16	पाराशर
17	भागवत	18	कोर्म

ठ[215]

1	सूर्य (ब्रह्म पुराण का खिल)	2	नारसिह (पद्मपुराण से सबधित)
3	नान्द पुराण	4	शिवधर्म
5	दुर्वासा	6	नारदोक्त
7	कपिल	8	मानव
9	उशनसेरित	10	ब्रह्माण्ड
11	वारुण	12	कलिका
13	माहेश्वर	14	साम्ब
15	सौर्य	16	पराशर
17	भागवत	18	कोर्म

ड[216]

1	आद्य	2	नारसिह	3	स्कन्द
4	शिवधर्म	5	नारदोक्त	6	दुर्वाससोक्त

---

214 स्कन्द पुराण 5 (3) रेवा खण्ड, पृ० 46-52, द्रष्टव्य, भाग 1, पृ० 7

215 रेवा माहात्म्य, द्रष्टव्य, हाजरा, वही, पृ० 8

216 स्कन्द पुराण-7 प्रभासखण्ड, 11-15, द्रष्टव्य, हाजरा, वही, पृ० 8-9

7	कपिल	8	मानव	9	उशनसेरित
10	ब्रह्माण्ड	11	वारुण	12	अन्यत् कलिकार्हयम्
13	माहेश्वर	14	साम्ब	15	सौर
16	पराशरोक्त	17	मारीच	18	भार्गव

ढ [217]

1	आद्य	2	नारसिह	3	नान्द
4	शिवधर्म	5	दुर्वासा	6	नारदीय
7	कपिल	8	मानव	9	उशनसेरित
10	ब्रह्माण्ड	11	वारुण	12	विशिष्ट कलिपुराण
13	वाशिष्ठ लैग (माहेश्वर)	14	साम्ब	15	सौरम्यहृदभुतम्
16	पराशर	17	मारीच	18	भार्गव

त [218]

1	आद्य	2	नारसिह	3	स्कन्द
4	शिवधर्म	5	दुर्वाससोक्त	6	नारदोक्त
7	कपिल	8	वामन	9	उशनसेरित
10	ब्रह्माण्ड	11	वारुण	12	कालिका
13	माहेश्वर	14	साम्ब	15	सौर
16	पराशरोक्तमपर	17	मारीच	18	भार्गव

थ [219]

1	आद्य	2	नारसिह	3	स्कन्द
4	दुर्वासा	5	नारदीय अन्यत्	6	कपिल
7	मानव	8	औशनप्रोक्त	9	ब्रह्माण्ड अन्यत्
10	वारुण	11	कालिका	12	महेश

---

217 स्कन्द पुराण की सूत सहिता, 13-18, शिव माहात्म्य खण्ड, द्रष्टव्य, हाजरा, वही, पृ० 9

218 गरुड़ पुराण 1 223 17-90, द्रष्टव्य, हाजरा, वही

219 पद्मपुराण, पातालखण्ड, 3 95-98, द्रष्टव्य, हाजरा, वही

13	साम्ब	14	सौर	15	पराशर
16	मारीच	17	भार्गव	8	कौमार

द [220]

1	सनत्कुमार	2	नारसिह	3	नारदीय
4	शिव	5	दौर्वाससमुक्तम्	6	कपिल
7	मानव	8	औसनस	9	वारुण
10	कालिक	11	साम्ब	12	नन्दीकृत
13	सौर	14	पराशरप्रोक्त	15	अतिविशिष्टम्
16	माहेश्वर	17	भार्गव	18	साविस्तारम् वशिष्ठ

ध [221]

1	आदिपुराण	2	आदित्य	3	वृहन्नारदीय
4	नारदीय	5	नान्दीश्वर पुराण	6	वृहन्नान्दीश्वर
7	साम्ब	8	क्रियायोगसार	9	कालिक
10	धर्म पुराण	11	विष्णु धर्मोत्तर	12	शिवधर्म
13	विष्णुधर्म	14	वामन	15	वारुण
16	नारसिह	17	भार्गव	18	उत्तमम् वृहद्धर्म

न [222]

1	आद्य	2	नारसिह	3	नान्द
4	शिवधर्म	5	दुर्वास	6	नारदीयम्
7	कपिल	8	मानव	9	उशनसेरित
10	ब्रह्माण्ड	11	वारुण	12	कलि पुराण

---

220 देवीभागवत, 1 3 13-16, द्रष्टव्य, हाजरा, वही

221 वृहद्धर्म, 1 25 23-25, द्रष्टव्य, हाजरा, वही, पृ० 10

222 पाराशर उप पुराण, 1 26 31, द्रष्टव्य, हाजरा, वही, पृ० 10-11

13	वाशिष्ट लैग	14	साम्ब	15	सौर
16	पराशर	17	मारीच	18	भार्गव

प [223]

1	सनत कुमार	2	नारसिह	3	नारदीय
4	शिव	5	अनुत्तमदुर्वासा	6	कपिल
7	पुण्यम् मानव	8	औसनस	9	वारुण
10	कालिकाख्य	11	साम्ब	12	नान्दीकृत
13	सौर्य	14	पराशर	15	अतिविशिष्टम् आदित्य
16	माहेश्वर	17	भार्गवाख्य	18	विशिष्टम् वाशिष्ठ्य

फ [224]

1	आद्य	2	नारदीय	3	नारसिह
4	शिवधर्म	5	दुर्वासा	6	कापिलेय
7	मानव	8	शौक्र	9	वारुण
10	ब्रह्माण्ड	11	काली पुराण	12	वाशिष्ट लैग
13	महेश	14	साम्ब	15	सौर
16	पाराशर्य	17	मारीच	18	भार्गव

ब [225]

1	सनत कुमार	2	नान्द	3	नारसिह
4	दुर्वासा	5	शिवधर्म	6	कापिल्य
7	मानव	8	शौक्र	9	वारुण
10	वाशिष्ठ	11	साम्ब	12	काली पुराण
13	महेश	14	पराशर	15	भार्गव
16	मारीच	17	सौर	18	ब्रह्माण्ड

---

223 विध्यमाहात्म्य अ० 4, द्रष्टव्य, वही, पृ० 11

224 मित्रमिश्र के वीरमित्रोदय परिभाषा प्रकाश, पृ० 14 मे उद्धृत ब्रहमवैवर्त, द्रष्टव्य, वही, पृ० 11-12

225 गोपालदास के भक्तिरत्नाकर मे उद्धृत ब्रहमवैवर्त, द्रष्टव्य, वही, पृ० 12

भ [226]

1	आद्य	2	नारसिह	3	नान्द
4	शिवधर्म	5	दुर्वासा	6	नारदीय
7	कापिल	8	मानव	9	उशनसेरित
10	ब्रह्माण्ड	11	वारुण	12	कालि पुराण
13	वाशिष्ट लैग (माहेश्वर)	14	साम्ब पुराण	15	सौर
16	पराशर	17	मारीच	18	भार्गव

म [227]

1	वृहन्नारसिह	2	वृहद्वैष्णव	3	गारुड
4	वृहन्नारदीय	5	नारदीय	6	प्रभाषक
7	लीलावती पुराण	8	देवी	9	कालिका
10	आखेटक	11	वृहन्नादि	12	नान्दिकेश्वर
13	एकाम्र	14	एकपाद	15	लघु भागवत
16	मृत्युजय	17	आगिरस	18	साम्ब

य [228]

1	आद्य	2	नारसिह	3	नारदीयक
4	वाशिष्ठ लैग	5	मारीच	6	नन्दारव्य
7	भार्गव	8	माहेश्वर	9	औसनस
10	आदित्य	11	गणेशक	12	कालीय
13	कपिल	14	दुर्वासा	15	शिवधर्म
16	पराशरोक्त	17	साम्ब	18	वारुण

उप पुराणों के भेद

महापुराणो की भॉति उपपुराणो के सौर, शैव, शाक्त, वैष्णव तथा गाणपत्य आदि विभेद मिले है, जो इस प्रकार है

---

226 मधुसूदन सरस्वती का प्रस्थान भेद, पृ० 10 मे उद्धृत श्लोक, द्रष्टव्य, वही, पृ० 12

227 एकाम्रपुराण, 1 20, ब 23, द्रष्टव्य, वही, पृ० 13

228 वारुणोदयपुराण अ 6, द्रष्टव्य, वही, पृ० 13

सौर उपपुराण	1	सूर्य पुराण
	2	साम्ब पुराण
	3	भास्कर पुराण
	4	आदित्य पुराण
	5	वह्नि पुराण
	6	सौर पुराण
	7	सौरधर्मी पुराण
शाक्त उपपुराण	1	कालिका पुराण
	2	दैवी पुराण
	3	महा भागवत
	4	नन्दी
	5	वृहन्नन्दिकेश्वर
	6	शारदा पुराण
शैव उपपुराण	1	शिवधर्म पुराण
	2	माहेश्वर पुराण
	3	पाशुपति पुराण
	4	स्कन्द पुराण
वैष्णव उपपुराण	1	विष्णुधर्म
	2	विष्णुधर्मोत्तर पुराण
	3	नरसिह पुराण
गाणपत्य उपपुराण	1	मुद्गल पुराण
	2	गणेश पुराण

जिस सम्प्रदाय मे जो देवता प्रधान है, उसी को प्रमुखता दी गयी है। अन्य देवता गौण है। शैव, शाक्त, गाणपत्य उप पुराणो मे शिव, शक्ति व गणपति ही उपास्य है।

गणेश पुराण को भी उपपुराण कहा गया है। गणेश पुराण ने स्वय को उपपुराण कहा

है।[229] टीकाकार राजकरण शर्मा ने गणेश पुराण और भार्गव पुराण को वस्तुत एक ही माना है।[230] प्रमाण रूप मे त्रिकालदर्शी साधु भृगु और सौराष्ट्र के शासक सोमकान्त, जो कुष्ठ रोग से पीडित थे, के मध्य वार्तालाप उद्धृत किया है। वही वार्तालाप भार्गव पुराण मे भी है। श्री आर सी हाजरा का भी मत है कि गणेश पुराण एक उप पुराण है।[231]

उपपुराणो के रचनाकाल को लेकर भी विद्वानो मे मतभेद है। कुछ का मत है कि उपपुराण प्राचीन नही है। किन्तु यह मत निर्विवाद है कि उप पुराण महापुराणो के बाद ही सग्रहीत है। भ न काणे के अनुसार [232] मुहम्मद गजनवी के साथ अल्बरूनी भारत की यात्रा पर आया था। उसने महत्वपूर्ण यात्रा वृतान्त 1030 ई0 मे लिखा, जिसमे कुछ उपपुराणो के नाम भी उल्लिखित है। प्रमुख रूप से नरसिह, नान्द, आदित्य, सोम एव साम्ब ऐसे उपपुराण है, जिनके बारे मे यह ज्ञात होता है कि ये 1030 ई से पूर्व ही लिखे जा चुके थे।

विंटरनित्स इन उपपुराणो का रचनाकाल छठी एव दसवी शताब्दी के मध्य का मानते है [233], जबकि डॉ बूलर [234] के मत से पॉचवी-छठी शताब्दी के उत्तर काल मे ही पुराणो की रचना होने की सभावना है। हाजरा [235] ने भी उपपुराणो का रचना काल 650-800 ई0 माना है। हाजरा के अनुसार,[236] वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणो मे उपलब्ध वर्णन 200-275 ईसवी के आसपास का है। इसी तरह विष्णु पुराण मे मिलने वाला वर्णन तीसरी शताब्दी के अन्तिम तथा चौथी शताब्दी के प्रथम चरण की राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक स्थिति को प्रतिबिम्बित करता है।

तीसरी या चौथी शताब्दी मे लिखे गये इन ग्रन्थो से तत्कालीन समाज की विविध विशेषताएँ परिलक्षित होती है– जैसे वर्णसकर शूद्रो तथा ब्राह्मणो के बीच बैर, वैश्यो द्वारा कर देने और यज्ञ करने से इनकार, करभार से पीडित प्रजा, चोरी, डकैती, परिवार और सपत्ति की असुरक्षा, योगक्षेम का विनाश, कर्मकाण्डी स्थिति के मुकाबले सपत्ति का बढ़ता महत्व तथा म्लेच्छ राजाओ का प्रभुत्व। ये सब मिलकर सामाजिक अव्यवस्था को और भी

---

229 गणेश पुराण 1 8 भूमिका, नागप्रकाशन, 1993

230 वही, पृ० 6

231 हाजरा, आर सी , द गणेशपुराण, जी ए आ रि इ , पृ० 78-80

232 काणे, बी पी , धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 4, पृ० 382 एव 410-411

233 विंटरनित्स, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग 1, पृ० 518

234 डा बूलर, इण्डियन एक्टिक्स, पृ० 119

235 हाजरा, आर सी , स्टडीज इन उपपुराणाज, भाग 1, पृ० 6

236 वही, स्टडीज इन द पुराणिक रेकर्ड्स ऑन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, पृ० 174-75

घनीभूत कर रहे थे। स्थापित समाज व्यवस्था के नियमो के उल्लघन का अर्थ कलि अथवा उसके लक्षणो का प्रकट होना माना गया है। इन कर्मो के सम्बन्ध मे ब्राह्मणीय दृष्टि कठोर नही है। वह देश और काल के अनुसार बदलती रहती है।[237]

इस काल मे रचित उपपुराणो मे भारतीय सस्कृति के विविध पक्षो का सयोजन किया गयाा है। इनमे भारतीय धर्म के विविध पक्षो, धार्मिक विधानो, मूर्ति पूजा, ईश्वर भक्ति, दर्शन, देवता, परम्परा, पर्व, उत्सव आदि को अनुप्राणित किया गया है। परवर्ती आलोचको द्वारा पुराणो पर अनेकानेक विमर्श हुए है, किन्तु उपभेदीय परिस्थिति के कारण इन पर अधिक विचार नही हुआ। सभवत यही कारण है कि उपपुराणो की विषयवस्तु यथावत तथा मौलिक रही। अत उपपुराणो को भारतीय सस्कृति के आधार स्तम्भो मे गिना जाता है।

गणेश पुराण का काल निर्धारण

गणेशोपासना से सबधित गणेश पुराण तथा मुद्गल पुराण दोनो ही गाणपत्य सम्प्रदाय के अध्ययन हेतु सर्वाधिक विशद् एव महनीय स्रोत है।

आर0 के0 शर्मा के अनुसार गणेश पुराण को उपपुराणो की सूची मे आधुनिक खोजो के परिणामस्वरूप रखा गया है। टीकाकार नीलकण्ठ ने गणेश पुराण को प्राचीन बताते हुये अपना मत रखा है तथा इसका आधार 'गणेश गीता' को बनाया है, जो कि गणेश पुराण का एक भाग है।[238] उनके अनुसार, गणेश पुराण और भार्गव पुराण एक ही है, क्योकि गणेश पुराण मे त्रिकाल-दर्शी साधु भृगु और सौराष्ट्र शासक सोमकात, जो कुष्ठ रोग से पीडित थे, वार्तालाप उद्धृत है तथा वही वार्तालाप भार्गव पुराण मे भी है। अत गणेश पुराण का प्रारम्भिक नाम भार्गव पुराण था।[239] हाजरा द्वारा उप पुराणो की दी गयी तेइस सूचियो मे से पद्रह मे भार्गव पुराण का उल्लेख है।[240]

मुद्गल पुराण एव गणेश पुराण के काल निर्धारण को लेकर अनेक विद्वानो के अलग-अलग मत है। हाजरा के अनुसार, मुद्गल 1100 एव 1400 ई0 के मध्य का है। उनके अनुसार, यह गणेश पुराण से पहले का है। फरक्यूहर [241] ने भी मुद्गल पुराण को गणेश

---

237 शर्मा, रामशरण, पूर्वमध्यकालीन भारत का सामती समाज और सस्कृति, राजकमल प्रकाशन तृतीय सस्क०, पृ० 62

238 गणेश पुराण, भूमिका, पृ० 6

239 वही, पृ० 6-7

240 हाजरा, आर सी , स्टडीज इन द उपपुराणाज, कलकत्ता सस्कृत कालेज, 1958

241 हाजरा, आर सी , द गणेश पुराण, जर्नल ऑफ द जी एन झा सस्कृत विद्यापीठ, खण्ड 1, नव 1951, पृ० 97

पुराण से पूर्व का माना है।[242] प्रेस्टन ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि मुद्गल पुराण का समय अज्ञात है।[243] काणे ने भी इन दोनो के काल को अनिश्चित माना है। कोर्टराइड ने मुद्गल पुराण को 14वीं से 16वी शताब्दी के मध्य का माना है।[244] ग्रेनॉफ का कहना है कि आन्तरिक साक्ष्यो के आधार पर इस ग्रन्थ के सन्दर्भ मे किसी निश्चित तिथि तक पहुँचना बहुत कठिन है। उन्होने गणेश से सम्बन्धित ग्रन्थो की तुलनात्मक समीक्षा के आधार पर सापेक्ष तिथि निर्धारण की बात की है तथा इस सन्दर्भ मे यह माना है कि मुद्गल पुराण गणेश की परम्परा मे लिखे जाने वाले उच्चस्तरीय दार्शनिक साहित्य का अतिम बिन्दु है। मुद्गल पुराण मे गणेश पुराण का सन्दर्भ प्राप्त होता है। मुद्गल पुराण मे परवर्ती रचना श्री अथर्वशीर्ष का उल्लेख प्राप्त होता है। चूँकि कोर्टराइट अथर्वशीर्ष को 16वी तथा 17वी शताब्दी के बीच का लिखा मानते है इसलिए मुद्गल पुराण 17वी शताब्दी के बाद का ग्रन्थ ग्रेनॉफ द्वारा माना गया है।[245] थापन के अनुसार मुद्गल पुराण के कुछ अश परवर्ती हो सकते है, पूरा ग्रन्थ नही। उन्होने यह आग्रह किया है कि आन्तरिक साक्ष्यो के तुलनात्मक अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि ग्रन्थ का मूल स्वरूप अत्यन्त प्राचीन है। महाराष्ट्र, सौराष्ट्र आदि परिधीय क्षेत्रो मे नवीन परिस्थितियो के कारण गणेश की पूजा का महत्व जैसे-जैसे बढता गया तदनुसार इस पुराण का सशोधन और इसकी पुनर्व्याख्या होती गयी। इसी कारण इसमे परवर्ती अशो का प्रक्षेपण दिखायी देता है।[246]

आर सी हाजरा ने गणेश पुराण का अध्ययन गोपाल नारायण कम्पनी, बम्बई से 1892 मे प्रकाशित सस्करण के आधार पर किया था। महाराष्ट्र के मोरे गॉव के श्री योगीन्द्र मठ द्वारा सन् 1979 तथा 1985 मे गणेश पुराण के कुछ खण्डो का प्रकाशन किया गया था।[247] यह उल्लेखनीय है कि मोरे गॉव अष्टविनायक तीर्थ क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। 1876 मे पूना और बम्बई से दो अलग-अलग सस्करण गणेश पुराण के प्रकाशित हो चुके थे।[248]

---

242 फरक्यूहर, जे एन , आउट लाइन आफ रिलीजियस लिटरेचर ऑफ इडिया, पृ० 270

243 प्रेस्टन, एल० डब्ल्यू०, सबरीजनल रिलीजियस सेन्टर्स इन द हिस्ट्री ऑफ महाराष्ट्र द साइट सेक्रेट टू गणेश, इन एन० के० वागले (एडीटर) इमेजेस ऑफ महाराष्ट्र अ रीजनल प्रोफाइल ऑफ इण्डिया, पृ० 104

244 काणे, पी वी 'धर्मशास्त्र का इतिहास', खण्ड 2, भाग 2, पृ० 725
मूर्ति, जी श्रीनिवास (एडीटर) शैव उपनिषद्, पृ० 76-85
ग्रेनाफ फिलिप्स, गणेश ऐज मेटाफर द मुद्गल पुराण इन राबर्ट एल ब्राउन, (एडीटर) गणेश ऑफ एन एशियन गॉड, पृ० 85-99

245 थापन, अनिता रैना, अण्डरस्टैंडिंग गणपति इनसाइट इनटू डायनामिक्स ऑफ दि कल्ट, दिल्ली, 1997, पृ० 30-31

246 वही, पृ० 31

247 वही, पृ० 31

248 वही, पृ० 32

श्री योगेन्द्र के सस्करण मे गणपति से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रीय धार्मिक केन्द्रो का अध्ययन किया गया है। उन्होंने यह माना है कि गणेश पुराण मे इसी काल से सम्बन्धित घटनाओ का वर्णन है।[249]

हाजरा ने गणेश पुराण को 1100-1400 ई0 के मध्य का माना है।[250] फरक्यूहर ने इसे 900 से 1350 ई0 के मध्य का माना है।[251] इससे प्रतीत होता है कि इसका अस्तित्व 12वी-13वी शताब्दी के मध्य आया होगा। गणेश पुराण को 18वी शताब्दी मे तमिल मे अनुवादित किया गया था। इस तमिल सस्करण को विनायक पुराण के नाम से सन्दर्भित किया गया था।[252]

गणेश पुराण पहली बार बम्बई के गोपाल नारायण प्रेस से पाण्डुलिपि के रूप मे 1882 ई0 मे प्रकाशित हुआ, जिसे उद्धवाचार्य ऐनापुरे और कृष्ण शास्त्री पित्रे ने सम्पादित किया था।[253] इस पुराण का ही एक भाग है– गणेश गीता, जिसे नीलकण्ठ की टीका 'गणपति भव दीपिका' के साथ आनन्दआश्रम प्रेस, पूना ने 1906 ई0 मे प्रकाशित किया।[254] श्री गणेश कोश के सचित्र कार्य के अन्तर्गत गणेश ग्रन्थ खण्ड मे गणेश पुराण प्रथम स्थान पर रखा जाता है जिसे अरमेन्द्र गाडगिल ने सपादित किया और श्रीराम बुक एजेसी, पूना ने प्रकाशित किया। इसका दूसरा सस्करण 1981 ई0 मे प्रकाशित हुआ।[255]

गणेश पुराण का काल निर्धारण करते हुये नीलकण्ठ [256] ने इसका रचना काल 16 वी शताब्दी से पूर्व का ही माना है। आर सी हाजरा ने इसे 11वी शताब्दी से पहले का नही माना है।[257] जे एन फरक्यूहर ने भी गणेश पुराण को 900 ई0 से 1350 ई0 के बीच का माना है।[258] उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर, गणेश पुराण मे पूर्वमध्यकालीन सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक प्रवृत्तियो का निरूपण स्थान-स्थान पर होने के कारण, इसकी तिथि

---

249 पेस्टन, एल डब्ल्यू, पूर्व उद्धृत, पृ० 103
250 हाजरा, आर सी , 'द गणेश पुराण', पूर्व उद्धृत, पृ० 97
251 फरक्यूहर, जे एन , एन आउट लाइन ऑफ रिलीजियस लिटरेचर ऑफ इण्डिया, पृ० 226-270
252 पेस्टन, एल० डब्ल्यू०, पूर्व उद्धृत, पृ० 123
253 गणेश पुराण, पूर्वोक्त, पृ० 7
254 शर्मा, रामकरन, गणेश पुराण, भूमिका, पृ० 8
255 हाजरा, पूर्वोद्धृत, पृ० 101
256 शर्मा, राम करन, वही, पृ० 9
257 हाजरा, आर सी , द गणेश पुराण, जर्नल ऑफ जी एन झा सस्कृत विद्यापीठ, खण्ड 1, नवम्बर 1951, पृ० 79-100
258 फरक्यूहर, जे एस , आउटलाइन आफ द रिलीजियन लिटरेचर, पृ० 266-270

11वी से 14वी शताब्दी के बीच रखी जा सकती है। यह भी उल्लेखनीय है कि इस पुराण मे गणेश की उपासना के अनेक ऐसे सन्दर्भ मिलते है जिनसे ज्ञात होता है कि गणेश उपासना मे जनजातीय तत्व भी कर्मकाण्ड के अग के रूप मे समाहित हो रहे थे। उदाहरणार्थ, गणेश के इक्कीस नामो के उच्चारण का उल्लेख प्राप्त होता है तथा इन्हें इक्कीस फल, इक्कीस दूर्वा (घास) के टुकडे समर्पित करने का विधान प्रस्तुत किया गया है। इसीप्रकार विनायक चतुर्थी व्रत के अवसर पर गणेश की प्रतिमाओ को छत्र, ध्वज इत्यादि से सुसज्जित करके लोगो द्वारा खीचे जाने वाले रथ से ले जाने का जो उल्लेख प्राप्त होता है उसमे स्पष्ट रूप से सामन्ती प्रभाव दिखायी पड़ता है। जनजातीय तत्वो का पौराणिक परम्परा मे समावेश, यद्यपि प्राचीन काल से ही प्रारम्भ हो चुका था परन्तु उसमे तीव्रता पूर्वमध्यकाल मे ही आयी है। इसीप्रकार धार्मिक क्षेत्र मे सामन्तवादी व्यवस्था के आधार पर देवताओ के स्तरीकरण तथा उनकी उपासना मे ऐश्वर्य एव प्रभुता का समावेश पूर्वमध्यकालीन देन है। इन साक्ष्यो का आकलन करते हुए गणेश पुराण का रचनाकाल पूर्वध्यकाल का अतिम चरण मानना अधिक उचित है।

❑❑

द्वितीय अध्याय

गाणपत्य संप्रदाय का विकास

गाणपत्य सप्रदाय का उदय ▫ गाणपत्य सप्रदाय और गणेश पुराण ▫ गणेश का स्वतत्र स्वरूप अभिलेखीय साक्ष्य ▫ गणेश पुराण की विषयवस्तु ▫ उपासना खण्ड ▫ उपासना खण्ड का ऐतिहासिक महत्व ▫ क्रीडा खण्ड ▫ क्रीडा खण्ड का ऐतिहासिक महत्व ▫ गणेश का स्वरूप और उनके विभिन्न अवतार गणेश पुराण तथा अन्य पौराणिक साहित्य के सदर्भ मे

द्वितीय अध्याय

गाणपत्य संप्रदाय का विकास

गाणपत्य संप्रदाय का उदय

भारतीय सस्कृति विविधताओ एव बहुलताओ के लिये विख्यात है। यहॉ की धार्मिक पृष्ठभूमि भी अनेक सम्प्रदायो, पथो एव विचारधाराओ से परिपूर्ण रही है। इस बहुलतावादी धार्मिक परम्परा मे गणेश न केवल सर्वाधिक लोकप्रिय देवता के रूप मे प्रतिष्ठित है अपितु वे समन्वयवादी परम्परा के सर्वोच्च प्रतीक भी है। वे तीनो महत्वपूर्ण धार्मिक परम्पराओ –हिन्दू, बौद्ध और जैन–से जुडे है। वे किसी सम्प्रदाय विशेष तक सीमित नही है बल्कि सभी भारतीय धार्मिक धाराओ ने उन्हे मान्यता और महत्व दिया है। यहॉ पर यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण होगा कि गणपति वैदिक देव समूह मे स्थान नही पा सके थे। इनका तत्कालीन स्वरूप पुराणो ने विकसित किया। यह जानना भी महत्वपूर्ण है कि गणेश अपनी प्रारभिक अवधारणा मे दुरात्मा के रूप मे प्रस्तुत हुए, जो मनुष्य के जीवन मे बाधाये उत्पन्न करते थे। गणेश के विघ्नकर्ता से विघ्नहर्ता की अवधारणात्मक विकास-यात्रा का विस्तार से विश्लेषण करना आवश्यक है। क्योकि इसी विकास-यात्रा मे गाणपत्य सम्प्रदाय के उद्भव, विकास और विस्तार के कारक भी छिपे हुये है।

परम्परागत गणेश की कुछ विलक्षण चारित्रिक विशिष्टताये है जो उन्हे अन्य देवताओ से अलग करती है। इन्हे इस प्रकार रखा जा सकता है–

1 धारणात्मक विनायक पूर्व मे विघ्नेश्वर विघ्नकर्ता है, बाद मे विघ्नहर्ता बन जाते है।

2 सामान्यत गणेश को सप्तमातृकाओ के साथ प्रदर्शित किया गया है।

3 शारीरिक विशिष्टताओ के अतर्गत उनके मानवीय शरीर पर गजशीर्ष स्थापित है।

4 गणेश विभिन्न मदिरो व मूर्तियो मे नव ग्रहो के साथ उत्कीर्ण हुये है।

5 गणेश के आभूषण व यज्ञोपवीत के रूप मे सर्प सुशोभित है।

अथर्ववेद [1] जीवन मे होने वाली विषम घटनाओ जैसे, बीमारी, विपत्ति और मृत्यु के

---

1 अथर्ववेद, 19 9 6-10

लिये कुछ शक्तियो को जिम्मेदार मानता है। वे शक्तियॉ है–भूकम्प, पर्यावरणीय विचलन, विपरीत अतरिक्षीय गतियॉ, उल्का, प्राकृतिक आपदायें, नक्षत्र, दैवी शक्तियो का क्रोध और दुष्ट आत्माये, जो मनुष्य के विरुद्ध उपद्रव करती है तथा कष्ट पहुँचाती है।[2] अथर्ववेद मे अनेक सामाजिक बाधाओ व मानसिक बीमारियो के पीछे भी पराप्राकृतिक शक्तियो को ही जिम्मेदार माना गया है। उन शक्तियो का विस्तृत वर्णन भी किया गया है। उनमे प्रमुख है– दुष्ट आत्माये, दानव, पिशाच, अत्रिनस(जो अपने शिकार का मास भक्षण करते है), कण्सर(जो भ्रूण का शिकार करते है), मृगी रोगी (अपस्मार)[3], राक्षस[4] (जो व्यक्ति के भेदभाव शक्ति को मिटा देते है), ग्राही[5] (जो झपट लेते है), जम्भा[6] (विप्लवकारी) आदि। वस्तुत अथर्ववेद रोगो को दानव की सज्ञा देता है। 'निऋति' नामक देवी का उल्लेख भी इसमे है जो हानि, मृत्यु और अप लक्षणो की देवी के रूप मे है। वह दुर्भाग्यकारिणी है। यज्ञ मे बाधाये न पहुँचाये, यज्ञ से दूर रहे, इसलिये उसका आवाहन किया जाता था। उससे प्रार्थना की जाती थी कि वह बाधाओ एव अवरोधो को दूर करे।[7] महाकाव्य काल मे उसका स्थान ज्येष्ठा अलक्ष्मी ने ले लिया, जो सौभाग्य एव समृद्धि की प्रतीक लक्ष्मी का विपरीत स्वरूप थी।[8] बौधायन गृहसूत्र मे ज्येष्ठा अलक्ष्मी को हस्तिमुखा और विघ्नपरसादा कहा गया है।[9] बौधायन गृह परिशिष्ट[10] मे एक पूजा विधान देवी ज्येष्ठा अलक्ष्मी को समर्पित है, जिसे वहॉ पर हस्तिमुखा के विशेषण से सम्बोधित किया गया है। परवर्ती साहित्य मे, अथर्ववेद की यही दुष्ट आत्माये, विघ्नकर्ता के रूप मे विकसित हुयी होगी।[11] विघ्नकर्ता या कठिनाइयॉ उत्पन्न करने वाले चरित्र का उदाहरण मानवगृह सूत्र (7वी-5वी शताब्दी ई०पू०) मे 'विनायक' के सन्दर्भ मे प्राप्त होता है।[12]

मानवगृह सूत्र उन विनायको के विषय मे लिखता है जो मानव जीवन के विविध क्षेत्रो

---

2 कृष्णन युवराज, अनरिवेलिग एन एनिग्मा, नई दिल्ली, 1999, पृ० 127

3 अथर्ववेद, 2 2 5, 2 4 37, 19 36 6

4 वही, 6 111 2

5 वही, 2 9 1, 2 10 8, 3 11 1, 6 112 1, 8 2 12, 12 3 18

6 वही, 2 4 2

7 कृष्णन युवराज, वही, पृ० 126

8 लाल, एस० के०, 'फीमेल डिविनीटीज', द हरियाणा साहित्य अकादमी जर्नल आफ एण्डोलॉजिकल स्टडीज, 1987, खण्ड-II पृ० 73

9 कृष्णन युचराज, वही, पृ० 128

10 बौधायन गृहपरिशिष्ट, 3 10 1

11 कृष्णन युचराज, वही, पृ० 126

12 मानव गृहसूत्र, 2 14

मे बाधाये उत्पन्न करके उद्देश्य की सिद्धि को रोकते है। ये प्रभावित व्यक्तियो मे मानसिक अवसाद पैदा करते है।[13] मानवगृह सूत्र मे चार दुष्ट राक्षसो–शालकटकट, कूष्माण्डराजपुत्र, उस्मित और देवयजन को विनायक कहा गया है।[14] यह भी वर्णित है कि विनायको से आविष्ट हो जाने पर लोगो की मन स्थिति एव क्रिया-कलाप मे विषमता उत्पन्न होती है।[15] उन्हे दु स्वप्न आते है। कन्याओ का विवाह अवरुद्ध हो जाता है, राजकुमारो को राज्य लाभ नही होता। स्त्रियॉ बध्या हो जाती हैं। वणिको का व्यापार विनष्ट हो जाता है।[16] इन विनायको की शाति हेतु कुछ विधियो का भी उल्लेख है, जिसमे कच्ची मछली, मास, सुरा और रोटियॉ उन्हे समर्पित की जाती है।[17] वैजवाय गृह भी चार विनायको–मिता, समिता, शालकटकट और कुसुमेन्द्रज का उल्लेख करता है [18] तथा मानव गृह सूत्र मे वर्णित विनायको के लक्षणो की पुष्टि करता है।[19] कालान्तर मे याज्ञवल्क्य स्मृति [20] (प्रथम-तृतीय शताब्दी) मे भी चारो विनायको का उल्लेख प्राप्त होता है। हाजरा के अनुसार, उपनिषदो की एकेश्वरवादी विचारधारा के प्रभावस्वरूप चारो विनायको को एक ही नाम से जाना गया।[21] रुद्र व ब्रह्मा ने इस 'विनायक' को मनुष्य के कार्यो मे विघ्न पैदा करने तथा सफलता दिलाने हेतु गणो के नायक के रूप मे नियुक्त किया।[22] महाभारत मे [23] अनेक दुष्ट विनायको का उल्लेख मिलता है। महाभारत मे शाति पर्व [24] के प्रक्षिप्त अश मे विनायक को राक्षस, पिशाच, भूत और विघ्न पैदा करने वाले तत्व के रूप मे वर्णित किया गया है। वहॉ इन्हे सर्वप्रथम गणेश्वर कहा गया है।[25] यह वर्णित है कि गणेश्वर-विनायको द्वारा सारा विश्व नियत्रित होता है।[26] ऋग्वेद मे इससे भी

---

13 हाज़रा, आर० सी० " गणपतिवरशिप' एण्ड द उपपुराणाज डीलिग विद इट" जर्नल आफ गगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट, खण्ड-5,भाग 4, 1948, पृ० 264

14 कृष्णन युवराज, अनरिवेलिंग एन एनिग्मा पृ० 127

15 मानव गृहसूत्र, 2 14 19

16 हाज़रा, आर० सी०, वही, पृ० 264

17 मानव गृहसूत्र, 2 14 28

18 हाज़रा, आर० सी०, वही पृ० 265

19 वही, पाद टिप्पणी 5

20 याज्ञवल्क्य स्मृति, 1 271-294

21 हाजरा, आर सी , वही, पृ० 266

22 याज्ञवल्क्य स्मृति, 1 271, 290-294 उद्धृत हाजरा, वही, पृ० 270

23 महाभारत, 3 65 23, 12 284 131, 13 150 25

24 महाभारत, भाग 16, परिशिष्ट, सख्या-28 श्लोक 420

25 हाजरा, आर सी , वही, पृ० 267

26 महाभारत, 3 150 25

पूर्व 'गणपति' शब्द का उल्लेख 'वृहस्पति' के लिये हो चुका था, [27] जो स्वर्गिक यजमानो के देवता थे। उनके साथ गायको का एक समूह रहता था।[28] ऋग्वेद मे इन्द्र के लिये भी 'गणपति' शब्द प्रयुक्त हुआ है।[29] यजुर्वेद मे 'गणपति' शब्द रुद्र (देवताओ के स्वामी) के गणो के रूप मे उल्लिखित है।[30] अत स्पष्ट है कि वेदो मे उल्लिखित 'गणपति' या 'गणनायक' शब्द को गणेश से सन्दर्भित नही किया जा सकता है।[31]

वैसे तो गणेश का मूल स्रोत अथर्ववेद, मानवगृह सूत्र व याज्ञवल्क्य स्मृति मे वर्णित विनायक से माना जा सकता है।[32] लेकिन याज्ञवल्क्य स्मृति से गणपति के 'विनायक' प्रत्यय के विकास का क्रमबद्ध प्रमाण मिलता है। यहॉ इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि याज्ञवल्क्य स्मृति मे वर्तमान गणेश से सन्दर्भित गुणो का उल्लेख नही हुआ है, फिर भी गणेश का प्रत्यय वहॉ धीरे-धीरे स्वरूप ग्रहण कर रहा था।[33] इस स्मृति मे मानवगृह सूत्र के चार विनायको को एक मे समाहित कर लिया गया तथा वे विघ्न न डाले इसलिये उन्हे किसी कार्य के पूर्व पूजा समर्पित करने की परम्परा प्रारम्भ हुई।[34] इस तरह से विनायक को धार्मिक अनुष्ठानो को प्रभावित करने की शक्ति प्राप्त हो गयी। सम्भवत यही से गणेश का अग्रपूजक स्वरूप विकसित हुआ होगा।[35] वह नये नामो गणाधिपति, गणपति, महागणपति, गणनायक आदि से अभिहित हुए।

विनायक पौराणिक काल मे अम्बिका [36] (पार्वती) के पुत्र के रूप मे उद्विकसित होते है और शिव परिवार मे जुड़ जाते है। क्रमश उनका ब्राह्मणीकरण होने लगता है। इस सदर्भ मे युवराज कृणन का मत है कि ब्रह्मा व रुद्र द्वारा गणो के देवता के रूप मे उनका चुनाव होता है और वे वैदिक देव समूह मे स्थान प्राप्त करते है।[37] विनायक की शाति हेतु वैदिक स्वस्ति और बलि मत्रोच्चार की व्यवस्था थी।

---

27 ऋग्वेद, 2 23 1

28 ऋग्वेद, 4 50 5

29 वही, 10 112 9

30 तैत्तरीय सहिता, 4 1 22

31 हाजरा, आर सी , वही, पृ० 268

32 कृष्णन युवराज, वही, पृ० 127

33 हाजरा, आर सी , वही, पृ० 267

34 कॉर्टराइट, पॉल वी , गणेश लार्ड ऑफ आब्स्टकल्स, लॉर्ड ऑफ बिगनिग, न्यूयार्क, 1985

35 हेराज एच , द प्राब्लम आफ गणपति, दिल्ली, 1972

36 याज्ञवल्क्य स्मृति, 1 271, 290 और 294

37 कृष्णन युवराज, वही, पृ० 127

ब्राह्मणीकरण के निर्णायक प्रमाण इस तथ्य से भी प्राप्त होते है कि मानवगृह सूत्र मे विनायको को मास और मदिरा, कच्ची मछली समर्पित की जाती थी, जबकि याज्ञवल्क्य स्मृति मे [38] विनायक गणेश इन सब के साथ, मोदक भी ग्रहण करते है।[39] ग्रहो के साथ विनायक की पूजा इस बात को प्रदर्शित करती है कि इनसे सभी कर्मो का फल प्राप्त होता है।[40] इस प्रकार विनायक अब सिद्धिदाता, भाग्य प्रदाता बन जाते है।

वायु पुराण [41](300-600 शताब्दी) मे उल्लेख है कि जिस घर मे शिव की पूजा होती है वह उपद्रवी विनायको से मुक्त रहता है। इसी पुराण मे [42] एक स्थल पर वर्णित है कि शिव द्वारा गणेश निकुम्भ या क्षेमक के रूप मे, वाराणसी के राजा दिवोदास को छल करने के लिये भेजे गये। उन्होने अन्य सभी को लाभ पहुँचाया किन्तु राजा दिवोदास को प्रेरित किया कि वह गणेश के पूजास्थल को नष्ट कर दे ताकि दिवोदास धार्मिक कर्म से च्युत हो जाय।[43] यह इस बात का निश्चयात्मक प्रमाण है कि गणेश या विनायक अपने विकास के प्रथम चरण मे एक दुष्टात्मा एव 'विघ्नकर्ता' के रूप मे रहे है। ब्रह्माण्ड पुराण [44] मे विनायक को 'लोक विनायक' की सज्ञा दी गयी है।

अमरकोश (छठी शताब्दी) मे गणेश को 'विघ्नराजा गणाधिप' कहा गया है।[45] यद्यपि भागवत पुराण [46] मे विनायक भगवद् के साथी देवता के रूप मे है, किन्तु उनकी दुष्ट प्रकृति उनके साथ राक्षस, पिशाच, भूत, प्रेत, क्षुमुण्ड ग्रहो, दक्षिणी, ज्ञातधारिणी मत्र को जोड देती है। बौधायन धर्मसूत्र [47] मे जल और भोजन के तर्पण द्वारा विघ्न विनायक गणपति को पुनर्जाग्रत और शात करने का विधान है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि आरभ मे गणेश एक अनिष्टकारी देवता के रूप मे परिकल्पित किये गये थे, जिससे सुरक्षा प्राप्त करना, मुक्त होना उनकी पूजा का प्रधान

---

38 याज्ञवल्क्य स्मृति, 1 287-289

39 रामसुब्रमण्यम् बी 'द गणपति, विनायक, गजानन वरशिप, एनालिसिस ऑफ द इन्टीग्रेटेड कल्ट', बुलेटिन ऑफ द इन्स्टीट्यूट ऑफ ट्रेडिशनल कल्चर्स, मद्रास, 1971, पृ० 138

40 याज्ञवल्क्य स्मृति, 293 2

41 वायु पुराण, 11 30 309

42 वही, 11 ,30

43 वही, 11 30 50

44 ब्रह्माण्ड पुराण, 2 3 7 611

45 अमरकोश, 1 1 38

46 भागवत पुराण XI 27 20-30

47 बौधायन धर्मसूत्र, 2 5 9 5

उद्देश्य था। शीघ्र ही वे समाज मे महत्वपूर्ण देव के रूप मे स्थापित हुये। प्रथम शताब्दी से इन्हे प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप भी प्राप्त होने लगा। यद्यपि यह विवाद से परे नही है। गणपति के प्रारम्भिक स्वरूप और उनकी उपासना प्रक्रिया पर विचार करते हुए यक्ष और नागो की उपासना से इसका उदय माना गया है।[48] गणेश के स्वरूप पर यदि ध्यान दिया जाय तो ठिगना कद, छोटे व मासल पैर, बडा पेट और गज के मुख की परिकल्पना सामने आती है। इनमे से पहली तीन बातो का निकटतम सम्बध यक्ष प्रतिमाओ से है। कुमारस्वामी ने कई वर्षो पूर्व तक असदिग्ध रूप से यह सिद्ध करने का प्रयास किया और इस विचार से डॉ0 बैनर्जी, बी0एस0 अग्रवाल जैसे विद्वान् सहमत है कि गणेश प्रतिमा का मूल आधार अमरावती स्तूप से मिले एक उष्णीष पर अकित गजमुखी यक्षो मे है।[49] छठी-सातवी शताब्दी से गणेश की प्रतिमाये बहुतायत से प्राप्त होने लगती है,[50] तथा अभिलेखो मे भी गणेश का उल्लेख इसी काल से प्रारम्भ हो जाता है। यह इस बात का सकेत है कि पॉचवी-छठी शताब्दी से गणेश एक स्वतत्र देव के रूप मे समाज मे स्थापित होने लगे।[51]

भारत की धर्म परम्परा मे गणेश विरोधाभासो के समन्वयक व्यक्तित्व के रूप मे वर्णित है। जैसे, वे विघ्नकर्ता व विघ्नहर्ता दोनो है। उनकी शारीरिक सरचना मे भी यह विरोधाभास परिलक्षित होता है। धड मानव का तथा मुख गज का। उन्हे दुष्ट आत्माओ, सप्तमातृकाओ, जो शारीरिक और मानसिक रोगो को जन्म देने वाली है, तथा मृत्युपरक जीव जैसे सर्प तथा नवग्रहो, जो मनुष्य के भाग्य पर ग्रहण लगाते है, के साथ वर्णित किया गया है। उनके गले मे माला तथा कमर मे सर्प लिपटा हुआ प्रदर्शित किया जाता है।[52]

गुप्तोत्तरकालीन पुराणो मे गणेश शिव-पार्वती के पुत्र बन जाते है। शिव गणो के प्रमुख के रूप मे भी वे परिकल्पित है। मानवगृह सूत्र और याज्ञवल्क्य स्मृति के विनायक की ब्राह्मणीकरण की प्रक्रिया पुराणो मे पूरी होती है।[53] गणेश के रूप मे विनायक विस्तृत किन्तु व्यवस्थित और नियमित परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरते है। उनका स्वरूप तो मूलत वही

---

48 बैनर्जी, जे एन , डेवलपमेन्ट ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी, पृ० 356-57

49 जोशी, नीलकण्ठ, पुरुषोत्तम जोशी, प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, पृ० 169

50 नागर, शातिलाल, कल्ट आफ विनायका, पृ० 35

51 वही, पृ० 110

52 कृष्णन, युवराज, वही, पृ० 95

53 थापन, अनीता रैना, अण्डरस्टैण्डिग गणपति, दिल्ली, 1977, पृ० 96

रहता है किन्तु कार्यो मे परिवर्तन होता है। परिवर्तन की दोहरी प्रक्रिया यह है कि विनायक अर्थात् ग्राम देवता के रूप मे वे विघ्नकर्ता है तथा गणेश के रूप मे पौराणिक देवता है।[54] ब्राह्मणीय देव समुदाय मे गणेश की स्वीकारोक्ति और उनका उत्थान स्पष्ट रूप से कला मे व्यक्त होता है।[55] पौराणिक देव के रूप मे उनकी शक्ति, अधिकार एव क्षेत्र विस्तृत हुए। फलत उनकी भुजाओ, आयुधो तथा मूर्तियो के अलकरण मे क्रमिक अभिवृद्धि दिखती है।[56] प्रारभिक चरण मे गणेश शिव मदिर मे विनीत स्थिति मे अभिव्यक्त हुये है। वे द्वार देवता है। अग्रमण्डप, मुखमण्डप और अर्द्धमण्डप की दीवारो पर वह पार्वती के साथ अकित है।[57] मदिर की दीवारो के गवाक्षो मे शिव के गण के रूप मे स्थापित दिखाई देते है। विकास के दूसरे चरण मे शिवमदिरो मे वे परिवार देवता या पार्श्व देवता के रूप मे अकित हुये।[58] कालातर मे स्वतत्र रूप से स्वय गणेश के मदिरो का निर्माण हुआ, जिसमे वे मुख्य गर्भगृह मे स्थापित हुये।

8वी-9वी शताब्दी के मध्य गणेश के अनुयायियो ने अपना स्वतत्र सम्प्रदाय स्थापित किया,[59] तथा गणेश को समाज मे मुख्य देव का स्थान और लोकप्रियता प्रदान करने हेतु स्वाभाविक प्रयास किया। इस प्रक्रिया मे उन्होने सर्वप्रथम गणेश से सदर्भित स्वतत्र साहित्य की रचना की। मुद्गलपुराण(900-1300 ई0), गणेश पुराण(1100-1300 ई०)[60] नामक दो पुराण है।गणेश पूर्व तापिनी उपनिषद्, गणपति अथर्वशिर्षोपनिषद, गणेश स्त्रोत तापिनी उपनिषद् नामक तीन उपनिषदो की रचना की गयी। इनके माध्यम से गणेश को वैदिक परम्परा से जोड़ने का प्रयास किया गया। प्रमुख पौराणिक देवो ब्रह्मा, विष्णु और शिव से भी उच्च गणेश की सत्ता को स्थापित किया गया।[61] वे सृष्टि के रचनाकार, सरक्षक व सहारक के रूप मे प्रतिबिम्बित हुये।[62] उनका निर्विकल्प व निराकार स्वरूप भी व्याख्यापित किया गया।[63] उनका तादात्म्य शिव, विष्णु, रुद्र,अग्नि, प्रजापति और सोम के साथ स्थापित कर उन्हे वेदो द्वारा

---

54 यादव, निर्मला, गणेश इन इडियन आर्ट एण्ड लिटरेचर, पृ० 210

55 नागर, शातिलाल, वही, पृ० 135

56 निर्मला, यादव, वही, पृ० 35

57 कृष्णन, युवराज, वही, पृ० 137

58 नागर, शातिलाल, वही, पृ० 32

59 हाजरा, आर सी , वही, पृ० 92

60 वही, पृ० 97

61 थापन, अनिता रैना, वही, पृ० 32

62 गणेश पुराण, 2 140 6-18, देवी पुराण, अध्याय 112-114, मे विनायक को ब्रह्मा, विष्णु व शिव से उच्च स्थापित किया गया है।

63 गणपत्यथर्वशीर्ष-4, गणेश पुराण, 2 15 18

स्वीकारोक्ति दिलाने का भी प्रयास हुआ। गणेश पुराण मे गणेश को उपनिषदो के ब्रह्म स्वरूप की नेति-नेति की अभिव्यक्ति द्वारा सम्बद्ध किया गया है।[64]

गाणपत्य सम्प्रदाय से सबधित साहित्य मे वेद मत्रो को गणेश से जोडते हुये उन्हे इनके लिये प्रयोग किया गया, जिससे गणेश का स्तर देवसमूह मे विशिष्ट हुआ। ऋग्वैदिक देव, कविनाकवि, ज्येष्ठराज, ब्रह्मणस्पति, माघवन, द्वैमातुर तथा यजुर्वेद के देवता प्रियपतिन, निधिपति, वक्रतुण्ड आदि उपाधियॉ गाणपत्य उपनिषदो मे गणेश के लिये प्रयुक्त है।[65] गाणपत्य साहित्य ने गणेश के स्वरूप के विकास मे भी वैदिक देवो के स्वरूप से ही तत्व ग्रहण किया। उदाहरणार्थ, अकुश, वज्र व कमल इन्द्र से, व्याघ्र चर्म और अर्ध चद्रमा शिव से, पाश वरुण से, कुठार ब्रह्मणस्पति से ग्रहण किये गये। इस तरह उनका स्वरूप वैदिक देवो के सदृश विकसित हुआ।[66]

पारम्परिक पुराणो मे देवसमूहो के बीच गणपति को उच्चतम सम्मान प्राप्त हुआ। ब्रह्माण्ड पुराण गणेश को सर्वोच्च देवता स्वीकार करता है।[67] इतना ही नही, देवताओ मे अधिदेव के रूप मे गणेश को प्रस्तुत करने का प्रयास भी उक्त पुराण मे है। शिवपुराण [68] मे विनायक की श्रेष्ठता स्थापित की गयी है। शिव को भी असुरो को जीतने के लिये गणेश का आशीर्वाद अनिवार्य बताया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण [69] मे भी गणेश के महत्व को स्थापित किया गया है। गणेश पुराण [70] मे गणेश को ब्राह्मणीय देवसमूह मे उच्चतम स्थान दिया गया है। इस पुराण ने गाणपत्य सम्प्रदाय को प्रोन्नत तो किया ही, गणेश को ब्राह्मणीय देवमण्डल मे उच्च स्तर पर स्थापित कर उन्हे असाम्प्रदायिक स्वरूप देने का प्रयास भी किया है।[71] मुद्गल पुराण मे गणेश के आठ अवतारो की परिकल्पना की गयी है जो इस प्रकार है–वक्रतुण्ड, एकदत, महोदर, गजानन, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज और धूम्रवर्ण।[72] गणेश पुराण मे इनके चार अवतारो का वर्णन मिलता है– महोत्कट विनायक, मयूरेश्वर, गजानन और धूम्रकेतु।[73] गणेश

---

64 कृष्णन, युवराज, वही, पृ० 76,

65 कृष्णन, युवराज, वही, पृ० 76-77

66 वही, पृ०78

67 ब्रह्माण्ड पुराण, 2 3 42 30

68 शिव पुराण, 2 5 10-6

69. ब्रह्मवैवर्त पुराण, 2 75 59-60

70 गणेश पुराण, 1 17, 14 45

71 भण्डारकर, जी आर , वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड अदर सेक्ट्स, पृ० 108

72 थापन, अनिता रैना, वही, पृ० 203

73 गणेश पुराण, 2 1 3-6

के अवतारो की विशिष्टताये वैष्णव सम्प्रदाय मे कल्पित विष्णु की विशिष्टताओ से प्रभावित लगती है। लिग पुराण मे शिव स्वत गणेश से कहते है कि हमने अग्रपूजा के रूप मे तुम्हारी पूजा के लिये सस्तुति की है।[74] तुम्हारा कार्य लोक कल्याण की भावना को विकसित करना होगा। वाराह पुराण भी गणेश के महत्व को स्वीकार करता है।[75] तात्रिक ग्रथ शारदातिलक, रुद्र-यामल, भेरू तत्र, मत्रमहोदधि आदि भी गणेश को ओकार, ब्राह्मण, हिरण्यगर्भ, यन्त्रो के बीज मत्रो से मण्डल और कुण्डलिनी शक्ति से समीकृत किया है।[76] स्कन्द पुराण मे गजानन को महादेवाधिदेव [77] कहा गया है तथा उन्हे सभी देवो द्वारा पूजे जाने योग्य भी वर्णित है।[78] कथासरित्सागर मे भी गणेश के महत्व को स्वीकार किया गया है।[79] स्पष्ट है कि गाणपत्य सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार व विकास पूर्वमध्यकाल तक पूर्णरूपेण हो चुका था।

उपर्युक्त विश्लेषण से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गणपति का उल्लेख एव उनकी महत्ता गाणपत्य साहित्य मे ही नही अपितु अन्य समकालीन साहित्य मे भी बतायी गयी है। इसी प्रकार गणेश पुराण मे वैदिक गाणपत्य से सम्बधित विचारो का समावेश किया गया है। अनेक धार्मिक सम्प्रदाय जैसे, वैषानस, भागवत, सात्वक, पाचरात्र, शैव, पाशुपत, कालामुख, भैरव, शाक्त, सौर, जैन, अर्हत् आदि का भी उल्लेख मिलता है।[80] परन्तु इस पुराण का गणेश की महत्ता के प्रति अत्यधिक सचेष्ट होना, इसकी धार्मिक साम्प्रदायिकता की प्रवृत्ति का परिचायक है। वैष्णव, सौर, शाक्त और शैव सम्प्रदायो के उपासको द्वारा गणेश को सर्वोपरि स्वीकार करना तथा विष्णु, शिव, पार्वती व अन्य देवो को गणेश के आश्रित के रूप मे प्रदर्शित करना, इस ओर सकेत करता है कि सभवत यही चारो सम्प्रदाय गाणपत्य सम्प्रदाय के प्रतिद्वदी रहे होगे।[81]

गाणपत्य संप्रदाय और गणेश पुराण

जिस काल मे गाणपत्य सम्प्रदाय का विकास हुआ, उस काल की सामाजिक एव धार्मिक पृष्ठभूमि जानना भी अनिवार्य है। पूर्वमध्यकालीन समाज मे धर्म की नयी-नयी

---

74 लिग पुराण, 105 22-23

75 वाराह पुराण, 23 30

76 राव, एस के रामचद्र, गणेश कोश, बैगलोर, 1992

77 स्कन्द पुराण, 3 2 12 30

78 वही, 6 214 10

79 कथा सरित्सागर ऑफ सोमदेव, दिल्ली, 1968, खण्ड-2, पृ० 100-101

80 गणेश पुराण, 1 46 32-33

81 हाजरा, आर सी , द गणेश पुराण, पृ० 95

शाखाओ व नये सम्प्रदायो का जन्म, समाज की आवश्यकतानुसार पुराने देवो के स्थान पर नये देवो की प्रतिस्थापना, उनका बढता महत्व, उस समय की परिवर्तित सामाजिक आवश्यकता को दर्शाता है।[82] इन्ही साम्प्रदायिक एव धार्मिक स्थितियो के दौर मे गाणपत्य सम्प्रदाय का विकास हुआ जो क्रमश पश्चिमी उत्तरी भारत तथा दक्षिण के क्षेत्र मे फैलता गया। गणेश पुराण मे गाणपत्य सम्प्रदाय और इससे सन्दर्भित धर्म का विस्तृत विवेचन-स्थापन हुआ है।[83] इस पुराण का मुख्य विषय गणेश के महत्व का विवेचन करना तथा तत्कालीन समाज मे उन्हे सर्वोपरि देव के रूप मे स्थापित करना था। गणेश के स्वरूप की अवधारणा के साथ-साथ उनकी आध्यात्मिक एव नैतिक मान्यता का भी विकास हो रहा था।[84] भारतीय धर्म की समन्वयशील प्रवृत्ति ने गणेश की उपासना के सन्दर्भ मे समाज मे उपस्थित विभिन्न परम्पराओ को समन्वित करने का प्रयास किया।[85] गाणपत्य सम्प्रदाय के अनुयायियो ने गणेश को स्थापित करने के लिए प्राचीन एव नवीन तत्वो को एक स्थान पर सुव्यवस्थित किया, जिसका अभिव्यक्तिकरण गणेश पुराण के रूप मे हुआ। कह सकते है कि धर्म के क्षेत्र मे स्थापित विभिन्न परम्पराओ के प्रभाववश समाज मे एक नयी गाणपत्य परम्परा का प्रादुर्भाव हुआ।

गाणपत्यो के सदर्भ मे जानकारी का एक महत्वपूर्ण स्रोत आनदगिरि की रचना 'शकरविजय' है। इसमे विभिन्न धार्मिक मतावलम्बियो के प्रमुखो के साथ शैव दार्शनिक शकराचार्य(8वी-9वी शताब्दी) का वाद-विवाद वर्णित है, जिनमे गाणपत्यो का भी उल्लेख है। इस ग्रन्थ मे गाणपत्य सम्प्रदाय की छह शाखाओ का भी उल्लेख हुआ है।वे है– उच्छिष्ट गणपति, हेरम्ब गणपति, हरिद्रा महागणपति, समतन, नवनीत और स्वर्ण गणपति। इनमे उच्छिष्ट और हेरम्ब गणपति आपस मे सम्बधित है। प्रत्येक शाखा के अनुयायी गणपति की पूजा भिन्न-भिन्न नामो, आकारो और मत्रो से करते है, तथा अपनी शाखा का चिन्ह अपनी बॉह और माथे पर अकित करवा लेते है।[86]

आज भी यह शोध का विषय है कि क्यो गणपति ही पूजा के केन्द्र बने, जबकि अन्य द्वितियक देवता जैसे कुबेर, स्कद, नाग आदि मुख्य स्थिति को प्राप्त नही कर पाये। 'शकरविजय' को 10वी-11वी शताब्दी की रचना माना गया है। इसी काल मे गणेश अधिकाश क्षेत्रो मे

---

82 नदी, रमेन्द्रनाथ, वही, पृ० 46

83 भण्डारकर, आर जी , वही, पृ० 218

84 हेराज, एच , द प्राब्लम ऑफ गणपति, पृ० 32

85 थापन, अनिता रैना, वही, पृ० 10

86 वही, पृ० 176

महत्वपूर्ण होने लगे थे। शिलालेखीय साक्ष्य तथा आधुनिक राजस्थान [87] और गुजरात [88] से उपलब्ध उनके पूजा स्थलो व मदिरो के साक्ष्य भी गणेश के इसी काल मे लोकप्रिय होने का प्रमाण प्रस्तुत करते है। यद्यपि इसी काल के कुछ शैवमदिरो मे इन्हे गौण देवता का स्थान दिया गया है। पचायतन पूजा का विकास शकराचार्य द्वारा किया गया। इसे 10वी शताब्दी मे पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हो गयी।इस पूजा पद्धति मे गणेश देव के रूप मे स्थापित हुये। उन्हे इस सन्दर्भ मे महत्वपूर्ण स्थान भी मिला। 'पचायतन प्रकार' के शैव मदिरो [89] मे गणेश को महत्वपूर्ण किन्तु गौण स्थान प्राप्त हुआ है। चालुक्य काल मे रचित 'सरस्वती पुराण' सहर्षिलिग झील के पास अनेक देवताओ के तीर्थो और पूजा स्थलो के होने की सूचना देता है। इनमे गणेश से सम्बधित स्थल भी उल्लिखित है।[90]

उत्तर प्रदेश मे सरयू नदी के किनारे कुमाऊँ क्षेत्र मे बैजनाथ के निकट अनेक मदिरो के अवशेष मिले है। इनमे गणेश की प्रतिमाये भी है। ये अवशेष वहाॅ के स्थानीय कत्युरि राजवश से सम्बधित है, जिनका काल 9वी-10वी शताब्दी माना गया है।[91] पुराणो के गणपति से जुड़े तीर्थो के पाये जाने, जैसे गौतमी नदी के किनारे 'अविघ्नतीर्थ' [92] तथा मथुरा के निकट यमुना के किनारे 'विघ्नराज तीर्थ' [93] का उल्लेख प्राप्त होता है।

मध्यभारत मे एक पाषाण अभिलेख(1181-1182 ई०) तुण्ड और हेरम्ब गणपति के आधुनिक मध्यप्रदेश मे अवस्थित मदिरो की सूचना देता है।[94] 'तुण्ड' सम्भवत उस गाॅव का नाम है जहाॅ मदिर बना था। क्योकि तुण्ड गणपति का उल्लेख किसी भी अन्य ग्रन्थ मे नही प्राप्त होता।[95]

महाराष्ट्र क्षेत्र मे गणपति को सिलाहार वश(9वी-10वी शताब्दी) के प्राय सभी अभिलेखो मे क्रमिक रूप से उल्लिखित किया गया है। यद्यपि यह राजवश शैव सम्प्रदाय को मानने वाला था। किन्तु इसमे सर्वप्रथम गणेश का आवाहन बाधाओ को दूर करने के लिए

---

87 ई०आर०, खण्ड-3, स० 36, पृ० 263-67

88 वही, खण्ड-26, स० 27 डी, पृ० 212

89 शर्मा, बी एन 'अभिलेख इन इण्डियन आर्ट', जे ओ बी, खण्ड-21, 1971-2, पृ० 10

90 सोमपुरा, कातिलाल, एफ , द स्ट्रक्चरल टेम्पल ऑफ गुजरात, पृ० 90

91 लिप्पे, अश्विन डे, इण्डियन मेडिवल स्कल्पचर, पृ० 15

92 ब्रह्म पुराण, 4 44 1-2

93 वाराह पुराण, 2 154 29-30

94 थापन, अनिता रैना, वही, पृ० 177

95 वही, पृ० 177

किया गया है।[96] इसी प्रकार मोधा परिवार द्वारा दान दिये जाने पर गणेश का आवाहन किया गया है।[97] 'मोधा' स्थानीय ब्राह्मण शासकीय परिवार थे, जो सिलाहार वश के अधीन कार्यरत थे। सिलाहार और मोधा के दानपत्रो मे कार्तिकेय का उल्लेख नही मिलता। इससे सिद्ध होता है कि शिव के दोनो पुत्रो मे गणपति ज्यादा महत्वपूर्ण माने जाते रहे होगे।[98] यद्यपि इनके अभिलेखो मे गणेश के स्वतत्र मदिरो का कोई उल्लेख नही है। सिलाहार वश का शासन आधुनिक कर्नाटक के कोकण क्षेत्र मे भी था, जहॉ पुराने गणेश मदिरो के अवशेष प्राप्त हुये है। यह असम्भावित है कि गणेश से जुडी लोकप्रिय परम्परा एक शासक के एक क्षेत्र मे प्रचलित हो और दूसरे क्षेत्र इस परम्परा से अनजान रहे हो।

कर्नाटक के गोकर्ण मे स्थित महागणपति का मदिर प्रसिद्ध प्राचीन गणपति मदिरो मे है। उस मदिर को परम्परानुसार आरम्भिक कदम्ब वश से सम्बधित किया गया है, जिसका शासन पॉचवी से छठी शताब्दी मे कर्नाटक के अधिकाश भागो तथा महाराष्ट्र और गोवा तक मे स्थापित हुआ। गोकर्ण शैव तीर्थ और महाबलेश्वर के पास एक महत्वपूर्ण मदिर है। महागणपति मदिर के निकट एक मूर्ति प्राप्त हुई है । इसके दो हाथ है। खडी मुद्रा मे यह मूर्ति कदम्ब काल के मूर्तिकारो की विशिष्टताओ को द्योतित करती है। यह उपनीपत्तन मे पाये गये गणपति मदिरो की मूर्तियो के समान है।[99] यह स्पष्ट नही हो पाया है कि यह मूर्ति शिवमदिर की है या किसी अन्य मदिर की। गणपति छठी शताब्दी के बाद महत्वपूर्ण हुये होगे जबकि ये मदिर और गोकर्ण का मदिर आरभिक छठी शताब्दी के है।[100] कर्नाटक से प्राप्त ये मूर्तियॉ साधारण व अलकृत है। आभूषण और मुकुट का अकन नही है। यह बाद मे विकसित मूर्तियो से भिन्न है।

10वी शताब्दी से गणेश की द्विभुजी मूर्तियॉ दुर्लभ हो गयी। सामान्यत चतुर्भुजी मूर्तियाँ ही पायी जाती है।[101] अनेक मूर्तियॉ गोकर्ण के गणपति मदिरो मे स्नानद्रोणी पर प्राप्त हुई हैं। यह विशेषता थाइलैण्ड और वियतनाम की सातवी-आठवी शताब्दी की गणपति मूर्तियो मे भी पायी जाती है।[102]

---

96 ई० आई०, खण्ड-3, स० 37, पृ० 267-76

97 वही, खण्ड-32, स0-5, पृ० 71-76

98 थापन, अनिता रैना, वही, पृ० 177

99 गजेटियर ऑफ इण्डिया, कर्नाटक स्टेट, उत्तर कन्नड़ा जिला, पृ० 170, द्रष्टव्य, थापन अनिता रैना, पृ०179

100 वही, पृ० 177

101 जोशी, नीलकण्ठ, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, पटना, 1977, पृ० 168

102 यादव, निर्मला, गणपति इन इण्डियन आर्ट एण्ड लिटरेचर, पृ० 201

आध्रप्रदेश के कुर्नूल जिले मे 8वी शताब्दी के अभिलेख मे दण्डीश्वर, नन्दीश्वर और गणपति का स्वरूप प्राप्त होता है।[103] यह स्पष्ट नही है कि ये एक ही मदिर मे थे या गणपति अलग मदिर मे स्थापित थे। आध्रप्रदेश के गुटूर जिले से दसवी शताब्दी का एक अभिलेख मिला है जिसमे काकुमरानु ग्राम मे विनायकोत्सव मनाने का उल्लेख है।[104] स्पष्ट है कि तमिल क्षेत्रो मे शिव पथ मे गणपति एक आवश्यक अग बन गये थे। आगमो ने इन्हे इस काल के पूजा विधानो और परम्पराओ से भी जोड दिया।[105]

इस प्रकार दसवी शताब्दी तक देश के विभिन्न भागो मे गणेश के पूजे जाने का प्रमाण प्राप्त होने लगता है। वह तीन राज परिवारो, कदम्ब, सिलाहार और चोल मे लोकप्रिय थे।[106] ये तीनो राजवश ब्राह्मण धर्म से सम्बद्ध थे। स्पष्टत कहा जा सकता है कि दसवी शताब्दी तक गणेश आधुनिक कर्नाटक, महाराष्ट्र और तमिलनाडु के क्षेत्र मे पर्याप्त लोकप्रिय हो गये थे। इन्हे कृषि उत्सवो से सन्दर्भित परम्पराओ से जोडकर जनसामान्य के निकट लाने का प्रयास भी किया गया। गणपति मदिर बने तथा उनमे पूजा के लिये पुजारियो का एक वर्ग विकसित हुआ। विशेष मदिरो के साथ धीरे-धीरे अनेक पौराणिक कथाये जोड दी गयी। इस प्रकार गाणपत्य सम्प्रदाय अपने मूल रूप मे आठवी शताब्दी मे दृष्टिगत होने लगा था।[107]

13वी -14वी शताब्दी का 'सम्मोह तत्र' [108] नामक ग्रथ गणपति को तत्र के उत्तरी और दक्षिणी दोनो परम्पराओ से जोड़ता है।[109] इस ग्रथ मे गणपति की पॉच शाखाओ का उल्लेख है। गाणपत्य साहित्य की सूची भी इसमे है। यहॉ गणपति को प्रमुख देव के रूप मे, सर्वोच्च देव के रूप मे वर्णित किया गया है। उनसे सदर्भित छोटे-छोटे कार्यो का भी उल्लेख इसमे है।[110] गणपति की पॉच शाखाये वास्तव मे पॉच सम्प्रदायो तथा पॉच स्वरूपो की अभिव्यक्ति करती है। यह भी उल्लेखनीय है कि 14वी शताब्दी तक गणेश के अनेक स्वरूप समाज मे

---

103 ई०आर०, खण्ड-33, स० -13, पृ० 79-81

104 वही, खण्ड-3, पृ० 16-27

105 नागर, शातिलाल, द कल्ट ऑफ विनायक, पृ० 35

106 थापन, अनिता रैना, वही, पृ० 179

107 वही, पृ० 179

108 भट्टाचार्य, एन०एन०, हिस्ट्री ऑफ शाक्त रिलिजन, पृ० 123

109. मित्रा, हरिदास, गणपति, पृ० 97

110 बागची, पी०जी०, 'द इवॉल्यूशन आफ तत्राज', इन द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इण्डिया, पृ० 211 66

प्रचलित हो चुके थे। आगमो मे गणेश के बारह [111] और सोलह स्वरूपो [112] का उल्लेख है। इनसे स्पष्ट है कि गणेश चौदहवी शताब्दी तक समाज मे पूर्णतया प्रतिस्थापित हो चुके थे।

धुर्रे महोदय ने महाराष्ट्र के 13वी शताब्दी के विचारक ज्ञानेश्वर का उल्लेख करते हुये उनकी प्रतिस्थापना की ओर ध्यान आकर्षित किया है। ज्ञानेश्वर ने ओम् को गणेश के शारीरिक स्वरूप से समीकृत करते हुए व्याख्या की है।[113] 13वी-14वी शताब्दी मे ही महाराष्ट्र के निकट पुणे मे गणेश के प्रसिद्ध चिचवाड मदिर का निर्माण मोरे गोसावी ने किया।[114]

15वी शताब्दी के सरस्वती गगाधर [115] ने अपने ग्रथ 'गुरुचरित' तथा एकनाथ [116] ने अपने ग्रन्थ 'रुक्मणी स्वयबर' मे विभिन्न कथाओ के माध्यम से गणेश को देवाधिदेव के रूप मे प्रस्तुत किया है। 17वी शताब्दी के मराठी सत रामदेव [117] ने गणेश को मगलमूर्ति तथा सभी सिद्धियो के प्रदाता देव के रूप मे स्थापित किया। गणेश को पेशवाओ ने कुलदेव के रूप मे स्वीकार कर उन्हे नवजागरण तथा सामाजिक व सास्कृतिक चेतना के प्रतीक रूप मे रखा।[118] इनके माध्यम से राजनीतिक एकता लाने का प्रयास बालगगाधर तिलक ने भी किया।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि तीसरी से आठवी शताब्दी तक के पौराणिक साक्ष्य गणेश को महत्वपूर्ण देवता बताते है। लेकिन उनके स्वतत्र सम्प्रदाय की जानकारी इनमे नही है। नवी से तेरहवी शताब्दी तक का कालखण्ड अवश्य महत्वपूर्ण है। पूर्ववर्ती चरण मे गणेश न केवल लोकप्रिय हो चुके थे अपितु शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर के साथ-साथ बौद्ध एव जैन धर्मो मे भी महत्वपूर्ण देवता के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुके थे। यह स्वाभाविक लगता है कि उनका अगला विकास एक ऐसे देवता के रूप मे हुआ जिसको केन्द्र मे रखकर एक स्वतत्र सम्प्रदाय विकसित हुआ। इसे विकसित करने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रथ 'गणेश पुराण' है। 'मुद्गल पुराण' भी इसी कोटि का ग्रथ माना जा सकता है। इस कालखण्ड मे निर्विवाद रूप से गाणपत्य सम्प्रदाय एक स्वतत्र सम्प्रदाय के रूप मे प्रतिष्ठित हो गया था।[119]

---

111 शकर विजय, पृ० 87

112 अजीतागम, खण्ड-3, क्रियापद, 55 1-19

113 धुर्रे, जी०एस०, गॉड्स एण्ड मेन, बाम्बे, 1962, पृ० 107

114 कृष्णन, युवराज, वही, पृ० 83

115 वही, पृ० 111

116 वही, पृ० 100-101

117 वही, पृ० 102

118 कॉर्टराइट, पॉल०बी०, वही, पृ० 202

119 थापन, अनिता रैना, वही, पृ० 10

गणेश का स्वतंत्र स्वरूप : अभिलेखीय साक्ष्य

अभिलेख, किसी देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक विकासक्रम को जानने के अत्यत महत्वपूर्ण साधन होते है। इतिहास, कला, वास्तु और पुरातत्व के सन्दर्भ मे प्रामाणिक साक्ष्य के रूप मे इनका प्रयोग होता है। स्वतत्र देवता के रूप मे गणेश की उपासना के अभिलेखीय साक्ष्य छठी शताब्दी से प्राप्त होने लगते है।

छठी शताब्दी की गर्दीज नामक स्थान से उपलब्ध एक प्रतिमा, जो वर्तमान मे काबुल सग्रहालय मे है, उल्लेखनीय है। इसके नीचे अभिलेख [120] उत्कीर्ण है। इसमे मासल शरीर वाले महाविनायक 'अलिढ्' मुद्रा मे खड़े है। शुण्ड बायी ओर मुड़ी है। यद्यपि यह टूटी हुई अवस्था मे है। शीर्ष पर मुकुट और गले मे आभूषण सुशोभित है। कान पत्तो के गुच्छो के सदृश है। नागयज्ञोपवीत चतुर्भुजी मूर्ति द्वारा धारित है। चीते की खाल पहने है। इसमे गणेश लम्बोदर तथा उर्ध्वमेधर स्वरूप मे है।इस प्रतिमा के नीचे 'महाविनायक' लेख अकित है।

सातवी शताब्दी के युगकर वर्मन के ब्रह्मौर [121] ताम्रपत्र के अभिलेख का प्रारभ 'ओ गणपतये नम ' से किया गया है। इन उपलब्ध साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि छठी-सातवी शताब्दी मे गणेश स्वतत्र रूप से उपास्य देवता बन गये थे। सातवी शताब्दी के ही कुछ अन्य अभिलेख भी मिले है जो गणेश की स्वतत्र देव के रूप मे स्थिति प्रगट करते है, जैसे– ब्रह्मौर से ही सातवी शताब्दी की एक कास्य प्रतिमा [122] मिली है जिसकी स्थापना मेरुवर्मन ने करायी थी। इस प्रतिमा पर एक लेख अकित है, जिसका आरभ गणपति नमन से होता है–

'ओ नम गणपतये। भूषण स्वगोत्रादित्यवशसम्भूत श्री आदित्य वर्मनदेव प्रपौत्र (1 2) श्री वलवर्म्मदेवानु पौत्र श्री दिवाकर वर्मनदेव-सूनुना।।(1 3) महाराजाधिराज श्री मेरुवर्म्मना कारायिते देव धर्म्मो य (1 4) कर्म्मीण गुजेण।'

इसी काल के भास्करवर्मन [123] के निधानपुर अभिलेख मे गणपति की उपासना सम्बधी श्लोक मिलता है–

गन्धर्वती तस्माद् गणपतिमिव दानवर्षणम् जस्राम ।
गणपति गणित गुण गणमसूत कलिहानये तनयम् ।।

---

120 ई०आई०,XXXV पृ० 44

121 बोजेल जे०एफ०, एन्टीक्वीटीज ऑफ चम्बा स्टेट,। ए०एस०आई०, मेम्योएर न० 78, कलकत्ता-1911, पृ०162

122 वही, पृ० 42

123 ई०आई०,XII , पृ० 73

724 कलचुरि सवत् के गुर्गी अभिलेख [124] मे मदिर के मुख्य द्वारा पर गणेश और सरस्वती प्रतिमा की प्रतिष्ठपना का विवरण अकित है। यह उल्लेख इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि सरस्वती और गणेश विद्या और बुद्धि के अधिष्ठात्र देवता के रूप मे वर्णित किये गये है।

8वी शताब्दी के भैरमकोडा [125] अभिलेख मे विक्रमादित्य के शासन काल मे एक अधिकारी द्वारा गणपति व नन्दिकेश्वर की प्रतिमा प्रतिष्ठिापित करने का विवरण दिया गया है। उडीसा के पास उदयगिरि [126] तथा खण्डगिरि गुफा समूह मे एक गुफा का नाम 'गणेश गुफा' है, जिसमे 9वी शताब्दी का चार पक्तियो का एक अभिलेख उत्कीर्ण है। इसमे गणेश का उल्लेख 'गजस्य' के रूप मे है, जिनके समक्ष शातिकर नामक व्यक्ति ने दान दिया था। इसी प्रकार 822 ई0 के खण्डेल [127] अभिलेख मे भवानी पार्वती के उल्लेख के साथ-साथ उनके दोनो पुत्रो, स्कद और गणेश, का भी नाम है।

960 ई0 के मठ्यदेव के राजौर अभिलेख [128] मे लच्छुकेश्वर मदिर के समीप विनायक की प्रतिमा स्थापित करने का उल्लेख है। 998 ई० के भडारादानपत्र [129] मे विनायक की अत्यत मनोरम स्तुति की गयी है।

11वी शताब्दी के सोमेश्वर द्वितीय[130] के कदम्ब अभिलेख तथा चिचिनी से प्राप्त चामुण्डराज [131] के ताम्र अभिलेख मे गौरी और गणेश की स्तुतियॉ है। इसी प्रकार 1049 ई0 के मुमुनीराज के ताम्रदानपत्र[132] मे गणेश को सभी विघ्नो को दूर करने वाला बताया गया है।

12वी शताब्दी के माउन्ट आबू के नेमिनाथ मदिर मे उत्कीर्ण एक अभिलेख [133] मे यह उल्लेख मिलता है कि "गणेश यद्यपि शात स्वभाव के है, किन्तु क्रोध मे रक्तिम हो जाते है। वे ध्यान मे ऑखे बद किये रहते है परन्तु सब कुछ देखते रहते है।" कलचुरि सवत् 926 के

---

124 ई०आई०, XXII , पृ० 133

125 वही, XXIII पृ० 8

126 वही, XIII, पृ० 167

127 वही,XXIV , पृ० 161

128 वही,III , पृ० 264

129 वही,III , पृ० 268

130 वही,XIV , पृ० 72

131 वही,XXXII , पृ० 63

132 वही,XXV , पृ० 53
लभते सर्व कार्येषु पूजया गणनायक ।
विघ्न विघ्नस्रव पापाद् पापाद्गणनायक ।।

133 वही,VIII , पृ० 200

रेवा ताम्रपत्र [134] मे गणेश चतुर्थी के अवसर पर जयसिह नामक शासक द्वारा दान पत्र देने का विवरण प्राप्त होता है। 12वी-13वी शताब्दी (1126-1204 ई०) के मध्य के जयचद के बैजनाथ प्रस्तर अभिलेख [135] मे 'ॐ नमो गणपत्यो ' लिखित है, जिसके आधार पर दिनेश चद्र सरकार ने यह सभावना व्यक्त की है कि इसमे गणेश के साथ-साथ उनकी शक्ति का भी उल्लेख है।

गणेश की उपासना 12वी शताब्दी के बाद तक प्रतिष्ठित रही। जिसके प्रमाण 13वी शताब्दी के मोटुपल्ली पाषाण अभिलेख [136] मलकापुरम् पाषाण अभिलेख [137] (1244-45 ई०) दोनेपुण्डी दानपत्र [138] (1259 ई०), गणेशवर्मन अभिलेख [139] (1231 ई०), गुण्टूर जिले से प्राप्त एनामडाला अभिलेख [140] (1250 ई०) इत्यादि सदर्भित किये जा सकते है। इस प्रकार के अभिलेखीय साक्ष्यो से भी प्राय सम्पूर्ण भारत मे गणेश की उपासना की व्यापकता पर प्रकाश पडता है।

किसी भी धर्म का आन्तरिक विकास सामजस्य एव समन्वय की उस प्रक्रिया को रेखाकित करता है जिसके द्वारा देश एव काल की परिवर्तनशील सामाजिक प्रासगिताओ के साथ धर्म स्वय को समायोजित करता है। प्राचीन भारतीय धार्मिक परम्परा मे अवतारवाद द्वारा मुख्य देवता के साथ गौण देवताओ तथा प्रतीको की पूजा को भी जोडा गया था। इस मौलिक अभियोजन मे पुरातन प्रागैतिहासिक एव वैदिक तत्वो का नैरतर्य तथा चिरतनता तो दिखाई देती है, साथ ही सामाजिक, धार्मिक समरसता एव मुख्य देवता से जुडे सम्प्रदाय के विस्तार का मार्ग भी सहज ही प्रशस्त होता है।

समाज निरतर विकसित होता रहा है। विकास के साथ-साथ उसकी धार्मिक मान्यताएँ तथा दृष्टिकोण भी विकसित होते रहे है और उन्ही के साथ-साथ देवताओ के स्वरूप भी परिवर्तित हुए है। वास्तव मे, हिन्दुओ के सजीव एव क्रियाशील विश्वास सदैव गतिशील, परिवर्तनशील तथा समायोजनशील रहे है। उनमे मानव स्वभाव तथा समय की आवश्यकताओ के अनुसार परिवर्तन होता रहा है। यह तथ्य ब्राह्मणवादी ग्रन्थो मे परिलक्षित होने वाली

---

134 सी०आई०,आई० भाग-IV , 1955, पृ० 541

135 सरकार, डी०सी०, सेलेक्ट इस्क्रिप्शन्स, भाग-II, दिल्ली, 1983, पृ० 414,

136 वही, पृ० 550-51

137 वही, पृ० 551

138 ई०आई०,IV , पृ० 357

139 वही,III , पृ० 82

140 वही,III , पृ० 95

परम्परा के सन्दर्भ मे भी देखा जा सकता है।[141] इस तथ्य को इस प्रकार भी व्याख्यायित कर सकते है कि मनुष्य की अधिकाश आवश्यकताएँ भौतिकवादी रहती है। अधिकाश धर्म ग्रन्थ धार्मिक रीति-रिवाजो, उपवासो, तीर्थ-यात्राओ तथा उन प्रार्थनाओ के सन्दर्भ का वर्णन करते है जो भौतिक लाभ प्रदान करती है। भौतिकवादी आवश्यकताएँ भी परिवर्तित होती रहती है। अतएव देवी-देवताओ का महत्व भी देश तथा काल के अनुसार घटता-बढता रहता है। भौतिकवादी आवश्यकताओ का प्रभाव धार्मिक जीवन पर भी पडता है। इसलिये धार्मिक विकास तथा उसके परिवर्तन को सामाजिक परिप्रेक्ष्य मे व्याख्यायित करना आवश्यक है [142]

ईसा की प्रारभिक शताब्दी मे विष्णु महत्वपूर्ण देव के रूप मे उभरे। उन्हे प्रतिस्थापित करने के लिए उनसे सम्बद्ध साहित्य की रचना भी हुई। इन रचनाओ मे बदलती हुई सामाजिक परम्परा तथा मान्यताएँ परिलक्षित होती है। उदाहरण के लिए, ब्राह्मणवादी सस्कृति का मध्य देश मे प्रसार तथा उसका बौद्ध और जैनवाद की चुनौती से ऊपर उठने का प्रयास, इस साहित्य मे स्पष्टतया झलकता है।[143] आगे चल कर धर्म विभिन्न प्रकार के नये शास्त्रीय समूहो से जुडा। उसमे समन्वयवादी विचारधारा अपनायी गयी। परिणामस्वरूप वैदिक देवो के स्थान पर नये देवो ने अग्रगण्यता प्राप्त की। नई पौराणिक परम्पराओ का प्रादुर्भाव हुआ। पुराने देवो के नये प्रतिरूपो को महिमामण्डित किया गया।[144] इन नये देवो के प्रादुर्भाव के परिणाम से अनेक अवैदिक देव विस्तृत देवमण्डल के समूह से जुड़ गये। ऐसे पूज्य देवो से सदर्भित नये विश्वास, नयी मान्यताएँ, परम्पराएँ, उत्सव, तीज-त्योहार आदि पुराणो तथा साहित्य के माध्यम से विकसित हुए। इसी प्रकार की विभिन्न धार्मिक मान्यताएँ वैदिक, तात्रिक, पाशुपत तथा पाचरात्र धाराओ के अतर्गत पुराणो मे दिखाई देती है।[145]

इसी पृष्ठभूमि के अतर्गत 400 से 1400 ई० के बीच गणेश ने पूर्ण विकसित स्वरूप प्राप्त किया। शिव के गण के रूप मे प्रारभिक स्थिति से ऊपर उठकर वे प्रमुख देव के रूप मे स्थापित हुए तथा अन्य ब्राह्मणवादी देवो से जुड़ गये। शिव से अलग उनका एक नया सम्प्रदाय विकसित हुआ।[146]

---

141 थापन, अनीता रैना, अण्डरस्टैंडिंग गणपति इनसाइट्स इनटू द डाइनेमिक्स ऑफ द कल्ट, मनोहर प्रकाशन, 1997, पृ० 111

142 वही, पृ० 14

143 वही, पृ० 15

144 झा, श्रीमाली, प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1997, पृ० 318

145 वर्मा, हरिश्चन्द्र, मध्यकालीन भारत (750-1540) प्रथम भाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1987, पृ० 74

146 थापन, अनीता रैना, अण्डरस्टैंडिंग गणपति, मनोहर प्रकाशन, अध्याय 4, पृ० 130

पूर्वमध्यकाल मे ब्राह्मणवाद के अतर्गत अनेक सप्रदाय थे जिनमे से कुछ आज भी नव हिन्दूवाद के भीतर अपनी निरन्तरता बनाये हुए है।[147] इनमे तीन सम्प्रदाय प्रमुख है–शैव, वैष्णव तथा स्मार्त। शैव तथा वैष्णववाद के अतर्गत अनेक सम्प्रदायो का विकास हुआ जिनमे से कुछ का अस्तित्व समाप्त हो चुका है। शैव शिव को प्रमुख देव के रूप मे स्वीकार करते है। वैष्णव विष्णु को प्रमुख देव मानते है, जबकि स्मार्त मे पचदेवो की उपासना प्रचलित है। पचदेवो मे शिव, विष्णु, सूर्य, गणपति तथा शक्ति है। इनमे से किसी एक देव की पूजा की जा सकती है। सूर्य, गणपति तथा देवियो के भी क्रमश सौर, गाणपत्य तथा शाक्त सम्प्रदाय विकसित हुए। यद्यपि आज इन सप्रदायो का अस्तित्व नही है फिर भी स्वतत्र रूप से इन देवो की पूजा अब भी समाज मे की जाती है।[148]

प्रत्येक युग विशेष सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक स्थितियो का बोधक होता है। राज्य का सामतवादी सगठन, बद अर्थव्यवस्था की ओर प्रत्यावर्तन, जातियो का प्रगुजन, कला, लिपि तथा भाषा के क्षेत्रीयतावादी स्वरूप तथा भक्ति एव तत्र का मध्ययुग मे विकास हो चुका था। पूर्वमध्यकालीन भारत मे सामाजिक परिवर्तनो की पृष्ठभूमि कतिपय नई आर्थिक प्रवृत्तियो ने तैयार की। इनमे से सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा उल्लेखनीय भूमिदान की प्रवृत्ति थी।[149] राजा तथा सामत धर्म-कर्म से सबधित व्यक्तियो-समूहो, सस्थाओ, सरकारी अमलो को बड़े पैमाने पर भूमि तथा राजस्व के अधिकार प्रदान करने लगे थे। दान क्षेत्र राजकीय हस्तक्षेप से मुक्त कर दिये जाते थे। उनके प्रशासनिक अधिकार भी दानभोगियो को ही सौप दिये जाते थे। 11वी तथा 12वी शताब्दी मे उत्तर भारत के राजपूत राज्यो मे इस तरह के दान का उल्लेख मिलता है।[150] भूमिदानो से मध्यदेश की ब्राह्मण सस्कृति के फैलाव मे नया आयाम जुड़ गया। दकन मे सातवाहनो ने इस सस्कृति को प्रश्रय दिया।[151] सही सदर्भो मे, व्यापक स्तर पर ब्राह्मणीकरण गुप्तकाल से आरभ हुआ। इस काल तक ब्राह्मण मध्यदेश मे भली-भॉति प्रतिष्ठित हो चुके थे। वहॉ से उनका बाहरी प्रदेशो की ओर प्रसार हुआ। ब्राह्मणो का गॉवो की ओर पलायन व्यापारिक ह्रास के कारण हुआ।[152] सीमात क्षेत्रो मे ब्राह्मणो को दिये

---

147 थापन, अनीता रैना, अण्डरस्टैंडिंग गणपति, मनोहर प्रकाशन, अध्याय 4, पृ० 15

148 वही, पृ० 15

149 शर्मा, आर० एस०, पूर्वमध्यकालीन भारत का सामती समाज और सस्कृति, राजकमल प्रकाशन, 1998, पृ० 18

150 शर्मा, रामशरण, इडियन फ्यूडिलिज्म, 300-1200 कलकत्ता, 1965, अ० 5, पृ० 106

151 शर्मा, रामशरण, पूर्वमध्यकालीन भारत का सामती समाज और सस्कृति, राजकमल प्रकाशन, 1998, अ० 3, पृ० 73

152 शर्मा, आर० एस०, अर्बन डिके इन इडिया (300 - 1000) नई दिल्ली, 1987, पृ० 77

गये भूमिदान के माध्यम से उन प्रदेशो मे ब्राह्मणीय सस्कृति का प्रसार हुआ। भूमिदान के कारण ही कबायली क्षेत्रो का ब्राह्मणीकरण हुआ। जिसके फलस्वरूप सस्कृतिकरण भी हुआ। ब्राह्मणीय धर्म मध्यदेश से बाहर के इलाको मे धीरे-धीरे फैला।

एक ओर ब्राह्मणीकरण के कारण मध्यदेश के आस-पास के क्षेत्रो का सस्कृतिकरण हो रहा था, वही दूसरी ओर, राजनीतिक विखराव तथा क्षेत्रीयतावाद के विस्तार के कारण बाहरी आक्रमण भी होने लगे थे। अरबो के निरन्तर आक्रमणो के कारण उत्तर तथा पश्चिम भारत की राजनीतिक-सामाजिक स्थितियो मे भारी परिवर्तन आया। इन आक्रमणो के समय राजपूत शासक उत्तर-पश्चिम भारत मे राजनीतिक भविष्य की बागडोर सॅभाल रहे थे। इनकी राजनीतिक नीतियो का ताना-बाना इतना दुर्बल था कि प्रशासन मे किसी प्रकार की एकरूपता न रही। कोई भी राज्य निश्चित नीति निर्धारित न कर सका। फलत सामतवादी राजनीतिक पद्धति के साथ-साथ विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति तथा उससे उत्पन्न मतभेद जोर पकड़ने लगे। जिसके कारण समाज अत्यत जटिल दौर से गुजर रहा था।[153] एक ओर राजनीतिक विकेन्द्रीकरण, सामतवादी प्रवृत्तियॉ, कमजोर अर्थव्यवस्था तथा दूसरी ओर वाह्य आक्रमणो का दबाव। समाज को उस समय ऐसे व्यक्तित्व की आवश्यकता थी जो उसे प्रश्रय दे सकता तथा परिवर्तित परिस्थितियो मे नये मूल्यो, मान्यताओ की स्थापना भी करता। तत्कालीन धर्म ने जन सामान्य की दुर्बल मन स्थिति को दृढ आधार देने का प्रयास किया। परिणामत अलग-अलग क्षेत्रो मे अनेक सप्रदायो एव उनकी शाखाओ का सृजन तथा विकास हुआ। क्षेत्र के लोगो की मन स्थिति तथा आवश्यकता के अनुरूप नवीन देवो की प्रतिस्थापना हुई।[154]

विदेशी आक्रमण का केन्द्र प्रारम्भ मे पश्चिमोत्तर भारत था। भारतीय जनमानस मे विदेशी आक्रान्ताओ के प्रति घृणा तथा भय स्वाभाविक रूप से व्याप्त थे। यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि जिन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक परिस्थितियो मे गणेश पुराण की रचना हुई है, उनका स्पष्ट प्रतिबिम्ब इसमे दिखता है।[155]

गणेश पुराण की रचना जिस क्षेत्र मे हुई है तथा जिन भौगोलिक क्षेत्रो का वर्णन इसमे है उसके बारे मे विवेचन-विश्लेषण आवश्यक है।

---

153 शर्मा, आर० एस०, पूर्वमध्यकालीन भारत का सामती समाज और सस्कृति, राजकमल प्रकाशन, 1998, पृ० 21

154 कोर्टराइट, पॉल, बी०, गणेश लॉर्ड ऑफ आब्स्टेकल्स, लार्ड ऑफ बिगनिंग, मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन, 2001, पृ० 15

155 गणेश पुराण, उपासना खण्ड, भूमिका, पृ० 8

हाजरा [156] ने गणेश पुराण को सौराष्ट्र तथा महाराष्ट्र क्षेत्र से सम्बद्ध माना है। पौराणिक गणपति की परम्परा मध्यदेश मे प्रसारित हुई। गणेश पुराण मे जिन क्षेत्रो का वर्णन हुआ है, वे है–महाराष्ट्र, वाराणसी, कर्नाटक तथा आन्ध्र के कुछ क्षेत्र।[157] कार्टराइट [158] ने भी गणेश पुराण का क्षेत्र महाराष्ट्र तथा उसके आसपास का माना है। अनिता रैना थापर ने गणेश पुराण मे वर्णित कुछ महत्वपूर्ण तीर्थ स्थलो के आधार पर इसका क्षेत्र महाराष्ट्र तथा उत्तर भारत निर्धारित किया है।[159] गणेश पुराण मे उल्लिखित चिन्तामणिपुर, कदम्बपुरा, सिद्धिक्षेत्र[160] गणेशपुरा, पुष्पकपुर, मयूरेश्वर [161] आदि स्थलो का वर्णन मुद्गल पुराण मे भी प्राप्त होता है। कदम्बपुर को आधुनिक युतमाल जनपद के कलम्ब ग्राम से और महाराष्ट्र के कदम्बगिरि से जोडा गया है, जहॉ पर भूमिगत चिन्तामणि मदिर है।यद्यपि इसकी तिथि अनिश्चित है।[162] सिद्धि क्षेत्र को विद्वानो ने सिद्धिटेक से जोडा है। अष्टविनायक के मदिरो मे एक स्थल यह भी उल्लिखित किया गया है।[163] इसके अतिरिक्त काशी, सौराष्ट्र आदि स्थलो का भी वर्णन इसमे है। नर्मदा के आस-पास के क्षेत्रो का भी उल्लेख है। इनके आधार पर गणेश उपासना तथा गणेश पुराण का भौगोलिक क्षेत्र महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक तथा आन्ध्र प्रदेश के कुछ क्षेत्रो को माना जा सकता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचन करने पर यह तथ्य प्रकाश मे आता है कि इसी पश्चिमोत्तर क्षेत्र से अरबो के आक्रमण भी हो रहे थे। जन सामान्य के लिए सहज जीवन जीना भी दूभर हो रहा था। यह सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक उथल-पुथल का काल था। बाहरी आक्रमण ने सारी व्यवस्थाऍ छिन्न-भिन्न कर दी थी। पश्चिमोत्तर क्षेत्र मे किसी ऐसे व्यक्तित्व की आवश्यकता थी जो उन्हे इन विघ्नो से लड़ने की आत्मशक्ति प्रदान करने तथा नयी परिस्थितियो मे नये मूल्यो तथा परम्पराओ की स्थापना करने मे समर्थ हो। इन्ही परिस्थितियो मे पश्चिमोत्तर भारत मे गणेश की पूजा का प्रचलन बढ़ा। गणेश का स्वरूप

---

156 हाजरा, आर० सी०, वही, 92

157 थापन, अनीता रैना, अडरस्टैडिंग गणपति इनसाइट्स इनटू द डायनेमिक्स ऑफ द कल्ट, पृ० 21

158 कोर्टराइट, पॉल० बी०, गणेश लॉर्ड ऑफ ऑब्स्टेकल्स, लॉर्ड ऑफ बिगनिग, मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन 2001, पृ० 221

159 थापन, अनीता रैना, वही, 1997, पृ० 203

160 गणेश पुराण, 1 18 2

161 वही, 1 82 19

162 महाराष्ट्र स्टेट गजेटियर, युतमाल (Yeotmal) जनपद, पृ० 703

163 मुद्गल पुराण, 1 3 21 32

पुराणो मे 'विघ्नहर्त्ता' के रूप मे आरेखित किया जा रहा था। 'विघ्नहर्त्ता' की कल्पना तभी पुष्ट हो सकती थी जब विघ्न दैनिक जीवन मे उपस्थित हों। निरन्तर पतनशील हो रही सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक परिस्थितियो मे विघ्नहर्त्ता गणेश को उत्थान एव कल्याण का प्रतीक बनाया गया। इस आस्था ने जनसामान्य को आत्मिक शक्ति, मानसिक स्थिरता तथा भावनात्मक स्तर पर सबल प्रदान किया। मराठा शक्ति ने मध्ययुग मे तथा बालगगाधर तिलक ने स्वतत्रता सग्राम की पृष्ठभूमि मे गणेश को सामाजिक, राजनैतिक एव आध्यात्मिक उत्कर्ष का प्रतीक बनाकर भारत की सुषुप्त चेतना को जाग्रत करने का प्रयास किया था। इस क्षेत्र मे गाणपत्य सम्प्रदाय उभर कर महत्वपूर्ण रूप से सामने आया। इस सम्प्रदाय के अनुयायियो ने गणेश को प्रचारित, प्रसारित तथा स्थापित करने के लिए उनसे सम्बद्ध साहित्य की रचना की, जो गाणपत्य साहित्य के नाम से जाना जाता है। इनमे गणेश पुराण का प्रमुख स्थान है। गणेश के विषय मे अनेकानेक कथाएँ तथा लीलाएँ इसमे वर्णित है।

गणेश पुराण की विषयवस्तु

गणेश पुराण उपपुराण है। इसमे 'सर्व जगन्नियता' पूर्ण परमतत्व के रूप मे 'गणपति तत्व' को व्याख्यायित किया गया है। इस पुराण मे कुल 247 अध्याय है। श्लोको की सख्या 11079 है। इसके दो खण्ड है

1 उपासना खण्ड

2 क्रीडा खण्ड

उपासना खण्ड के अतर्गत 92 अध्याय है। इसमे 4093 श्लोक है। इस खण्ड मे गणेश की उपासना, पूजा, व्रत, मत्र तथा उनके सगुण व निर्गुण दोनो रूपो की विवेचना की गयी है। इसके अतिरिक्त आचार [164] एव कर्म सम्बन्धी सिद्धान्तो का भी प्रतिपादन है। दूसरा खण्ड क्रीडा खण्ड है, जिसमे 155 अध्याय तथा 6986 श्लोक है। इसमे गणेश के विभिन्न अवतारो, स्वरूपो तथा लीलाओ का वर्णन है।

गणेश पुराण की कथा सूत जी ने शौनक ऋषि के नैमिषारण्य आश्रम मे आयोजित किये गये बारह वर्षीय यज्ञ मे आये कुछ ऋषियो के आग्रह पर सुनाया।[165] गणेश पुराण मे ही उल्लिखित है कि व्यास ऋषि ने 18 पुराणो व 18 उपपुराणो की रचना की, क्योकि कलियुग मे वेदो का अध्ययन बद कर दिया गया था। जाति के निर्धारित किये गये कर्मो का पालन नही

---

164 गणेश पुराण, 1 2 4-38

165 वही, 1 3-9

किया जाता था। वर्णसकर जातियॉ उत्पन्न हुई। लोग विभिन्न प्रकार के पापो मे लिप्त थे।इतिहासकारो ने कलि का वर्णन विभिन्न प्रकार से किया है, परन्तु मुख्य रूप से स्थापित समाज व्यवस्था के नियमो के उल्लघन का अर्थ कलि तथा उसके लक्षणो का प्रकट होना माना गया है। हाजरा ने पौराणिक साहित्य से ज्ञात कलि वर्णन के तीन कालक्रमिक स्तर बताये है। प्रारभिक समूह के वर्णनो का सबध तीसरी शताब्दी से, दूसरे समूह के वर्णनो का आठवी शताब्दी तथा तीसरे समूह का वर्णन दसवी तथा उसके आस-पास के काल से किया है।[166] हाजरा ने जिन कालो की पहचान कलियुग के रूप मे की है उनमे से प्रत्येक मे विदेशी आक्रमण, अस्थिरता, सामाजिक तनावो, सघर्षो तथा पाखण्डी सप्रदायो का बोलबाला था। कलियुग मे चतुर्दिक असुरक्षा, अव्यवस्था का साम्राज्य था। इस स्थिति मे 'योगक्षेम' का विनाश हो गया।[167] योगक्षेम का अर्थ सामान्य रूप मे जन कल्याण लगाया जाता है। सामाजिक अस्थिरता, वर्ण सघर्ष, पाखण्ड की स्थिति स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। हरिवश से ज्ञात होता है कि निस्सार, असहाय तथा क्षुभित ससार मे कर-भार से पीडित जन वनो मे जा बसेगे।[168] तीसरी-चौथी शताब्दी के पुराणो मे वर्णित है कि विभिन्न वर्ण अपने कर्त्तव्यो से विमुख हो गये। उन्होने कर देना तथा श्रम के रूप मे सेवा देना बद कर दिया। इससे वर्णसकर की स्थिति उत्पन्न हुई। राजकीय सरक्षण भी नही था। पुराणो के तीसरी-चौथी शताब्दी मे वर्णित अशो मे इस स्थिति को कलियुग कहा गया।[169] अत धर्म की रक्षा हेतु पुराणो की रचना की गई।[170] गणेश पुराण की केन्द्रीय कथा सोमकान्त से सदर्भित है, जो सौराष्ट्र के देवनगर का शासक था। वह अचानक कुष्ठ रोग से पीड़ित हो गया।[171] फलस्वरूप उसने अपने पुत्र हेमकान्त को राजगद्दी पर बिठाया तथा उसे नीति और आचार सबधी विभिन्न निर्देश दिया। अपनी पत्नी सुधर्मा तथा दो मत्रियो के साथ वह जगल मे चला गया।[172] विश्राम करते समय एक झील के किनारे सुधर्मा की भृगु ऋषि के पुत्र च्यवन से भेट हुई।

---

166 हाजरा, आर० सी०, स्टडीज इन द पुराणिक रेकर्ड्स ऑन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, द्वितीय सस्करण 1975, पृ० 210-7 (वायु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, विष्णु पुराण)

167 महाभारत, शान्ति पर्व, 70 20, गीता प्रेस, 1996

168 हरिवश पुराण 117 23, चित्रशाला प्रेस, पूना 1936

169 यादव, बी० एन० एस०, द एकाउट्स ऑफ द कलिएज एड द सोशल ट्राजिशन फ्राम एटीक्विटी टु द मिड्ल एजेज, इडियन हिस्टॉरिकल रिव्यू IV, अक 1 व 2, 1978

170 गणेश पुराण, 9 37-39

171 वही, 1 123-38

172 वही, 1 3-3-50

च्यवन के पूछने पर उसने अपने पति के सबध मे सब कुछ बता दिया। भृगु ने उन सब को अपने आश्रम मे बुलाया।[173]

सोमकान्त ने जब भृगु से अपने रोग का कारण तथा उपचार पूछा तब उन्होने अपनी त्रिकालदर्शी शक्ति से उसके पूर्वजन्म की कथा विस्तारपूर्वक सुनाई।[174]

पूर्वजन्म मे सोमकात विंध्यपर्वत के निकट कोल्हारनगर मे कामन्द नाम के एक वैश्य परिवार मे उत्पन्न हुआ था।[175] अपने अभिभावको की मृत्यु के बाद वह अत्यत निरकुश हो गया। फलत उसकी पत्नी भी उसे छोड कर चली गयी।[176] वह वैश्य भी जगल मे चला गया। वहॉ जाकर वह अबोध राहगीरो पर, यहॉ तक कि ब्राह्मणो पर भी, अत्याचार करने लगा।[177] लूट-पाट व अत्याचार द्वारा उसने अत्यधिक धन उपार्जित कर लिया। वृद्धावस्था मे कमजोर और असहाय हो जाने पर अपने सम्बधियो आदि से किसी प्रकार का सहयोग उसे न मिला। तब उसे युवावस्था मे किये गये अपने कर्मो पर पश्चाताप हुआ। उसने अपनी सारी सम्पत्ति विद्वान् ब्राह्मणो को देने का निश्चय किया। किंतु सभी ने पापकर्म से अर्जित धन को लेने से अस्वीकार कर दिया।[178] इस प्रकार उसके मन मे व्याधि, स्वजनो के त्याग तथा ब्राह्मणो के तिरस्कार के कारण अत्यधिक अनुताप हुआ।[179]

ब्राह्मणो के निर्देशानुसार उसने इस धन से वन मे स्थित गणेश के एक प्राचीन मदिर का जीर्णोद्धार कराने का निश्चय किया। शीघ्र ही उसने बावडी-बगीचे तथा रत्नजडित स्तभो वाले मदिर का निर्माण कराया।[180] कुछ समय के बाद उसकी मृत्यु हो गयी।[181]

मृत्यु के उपरात यम द्वारा यह पूछे जाने पर कि तुम पुण्य कर्मो का फल पहले भोगना चाहोगे या पापकर्मो का। उसने पहले पुण्य कर्मो का फल भुगतने की इच्छा प्रकट की।[182] भृगु ने कहा– तुम सौराष्ट्र देश के बलशाली राजा बने, अब तुम्हारे पुण्य कर्म समाप्त हो चुके है। पाप कर्मो के फल भुगतने का समय आ गया है। इसी कारण गलित कुष्ठ से पीडित हुये।[183]

---

173 गणेश पुराण, 1 6-10-14
174 वही, 1 7-2-7
175 वही, 1 7 6-10
176 वही, 1 7 14-15
177 वही, 7 30-41
178 वही, 1·8 3-16
179 वही, 1 8 19
180 वही, 8 19-25
181 वही, 1 8 26-27
182 वही, 1 8 28-29
183 वही, 1 8 30-31

इस कथा को सुनने के बाद भी सोमकान्त को भृगु के कथन पर विश्वास नही हुआ। उसी समय अचानक अनेक पक्षियो ने उस पर आक्रमण कर उसका मास नोचना आरभ कर दिया।[184] लज्जित सोमकान्त ऋषि के चरणो मे गिर पडा। उनसे अपने कृत्य के लिए क्षमा मॉगी। भृगु ऋषि ने गणेश का 108 बार नाम जपकर अभिमत्रित जल उस पर छिडका। एक भयावह पाप-पुरुष उसके शरीर से निकला तथा समीपवर्ती आम के वृक्ष पर जैसे ही आश्रय लिया, वह वृक्ष जल कर राख हो गया। सोमकान्त उसी समय रोगमुक्त हो गया।[185]

भयावह रोग एव पापकर्मो से पूर्णत मुक्ति हेतु उपाय पूछे जाने पर भृगु ने उसे गणेश पुराण के श्रद्धापूर्वक श्रवण का अनुष्ठान बताया।[186]

सोमकान्त ने भृगु ऋषि की आज्ञा से भृगु तीर्थ मे स्नान कर गणेश पुराण सुनने का सकल्प किया। उसने ध्यानपूर्वक समस्त गणेश पुराण का श्रवण [187] किया जिससे न केवल उसे दु खो से मुक्ति मिली, अपितु अमरत्व की प्राप्ति भी हुयी। इस मुख्य कथा के अतर्गत अनेक उपकथाये विकसित हुई है।

उपासना खण्ड

गणेश पुराण के उपासना खण्ड के आरभिक अश 1 से 5 अध्याय तक सोमकात के प्रतापी राजा होने, गलित कुष्ठ होने पर राज्य अपने पुत्र हेमकण्ठ को देकर, पत्नी सुधर्मा व दो मत्रियो के साथ वन मे जाने तक की कथा का वर्णन है। इन अध्यायो मे स्थान-स्थान पर उसके द्वारा पुत्र हेमकण्ठ को दिये जाने वाले आचार, नीति, कर्त्तव्य [188] सम्बन्धी उपदेश, पत्नी के धर्म [189] राजधर्म [190] राजा के गुण [191], विभिन्न स्थलो पर वर्ण, जाति व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था [192] कर्म सिद्धान्तो [193] आदि का वर्णन प्राप्त होता है।

---

184 गणेश पुराण, 1 8 33-35

185 वही, 1 9 3-14

186 वही, 1 9 19-22

187 वही, 1 9 30-36

188 वही, 13 4-8

189 वही, 1 1-35

190 वही, 1 2 9, 1 30

191 वही, 1 3 21-29

192 वही, 1 3-45, 3 13-14

193 वही, 2 22, 4-16

6 से 9 अध्यायो मे सोमकात व उनकी पत्नी सुधर्मा का वन मे भृगु ऋषि से मिलने[194] तथा सोमकान्त द्वारा अपने रोग का कारण पूछने पर ऋषि द्वारा दिव्य दृष्टि से उसके पूर्वजन्म की कथा का वर्णन है।[195] उन्होने सोमकान्त के पूर्वजन्म मे अत्याचारी व लुटेरा वैश्य होने की बात बताया, जो लूट-पाट से विपुल धन-सपत्ति का सचय कर लेता है। किंतु वृद्धावस्था मे उसे अपने कर्मो पर पश्चाताप होता है।[196] समाज व परिवार द्वारा उसकी भी उपेक्षा की जाती है। पाप से अर्जित उसके धन को स्वीकार कोई भी नही करता। तब ब्राह्मणो की मत्रणा पर एक प्राचीन गणेश मदिर का जीर्णोद्धार कराके वह पुण्य अर्जित करता है।[197] इस जन्म मे उस पुण्य कर्म के कारण राजसी सुख तथा पुण्य कर्मो के समाप्त होने पर पापकर्मो के कारण गलित कुष्ठ का दण्ड भुगतना पड रहा है।[198] इससे मुक्ति के सन्दर्भ मे पूछे जाने पर भृगु ने सोमकान्त को गणेश पुराण सुनने का सुझाव दिया। इसके श्रवण से सोमकान्त रोगमुक्त हो सकता है तथा पूर्वजन्म के पापकर्मो का नाश हो सकता है।[199] इन अध्यायो मे तत्कालीन समाज मे प्रचलित गुरु-शिष्य परम्परा [200], सती-प्रथा [201], वेश्यावृत्ति [202], ब्राह्मणो की समाज मे सर्वोच्च स्थिति [203], मन्दिर के स्वरूप तथा जीर्णोद्धार [204] का उल्लेख प्राप्त होता है। गणेश पुराण का ऐतिहासिक विवेचन करने पर क्षेत्र तथा काल निर्धारण मे भी सहायता मिलती है।

10वे अध्याय मे गणेश के अग्रपूजक स्वरूप की महत्ता बताते हुए कहा गया है कि किसी कार्य के आरभ मे यदि अनादि, अनत, जगत्कर्ता, जगमय, जगतदाता, सत्-असत्, व्यक्त-अव्यक्त स्वरूप गणेश का पूजन तथा स्तुति न करने पर विघ्नहर्ता गणेश विघ्नकर्त्ता बन जाते है।[205] अत किसी कार्य के आरभ मे ही उसकी निर्विघ्न समाप्ति हेतु गणेश की स्तुति व पूजन अनिवार्य है। अन्यथा, नित्य, नैमित्तिक, काम्य, श्रौत व स्मार्त कर्मो मे भी भ्राति हो जाती है।[206]

---

194 गणेश पुराण, 6 11 20

195 वही, 1 7 6-30

196 वही, 1 7 11-25

197 वही, 1 8 20-25

198 वही, 1 8 29-32

199 वही, 9 19-22

200 वही, 1 6 2-5

201 वही, 1 6 15

202 वही, 1 6 16

203 वही, 1 6 38-39

204 वही, 1 8 20-24

205 वही, 1 1 22-26

206 वही, 1 10.3-4

11वे अध्याय मे ब्रह्मा जी व्यास से शास्त्रो मे वर्णित गणेश के सात करोड मत्रो मे दो 'षडाक्षर' व 'एकाक्षर' महामत्र की महत्ता का वर्णन करते है। एकाक्षर मत्र को 'मत्रराज' की सज्ञा दी गयी है। इन दोनो को सभी सिद्धियॉ प्राप्त करने वाला सिद्ध मत्र बताया गया है।[207] साथ ही एकाक्षर मत्र के अनुष्ठान की विधि भी बतायी गयी है।[208] यह भी वर्णित है कि गणेश मे आस्था रखने वाले व्यक्ति को ही इन मत्रो का ज्ञान कराना चाहिए। अपात्र को देने पर मनुष्य नरकगामी होता है।[209] 12वे अध्याय मे गणेश के विराट [210], चतुर्भुज [211] एकदत [212] स्वरूप का वर्णन है। साथ ही प्रलय के पश्चात जब सम्पूर्ण सृष्टि का विनाश हो गया उस समय गजानन ब्रह्म एकाक्षर 'ॐ' रूप मे नाद बन गये। फिर वे माया के विकार रूप मे परिवर्तित हुए, जिससे सत्व, रजस व तमस गुणो की उत्पत्ति हुयी। इन्ही से ब्रह्मा, विष्णु व महेश की उत्पत्ति हुई। ये तीनो ही माया से भ्रात होकर अपने कर्मो के निर्धारण हेतु जगतपिता गजानन को खोजने लगे। अथक प्रयास के पश्चात् गणेश ने उन्हे अपने विराट स्वरूप का दर्शन कराया।[213]

13वे अध्याय मे ब्रह्मा, विष्णु व शिव द्वारा गणेश की स्तुति किये जाने का उल्लेख है, जिसमे गणेश के निर्गुण-निराकार स्वरूप का वर्णन है।[214] इस स्त्रोत को 'स्त्रोतराज' की सज्ञा दी गयी है। इसे सर्वसिद्धिदायक स्त्रोत माना है।[215] गणेश ने ब्रह्मा, विष्णु व शिव के, उनकी प्रसिद्धि हेतु कर्त्तव्य तय किये। ब्रह्मा की रजोगुण से उत्पत्ति के कारण सृष्टि के कर्त्ता, विष्णु के सतोगुण स्वरूप के कारण सृष्टि के पालक व शिव के तमोगुण उत्पत्ति के कारण समय पर सहार करने का कार्य सौपा।[216] उन्हे विशिष्ट गुण भी प्रदान किया। इन तीनो देवो को उन्होने उनके कार्यो को यथोचित रूप से सम्पन्न करने हेतु विशिष्ट गुण भी प्रदान किया। जैसे, ब्रह्मा को वेदशास्त्र व पुराणो का ज्ञान व सृष्टि रचने का सामर्थ्य दिया। विष्णु को योग के सामर्थ्य

---

207 गणेश पुराण, 1 11 3-4

208 वही, 1 11 11-16

209 वही, 1 11 26

210 वही, 1 12 31-33

211 वही, 1 12 34

212 वही, 1 12 36

213 वही, 1 12 12-33

214 वही, 1 13 4-12

215 वही, 1 13 18

216 वही, 1 13 24

से स्वच्छन्दरूपता अर्थात् इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति, शिव को 'एकाक्षर' व 'षडाक्षर' मत्र व समस्त आगमो का ज्ञान व सहार की शक्ति प्रदान की।[217]

सृष्टि करने की प्रेरणा देने हेतु ब्रह्मा को अपने भीतर श्वास द्वारा प्रवेश कराके अनत ब्रह्माण्ड व दिव्य तथा विराट स्वरूपो का दर्शन कराया।[218] 14वे अध्याय मे ब्रह्मा ने जब सृष्टि का विधान किया तो उनके मन मे स्वय के इस कृत्य को देखने के पश्चात् अहकार का भाव आ गया। तभी वे नाना प्रकार के विघ्नो से जकड लिये गये। उन्होने गणेश जी की स्तुति की व उनके विराट स्वरूप का ध्यान किया तब उन्हे ज्ञान प्राप्त हुआ।[219] इस विराट स्वरूप के अतर्गत गणेश के सर्प यज्ञोपवीत धारण किये स्वरूप का उल्लेख हुआ है।[220]

15वे अध्याय मे ब्रह्मा को गणेश ने स्वप्न मे एकाक्षर मत्र का दस लाख जाप करने का आदेश दिया,[221] तथा प्रसन्न होकर उन्हे अपने सहज स्वरूप का दर्शन दिया। दृढ व शुभ ज्ञान भी प्रदान किया। विघ्नो का नाश कर सृष्टि रचना की प्रेरणा दी।[222] दक्षिणा स्वरूप ब्रह्मा ने गणेश को रिद्धि-सिद्धि नामक दो कन्याये प्रदान की।[223] गणेश की कृपा से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना पुन प्रारभ की।[224] 16वे तथा 17वे अध्याय मे ब्रह्मा के सात मानस-पुत्रो की कथा है। जिन्हे उन्होने सृष्टि मे सहायता हेतु जन्म दिया था।[225] कालान्तर मे ब्रह्मा के मुख, बाहु, उरु व चरण से चतुर्वर्णो के जन्म का उल्लेख है, जैसा कि ऋग्वेद के दशम मण्डल मे पुरुष सूक्त मे भी प्राप्त होता है।[226] चारो वर्णो की सृष्टि के बाद ब्रह्मा ने जगत के क्रमश स्थावर व जगम रूपो की रचना की।[227]

कुछ दिनो बाद विष्णु के कर्ण के मैल से मधु व कैटभ नाम के दो दैत्यो के जन्म का उल्लेख है [228] जो ब्रह्मा को खाने को उद्यत हुये। उस समय विष्णु क्षीरसागर मे सो रहे थे।

---

217 गणेश पुराण, 1 13 26-27

218 वही, 1 13 32-39

219 वही, 1 14 18-24

220 वही, 1 14 23

221 वही, 1 15 14-19

222 वही, 1 15 29-30

223 वही, 1 15 39

224 वही, 1 15 40

225 वही, 1 16 5

226 वही, 1 16 8-9

227 वही, 1 16 10

228 वही, 1 16 13

ब्रह्मा ने डर कर निद्रा देवी से प्रार्थना की। [229] देवी ने प्रसन्न होकर विष्णु की तद्रा भग की।यहॉ पर विष्णु के मधु व कैटभ से युद्ध का प्रसग वर्णित है।[230] पॉच हजार वर्ष के लम्बे युद्ध के बाद भी इन दैत्यो को पराजित करने मे विष्णु असमर्थ रहे। अत गायन विद्या मे निपुण गधर्व का रूप धारण कर उन्होने शिव को प्रसन्न किया।[231] शिव ने गणेश की अग्रपूजा न किये जाने के कारण उनकी शक्ति क्षीण हो जाने की बात बताई।[232] साथ ही गणेश को प्रसन्न करने के लिए षडाक्षर महामत्र दिया।[233]

18वे अध्याय मे विष्णु द्वारा सिद्धि क्षेत्र मे गणेश की आराधना का वर्णन है।[234] इसी स्थल पर उनके तप से प्रसन्न होकर गणेश ने उन्हे यश, बल तथा कीर्ति प्रदान की।[235] इस अध्याय मे गणेश से सबधित स्थल तथा मदिर का उल्लेख है। जिस स्थल पर विष्णु को सिद्धि प्राप्त हुई, उस स्थल पर उन्होने गणेश के मदिर तथा गण्डकी नदी के प्रस्तरो से बनी उनकी प्रतिमा स्थापित किया, जो सिद्धि विनायक के नाम से प्रसिद्ध हुई।

19वे और 20वे अध्याय मे विदर्भ देश के राजा की कथा है, जो नि सतान होने के कारण पत्नी के साथ अपना राज्य मत्रियो को सौपकर वन चले जाते है।[236] वहॉ ऋषि विश्वामित्र के आश्रम मे पहुँचकर उनसे पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद ग्रहण करते है। विश्वामित्र उनके पूर्वजन्म की कथा बताते है कि पिछले जन्म मे लक्ष्मी के मद मे अधे होने से तुमने वेद-शास्त्र, पुराण व लोक-व्यवहार का अनादर किया। इसी से तुम सतान-सुख से वचित हो।[237]

विश्वामित्र उनके पहले के राजा वल्लभ की भी कथा सुनाते है। उनकी पत्नी का नाम कमला था। उन्हे एक मूक, बधिर व कुबड़े पुत्र की प्राप्ति हुई थी।[238] उसका नाम दक्ष था। अनेक तरह के दान, तप, अनुष्ठान आदि के बाद भी जब दक्ष स्वस्थ नही हुआ तो राजा ने अपनी पत्नी व पुत्र दोनो को नगर के बाहर निकाल दिया।[239] कमला पुत्र को लेकर इधर-उधर

---

229 गणेश पुराण, 1 16 21-29

230 वही, 1 17 14-16

231 वही, 1 17 20-26

232 वही, 1 17-36

233 वही, 1 17-40

234 वही, 1 18 8-16

235 वही, 1 18 20-21

236 वही 1 19 6-20

237 वही, 1 19 36-38

238 वही, 1 19 20-45

239 वही, 1 20 2-7

भिक्षाटन करती रही। एक दिन किसी ब्राह्मण के वायु स्पर्श से दक्ष स्वस्थ हो गया।[240] ब्राह्मण ने उसे (दक्ष) व कमला को गजानन के 'अष्टाक्षरी मत्र' के जप का उपदेश दिया।[241]

इस उपदेश का अनुपालन करने पर दक्ष तथा उसकी मॉ कमला को गणेश के दिव्य स्वरूप के दर्शन हुए।[242] गणेश ने उस ब्राह्मण का नाम 'मुद्गल' बताया तथा यह भी कहा कि वह मेरा अनन्य भक्त है। वह तुम्हारा पुनर्जन्मदाता है। गणेश ने उन्हे यह आशीर्वाद दिया कि वे (मुद्गल ऋषि) तुम्हारे ध्यान मात्र से उपस्थित हो जायेगे तथा वही वरदान भी देगे।[243] गणेश के दिव्य स्वरूप को देख दक्ष उन्हे पुन प्राप्त करने हेतु व्याकुल हो उठे। उन्हे खोजते हुए मुद्गल ऋषि के आश्रम मे पहुॅचे।[244] वहॉ ऋषि ने उन्हे एकाक्षर मत्र का उपदेश दिया।[245]

अध्याय 22वे व 23वे मे दक्ष तथा कमला के पूर्वजन्म की कथा है। पूर्वजन्म मे, कल्याण नामक एक धनवान सिधु देश के पल्ली नगर मे रहता था। उसे एक पुत्र की प्राप्ति हुयी जिसका नाम वल्लाल रखा गया। वह गणेश का भक्त था। एक बार उसके पिता ने गॉव के बाहर उसके द्वारा बालक्रीडा मे निर्मित पर्णकुटीर मदिर एव मृण्मयी प्रतिमा को तोड दिया। उसे मारा-पीटा तथा वृक्ष से बॉध दिया। इससे दुखी होकर वल्लाल ने उसे श्राप दे दिया। गणेश ने प्रसन्न होकर वल्लाल को दर्शन दिया तथा मदिर व देवप्रतिमा तोडने के प्रसग मे उसके पिता को मूक, वधिर, कुबडा और गलित अगवाला बना दिया।[246] वल्लाल को उस स्थल पर पुन मदिर और देवप्रतिमा स्थापित करने का आदेश दिया। उस स्थल को 'विल्लाल विनायक' नाम से प्रसिद्ध होने का आशीर्वाद भी दिया। माता के अनुरोध पर उन्होने बताया कि अगले जन्म मे कल्याण पुन तुम्हारे पति बनेगे। तुम दोनो को मूक, बधिर व अधे पुत्र की प्राप्ति होगी। बारह वर्षो के जप-तप, दान के बाद भी वह ठीक नही होगा। तब तुम्हे पुत्र के साथ नगर निष्कासन मिलेगा और फिर एक ब्राह्मण के वायुस्पर्श से वह बालक स्वस्थ होगा। उसे गजानन के दर्शन होगे।[247] यह बताकर वल्लाल दिव्य विमान मे बैठकर गजानन के धाम चला गया। इस अध्याय मे गणेश के चतुर्भुज, त्रिनेत्र व रक्तवर्णी स्वरूप का वर्णन है।[248]

---

240 गणेश पुराण, 1 20 10-11

241 वही, 1 20 29

242 वही, 1 20 50

243 वही, 1 20 56

244 वही, 1 21-5

245 वही, 1 21 -49

246 वही, 1 22 42-44

247 वही, 1 23 34-40

248 वही, 1 23 15-16

24वे और 25वे अध्याय मे दक्ष के राजा बनने का वर्णन है। कौडिन्य वन मे गजानन के एक प्राचीन मदिर मे बारह वर्षो तक मुद्गल द्वारा दिये गये एकाक्षरी मत्र की साधना करने के पश्चात दक्ष को एक सुन्दर हाथी का स्वप्न आया, जो उसके राज्य प्राप्त करने का द्योतक था।[249] तभी दैवयोग से कौडिन्यनगर के राजा चन्द्रसेन की मृत्यु हो गयी।[250] वे नि सतान थे। मत्री व प्रजा उनके उत्तराधिकारी के विषय मे विचार कर ही रहे थे [251] कि मुद्गल ऋषि वहॉ पहुॅचे। उन्होने विचार करके बताया कि चन्द्रसेन का हाथी जिसके गले मे माला डाल देगा वही राजा बन जायेगा। सभी इस पर सहमत हो गये।[252]

26वे अध्याय मे हाथी द्वारा दक्ष के राजा चुने जाने का वर्णन है।[253] इस अवसर पर दक्ष ने ब्राह्मणो को गाय व वस्त्र दान दिया।[254] मुद्गल ऋषि को भी उसने सम्मानित किया। उन्हे धन, रत्न, वस्त्र, गॉव तथा गाये दान मे दी।[255] कौडिन्य नगर मे स्थित गणपति के छोटे मदिर को और विशाल स्वरूप प्रदान किया।[256] इस अध्याय मे दक्ष की वश परम्परा का भी उल्लेख है।[257]

27वे अध्याय मे वर्णित है कि भीम द्वारा विश्वामित्र से गणेश को प्राप्त करने का उपाय पूछने पर विश्वामित्र ने उन्हे एकाक्षर मत्र का उपदेश दिया।[258] उसका अनुष्ठान कौडिन्य नगर के मदिर मे करने को कहा। यह सकेत दिया कि इससे प्रसन्न होकर गणेश धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी इच्छाये पूरी करेगे।[259]

भीम ने अपने नगर मे आकर विश्वामित्र द्वारा दिये आदेशानुसार गणेश का अनुष्ठान प्रारभ किया।[260] उनकी भक्ति व अनुष्ठान से प्रसन्न होकर गणेश ने उन्हे दर्शन दिया तथा भीम को द्विज पूजा का आदेश दिया।[261] उनकी कृपा से 'रुक्मागद' नामक पुत्र का जन्म हुआ।[262]

---

249 गणेश पुराण, 1 24 5, 1 24 10-13
250 वही, 1 25 2-13
251 वही, 1 25 28-30
252 वही, 1 25 32
253 वही, 1 26 4
254 वही, 1 26 22
255 वही, 1 26 16-21
256 वही, 1 26 24
257 वही, 1 26 27-28
258 वही, 1 27 2
259 वही, 1 27 5
260 वही, 1 27 13-14
261 वही, 1 27 20
262 वही, 1 27 23

रुक्मागद भी विनायक भक्त था।[263] एक बार आखेट करते हुये प्यास लगने पर वह एक ऋषि के आश्रम मे पहुँचा।[264]

28वे व 29वे अध्याय मे ऋषि-पत्नी मुकुन्दा की रुक्मागद के प्रति अधीरता की कथा है।रुक्मागद जब प्यास से व्याकुल होकर ऋषि आश्रम पहुँचा तो वहॉ उसे कामातुर ऋषि-पत्नी मुकुदा मिली।[265] वह रुक्मागद पर आसक्त हो गयी। किन्तु रुक्मागद द्वारा तिरस्कृत किये जाने पर मुकुदा ने उसे श्वेत कुष्ठ होने का श्राप दिया।[266] रुक्मागद इससे अत्यत दुखित हुआ।नारद ऋषि ने उसे कुष्ठ रोग से मुक्ति का मार्ग बताया कि विदर्भ के कदम्ब नामक स्थल पर विनायक की चितामणि के नाम से विख्यात मूर्ति है और उसके सामने ही गणेश पद से चिन्हित एक महाकुण्ड है जिसमे स्नान करने से कुष्ठ रोग दूर हो जाता है।[267]

30 से 32वे अध्याय मे इन्द्र द्वारा छद्म वेश धारण कर गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या के शीलभग की कथा है। गौतम को जब इस घटना का पता चला तो उन्होने अहिल्या को शिला बनने तथा इन्द्र को हजार भग से युक्त होने का श्राप दिया।[268] इन्द्र लज्जित होकर नलिनी पुष्प के नाल मे छिप गये। अनेक देवता गौतम ऋषि से प्रार्थना करने हेतु पहुँचे। देवताओ की प्रार्थना से सयमित होकर गौतम ने इन्द्र को शापमुक्त होने के लिये विनायक का सिद्धिप्रद षडाक्षर मत्र जपने को कहा।[269]

33वे अध्याय मे इन्द्र द्वारा उस मत्र के अनुष्ठान करने तथा गणेश के प्रसन्न होने का उल्लेख है।जिस स्थल पर इन्द्र ने गणेश का अनुष्ठान किया था, वह स्थल 'चिन्तामणि' तथा 'कदम्बपुरा' नाम से विख्यात हुआ। वहॉ पर इन्द्र ने गजानन की स्फटिक से निर्मित मूर्ति स्थापित की। एक विशाल मदिर भी बनवाया।[270] रुक्मागद ने उस चितामणि कुण्ड मे स्नान करके श्वेत कुष्ठ से मुक्ति पायी।[271]

---

263 गणेश पुराण, 1 27 26

264 वही, 1 27 29

265 वही, 1 28 4

266 वही, 1 28 18, 1 29 9-13

267 वही, 1 29 8-15

268 वही, 1 30 31

269 वही, 1 32 31-32

270 वही, 1 33 35-38

271 वही, 1 33 42

अध्याय 36 मे मुकुदा की कथा है। उसे कामातुर देख इन्द्र ने रुक्मागद का वेश धारण कर उसे तृप्त किया।[272] इसका पता न ऋषि को चला और न ही मुकुदा को। इसके परिणामस्वरूप मुकुदा को गृत्समद नामक पुत्र की प्राप्ति हुयी। ऋषि ने उसे ऋग्वेद वर्णित मत्र 'गणानात्वा' का उपदेश दिया।[273] मगध राजा के पितृ-श्राद्ध मे अन्य ऋषियो ने विवाद के दौरान गृत्समद के रुक्मागद का पुत्र होने का भेद खोला।[274] सत्य का पता लगने पर गृत्समद ने क्रुद्ध होकर अपनी माता को बेर (बदरी) का वृक्ष होने का श्राप दिया। मॉ मुकुदा ने भी गृत्समद को दैत्य पुत्र का पिता होने का श्राप दिया। गृत्समद दुखी होकर एकनिष्ठापूर्वक गणेश की कठोर तपस्या करने लगे। उनकी दु साध्य तपस्या से प्रसन्न होकर गणेश ने उन्हे दर्शन दिया।[275] वे सिहारूढ, दसभुज विनायक के रूप मे थे।[276] गृत्समद ने गणनायक से विप्रत्व की मॉग की। गणेश ने उन्हे 'गणानात्वा' मत्र से ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण व ऋषि होने का वर भी दिया। योग्य तथा बलशाली पुत्र प्राप्ति का भी आशीर्वाद दिया।[277] गृत्समद ने 'वरदा' नामक गणेश मूर्ति की स्थापना की तथा मदिर निर्माण भी कराया।[278]

गृत्समद के पुत्र त्रिपुर की कथा आगे के कुछ अध्यायो मे वर्णित है। जिसने गणेश को प्रसन्न कर तीनो लोको पर विजय का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया तथा उसकी मृत्यु मात्र शिव के बाणो से ही होगी, यह वरदान भी लिया।[279]

39वे अध्याय मे त्रिपुर द्वारा कश्मीर के पत्थरो से निर्मित गजानन की मूर्ति को वैदिक ब्राह्मणो द्वारा विधिपूर्वक स्थापित कर गणेशपुर के मध्य एक सुन्दर व विशाल गणेशमदिर बनवाने का प्रसग है।[280] त्रिपुर द्वारा स्थापित यह स्थल बगाल मे 'गणेशपुर' नाम से प्रसिद्ध हुआ।[281] तत्पश्चात् इन्द्र व त्रिपुर मे युद्ध हुआ। इन्द्र को परास्त कर उनके आसन पर त्रिपुर आरूढ़ हुआ।[282] देवताओ को गुफाओ मे छिपना पड़ा। नारद ने देवगणो को इस सकट से छुटकारा पाने हेतु गणेश का एकाक्षर मत्र देकर उसके अनुष्ठान का आदेश दिया।[283]

---

272 गणेश पुराण, 1 36 5-10

273 वही, 1 36 19

274 वही, 1 36 21-28

275 वही, 1 37 8-9

276 वही, 1 37 11-12

277 वही, 1 37 40

278 वही, 1 37 45-46

279 वही 1 37 43

280 वही, 1 39 3

281 वही, 1 39 6

282 वही, 1 39 30-35

283 वही, 1 40 30

41वे अध्याय मे एक ब्राह्मण ने त्रिपुर से कैलाश मे शिवपूजित गणेश की प्रतिमा मॉगी। त्रिपुर ने उसे प्राप्त करने के लिये शिव से भयानक युद्ध किया, जिसमे शिव की पराजय हुयी।[284] तत्पश्चात् शिव ने गजानन की तपस्या कर उनका दर्शन प्राप्त किया तथा उनके 'सहस्त्रनामस्तुति' करने का उपदेश [285] भी प्राप्त किया। पुन शिव व त्रिपुर के बीच युद्ध हुआ। इस बार शिव विजयी हुए।[286] त्रिपुरासुर का वध कार्तिक मास की पूर्णमासी को हुआ। इसीलिए उस दिन स्नान, दान, जप, तप, दीपदान आदि करते है। यह 'सध्या बाहुली' कहलाती है।[287]

49वे अध्याय मे गणेश की पार्थिव पूजा का विशेष वर्णन किया गया है।[288] 50वे अध्याय मे हिमालय द्वारा पार्वती को गणेश की विभिन्न पूजा विधि, व्रत व मूर्ति पूजा के विधान का ज्ञान कराया गया है।[289] गणेश के व्रत व पूजन के परिणामस्वरूप पार्वती व शकर का पुन मिलन व विवाह हो जाता है।[290]

उपासना खण्ड मे सकटचतुर्थी के व्रत की महिमा का अभूतपूर्व वर्णन है।[291] इसी खण्ड मे शेषनाग के मन मे उत्पन्न अह भाव तथा इसके परिणाम का चित्रण है। शेषनाग का सिर खण्डो मे विभक्त हो जाता है। नारद द्वारा उपदेशित होने पर वे गणेश की उपासना करते है। गणेश उन्हे वरदान देते है। इस कथा का सविस्तार वर्णन है।[292]

उपासना खण्ड का ऐतिहासिक महत्त्व

गणेश पुराण के उपासना खण्ड के विवरण से अनेक ऐतिहासिक तथ्यो पर प्रकाश पड़ता है। सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, गुजरात अर्थात् पश्चिमोत्तर भारत के क्षेत्रो मे गणेश प्रधान देव के रूप मे स्थापित हो रहे थे। वैष्णव, शैव तथा ब्रह्मा से सम्बधित सम्प्रदायो मे जो सर्वोच्च स्वरूप विष्णु, शिव तथा ब्रह्मा को प्राप्त है, गणेश पुराण मे वही स्वरूप गणेश को प्रदान किया

---

284 गणेश पुराण, 1 43 36

285 वही, 1 45 105-108

286 वही, 1 47 119

287 वही, 1 48 122

288 वही, 1 49 124

289 वही, 1 50 128

290 वही, 1 55 145

291 वही, 1 58 154

292 वही, 1 59 91

गया है।उक्त पुराण मे सृष्टि की उत्पत्ति, विकास व प्रलय के कारण रूप मे गणेश को माना गया है।उनके निर्गुण-निराकार तथा सगुण-साकार सभी स्वरूपो का उल्लेख गणेश पुराण मे प्राप्त होता है। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य भी उजागर होता है कि कुष्ठरोग निवारण के साथ बार-बार गणेश का सम्बध इस पुराण मे दिखाया गया है। जबकि कुष्ठ रोग से मुक्ति की मान्यता विशेष रूप से सौर धर्म से जुडी हुयी है। वैदिक एव पौराणिक परम्परा मे भी सूर्य को रोगनाशक बताया गया है।[293] उग्रदेव ने कुष्ठ रोग से मुक्ति हेतु 21 दिन का सूर्यानुष्ठान किया था। मयूर ने भी (7वी शताब्दी) इसी रोग से मुक्ति हेतु सूर्यशतक की रचना की थी।[294] सभवत इसी से प्रेरणा ग्रहण करके कुष्ठरोग से गणेश की पूजा को जोडने का प्रयास किया गया हो। क्योकि साम्य पुराणानुसार सूर्य पूजा का प्रचलन शाकद्वीप के क्षेत्र मे बहुतायत से था। 'शाकद्वीप' को डॉ0 लालता प्रसाद पाण्डेय ने सौराष्ट्र से समीकृत किया है।[295] उनकी अवधारणा है कि भविष्य पुराण मे वर्णित शाकद्वीप स्कन्द पुराण मे विवेचित प्रभास से पर्याप्त साम्य रखता है।[296] पुनश्च, ब्रह्म पुराण मे विवरण आता है कि विश्वकर्मा ने शाकद्वीप मे सूर्य को खराद पर चढाया।[297] एक अन्य स्थल पर सूर्य के खरादने की क्रिया का उल्लेख मिलता है, जिसे प्रभास कहते है।[298] इस तथ्य से भी शाकद्वीप का वास्तविक समीकरण सौराष्ट्र ही प्रतीत होता है। सौराष्ट्र से प्राचीनकाल से ही सूर्य-पूजा का केन्द्र था।[299] इसी क्षेत्र मे गाणपत्य सम्प्रदाय के अनुयायियो ने गणेश के महत्व को स्थापित करने का प्रयत्न किया। अत सूर्य के सन्दर्भ मे प्रचलित इस महत्वपूर्ण तथ्य से गणेश को जोडना अनिवार्य था, ताकि उनका महत्व उस क्षेत्र विशेष मे स्थापित हो सके।

गणेश पुराण ब्राह्मणवादी पृष्ठभूमि मे रचित पुराण है। उसमे ब्राह्मणो को दिये जाने वाले दान आदि तथा उनके शाप से पैदा होने वाले भय भी चित्रित है। उनके श्वास से रोगमुक्ति तक की बात की गयी है। स्पष्ट है, सामाजिक वर्ण व्यवस्था मे ब्राह्मणो की सत्ता को सर्वोच्च

---

293 ऋग्वेद, 1.50, 12, 10, 37 4, 7
तैत्तिरीय सहिता, 4 4, 4 3, 2 3, 2 7
अथर्ववेद, 1 22
द्रष्टव्य, करमवेलकर, अथर्ववेद एव आयुर्वेद, पचविंश ब्राह्मण

294 कीथ, ए० बी०, ए हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर, पृ० 209

295 पाण्डेय, एल० पी०, सन वरशिप इन एशियन्ट इण्डिया, पृ० 184

296 स्कन्द पुराण, प्रयास खण्ड, अ० 9

297 ब्रह्म पुराण, अ० 32

298 वही, अ० 89

299 पाण्डेय, एल० पी०,वही, पृ० 185

स्थापित करने का प्रयास इसमे किया गया है।[300] ब्राह्मणो को भूमिदान [301] गोदान [302] विभिन्न वस्तुओ के दान तथा स्थान-स्थान पर विप्र-पूजा [303] का उल्लेख आता है। बार-बार ब्राह्मण के महत्व को स्थापित करने का प्रयास दिखता है।इससे दो तथ्यो का अनुमान लगाया जा सकता है। पहला यह कि उस समाज मे या तो ब्राह्मणो का अस्तित्व खतरे मे रहा होगा, जिसके कारण उन्हे बार-बार अपने पूजनीय व सर्वोच्च होने की बात स्थापित करनी पड रही थी। दूसरा यह कि ब्राह्मण किसी नवीन सामाजिक व्यवस्था मे जाकर स्वय को नये सिरे से स्थापित करने का प्रयास कर रहे होगे। इस तथ्य के विश्लेषण हेतु इतिहास के कालखण्डा मे विभाजन अनिवार्य है। 300 से 1200 ई0 तक के कालखण्ड मे उत्पादन और बचत के वितरण की तीन स्पष्ट अवस्थाये दृष्टिगोचर होती हैं। 300 से 600 ई० तक के कालखण्ड मे नगरीय बाजार-अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी और इसके स्थान पर धीरे-धीरे बडे गॉवो की निर्वाह अर्थव्यवस्था पनपती रही।[304] साथ ही छोटे-छोटे वशगत केन्द्र स्थापित होते गये जिनकी वजह से बाजारो की आवश्यकता कम होती गई। एक तरह से इसे सामतवादी व्यवस्था के विकास की आधारभूमि या उसकी आरभिक कडी माना जा सकता है। राजकोषीय और प्रशासनिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण इस काल की मुख्य विशेषता थी। गॉवो मे आकर बसे कुछ गिने-चुने ब्राह्मण परिवार राज्य की ओर से भूमिकर से मिली छूट के बलबूते पर खूब फले-फूले।[305] इसके बाद दौर आया 7वी-9वी शताब्दी का, जिसमे जागीरो की स्थापना व शासकीय अधिकार क्षेत्र वाली व्यक्तिगत माफी की जमीनो और बेशी उत्पादन करने वाली स्वायत्तशासी इकाइयो का निर्माण शुरू हुआ। ब्राह्मण परिवार माफीदारो के ही बेशी उत्पादन के प्रबधक बन गये और उसका सीधे अपने लिये विनियोजन करने लगे। इसी तरह से, यद्यपि कुशल कारीगरो के नगरो को छोडकर गॉवो मे आ बसने से ग्रामीण क्षेत्रो मे श्रमपूर्ति की मात्रा मे वृद्धि तो हुयी किन्तु 8वी-9वी शताब्दी मे इस श्रमशक्ति का बधुआ कृषि मजदूरो के रूप मे परिवर्तन होना शुरू हो गया। आर्थिक क्षेत्र मे हुये उपर्युक्त विकास के फलस्वरूप धार्मिक क्षेत्र मे भी यह परिवर्तन देखने मे आया कि पहले से प्रचलित यज्ञ और बलि आधारित उपासना पद्धति के स्थान पर अब मदिर आधारित सप्रदाय प्रधान पूजा पद्धतियॉ शुरू हुई। दान-दक्षिणा देने-लेने तथा भेट-पूजा चढ़ाने-ग्रहण करने के नये तरीके प्रारम्भ हो गये।

---

300 गणेश पुराण, 1 37 26-28

301 वही, 1 51 40-41

302 वही, 1 26 8

303 वही, 1 20 6

304 नदी, रमेन्द्र नाथ प्राचीन भारत मे धर्म के सामाजिक आधार, नई दिल्ली, 1998, पृ० XII

305 वही, पृ० XIII

परपरागत ब्राह्मणवादी व्यवस्था के भौतिक साधनो और आध्यात्मिक उन्नति के परस्पर सहयोग पर आधारित जो नया सबध विकसित हुआ, उसने ब्राह्मण, पुरोहित और यजमान को सदा के लिये एक सूत्र मे बॉध दिया। पर ज्यो-ज्यो उत्पादन के प्रकार बदलते गये और तदनुसार बेशी उत्पादन की वितरण व्यवस्था के तरीको मे परिवर्तन आता गया, त्यो-त्यो पुरोहितो और यजमानो के परस्पर सबधो मे भी बदलाव आता रहा। फिर भी, बेशी उत्पादन सामग्री पुरोहितो के ही निमित्त विनियोजित होती रही। अब यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि पुरोहितो ने दान-दक्षिणा प्राप्त करने के लिये ही नये-नये सिद्धान्त प्रतिपादित किये।[306]

भारत मे परपरा से सत्ता जिन हाथो मे सकेन्द्रित रही, उनके सबसे अधिक निकट केवल ब्राह्मण वर्ग ही रहा। कोई अन्य वर्ग इतना निकट नही रहा। ब्राह्मणो की दृष्टि मे उनके यजमानी-हित सर्वोपरि थे। इसलिये सभी सहिताओ के रचयिता और शास्त्रनिर्माता ब्राह्मणो ने सामाजिक सबधो का नियमन करते समय, सभी वर्गो के बीच परस्पर व्यवहार का निर्धारण करते समय, इस बात का ध्यान सदा रखा कि बदलती जा रही सामाजिक परिस्थितियो मे उनके वर्ग की स्थिति दृढ से दृढतर होती जाय।[307]

एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि बाजार-अर्थव्यवस्था के विघटन के कारण जब नगरो का ह्रास होने लगा तब अर्थव्यवस्था के समीकरण के साथ ही साथ सामाजिक सम्बन्धो के समीकरण मे भी परिवर्तन आया। अत जिन नगरवासी यजमान रूपी ससाधनो के बल पर अब तक नगर-आधारित यजमानी ब्राह्मण पद्धति फल-फूल रही थी, वे ही ससाधन अब समाप्त होने लगे थे। फलत उन नगरो से ब्राह्मणो का पलायन दूसरे क्षेत्रो की ओर हुआ।[308] उन नयी परिस्थितियो मे स्थापित करने के लिये ब्राह्मणो ने स्वय को महिमामडित करना प्रारभ किया। आजीविका के समृद्ध साधनो के सन्दर्भ मे दान व अनुष्ठान आदि को प्रश्रय देना भी प्रारभ किया। गणेश पुराण मे भी दान, अनुष्ठान सबधी प्रसगो की बहुतायत है [309] तथा यज्ञ कर्मो के स्थान पर तप, व्रत, उपवास व कर्मकाण्ड के अन्य पक्षो पर अधिक बल दिया गया है।[310] दान सबधी विविध नये अनुष्ठान रचे गये। वे सब तत्कालीन वर्ण प्रधान

---

306 रे, निहाररजन, द मेडिवल फैक्टर इन इडियन हिस्ट्री, अध्यक्षीय भाषण, प्रोसीडिंग्स ऑफ द इडियन हिस्ट्री काग्रेस, 29वॉं सत्र, पटियाला, 1968

307 शर्मा, आर० एस०, प्राब्लम ऑफ ट्राजिशन फ्राम एशिएन्ट टू मेडिवल इन इडियन हिस्ट्री, द हिस्टोरिकल रिव्यू, जिल्द 1, अक 1, मार्च (1974)

308 शर्मा वाई० डी०, 'एक्सप्लोरेशन ऑफ हिस्टोरिकल साइट्स', एशिएन्ट इडिया, अक 9, 1953, पृ० 11

309 गणेश पुराण, 1 26 8, 1 27 19, 1 45 19, 1 51 40

310 वही, 1 58, 1 60, 1 86

समाज मे कुछ विशिष्ट उद्देश्यो की पूर्ति के लिये थे। प्रत्येक अनुष्ठान किसी न किसी सामाजिक प्रयोजन को सिद्ध करना चाहता था। वह प्रयोजन रहा होगा उन विशिष्ट समुदायो पर कुछ 'अनिवार्य बधन थोपना' जो 'अपने रोजमर्रा के कार्य चुनने और उन्हे सम्पन्न करने के लिये स्वतत्र थे' और वह भी यह कहकर कि ये बधन सार्वजनिक हित मे लगाये जा रहे है।[311]

यहाँ 'सार्वजनिक हित' से अभिप्राय था– परपरागत सामाजिक व्यवस्था मे शक्ति और सत्ता के केन्द्र बने कुछ खास सभ्रात वर्गो का हित साधन। ये वर्ग विशेषकर उन ब्राह्मणो के थे जो उपहार-विनिमय व्यवस्था के बधन तुडाकर भाग जाने को उत्सुक नही थे या कहे कि असमर्थ थे। इसे ध्यान मे रखकर समय-समय पर अनेक अनुष्ठान रचे गये और नियम पालन के तरीके तय किये गये। ताकि ब्राह्मणो की भौतिक सुख-सुविधा मे आवश्यक 'सहयोग' देने के लिये यजमानो को बाध्य भले ही न किया जा सके, कम से कम अभिप्रेरित तो किया ही जा सके।[312] पुराणो मे दान सबधी जितने कर्मकाडो का उल्लेख है, उन सबके पीछे ब्राह्मणो का यह सचेतन सुव्यवस्थित प्रयास है कि यजमानो को पातको या पापकर्मो का भय दिखाकर, उनसे छुटकारा पाने के उपाय सुझाकर अपने लिये निर्वाह के आवश्यक साधन जुटा लिये जाये। अन्य पुराणो [313] तथा स्वय गणेश पुराण [314] मे भी दान-पुण्य सबधी कर्मकाडो का विस्तार से विवरण मिलता है। यजमानो को बार-बार आगाह किया जाता है कि वे ब्राह्मणो को दान देने मे किसी प्रकार की कृपणता न दिखाये।

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि यजमानो की ओर से ब्राह्मणो को पर्याप्त दानादि देने की बाध्यता यह सूचित करती है कि उस समय तक भारतीय उपमहाद्वीप के अधिकाश भागो मे नगरो का क्षय हो चुका था और उसके परिणामस्वरूप नगरवासी ब्राह्मण वर्गो की जीविका-पूर्ति का आधार लगभग समाप्त हो गया था।[315] इसीलिये उनमे से कई वर्ग नयी बस्तियो और नये यजमानो की खोज मे, उजड़े नगरो को छोड़कर, अन्यत्र जा बसे। वस्तुत दान, व्रत, अनुष्ठान व तीर्थयात्रा सबधी सभी कर्मकाड ब्राह्मणो के जीवन-निर्वाह की मुख्य समस्या के अग थे। इसका निरूपण गणेश पुराण मे पूरे विस्तार के साथ प्राप्त होता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य भी गणेश पुराण मे ध्यान देने योग्य है कि यज्ञ आदि बड़े और पुराने वैदिक अनुष्ठानो के स्थान पर जप, तप, आदि कर्मकाण्डो पर जोर दिया गया।

---

311 मैयर लूसी, ऐन इट्रोडक्शन टू सोशल एथ्रोपालोजी, (पेपर बैक पुनर्मुद्रण) आक्सफोर्ड, 1975, पृ० 232-38

312 नदी, रमेन्द्रनाथ, वही, पृ० 61

313 मत्स्य पुराण, अध्याय 54-57, 79, 81, 277 आदि

314 गणेश पुराण, 150 31 तथा अध्याय 26, 27, 29, 41, 50, 51 आदि

315 नदी, रमेन्द्रनाथ, वही, पृ० 78

सक्षेप मे कहा जा सकता है कि उपासना के स्वरूप व पद्धति मे परिवर्तन हुए। इसके मूल मे भी उपर्युक्त सामाजिक-आर्थिक कारण ही प्रतीत होते है।

स्त्रियो के नैतिक पतन [316] तथा उनके स्तर मे आयी गिरावट अर्थात् सामाजिक तौर पर उनकी स्थिति निम्न प्रतीत होती है। दूसरी ओर, पुत्र को बहुत महत्व दिया गया है। बलशाली व सुन्दर पुत्र की कामना से सबधित अनेक व्रतो का विधान है।[317] स्पष्ट ही यह उल्लेख तत्कालीन सामाजिक व राजनैतिक दशा का द्योतन करता है। उस समय सामतवादी व्यवस्था तथा बाहरी आक्रमणो का दौर था। ऐसे मे प्रत्यक्ष तौर पर युद्धो मे पुरुष ही भाग ले सकते थे। तब पुत्र की कामना व उसका महत्व बढना ही था। परिवर्तन के ऐसे दौर मे स्त्रियो की स्थिति का समाज मे कमजोर हो जाना स्वाभाविक है।

बहुदेववादी हिन्दू धर्म मे पुत्र-प्राप्ति से सम्बन्धित अनुष्ठान गणेश पूजा के साथ जुडे दिखायी देते है। हिन्दू समाज की सामूहिक चेतना मे पुत्र प्राप्ति हेतु या पुत्र की दीर्घायु हेतु गणेश से जुडे अनुष्ठानो का प्रचलन अविच्छिन्न रूप से आधुनिक काल तक दृष्टिगत होता है। इस परिप्रेक्ष मे गणेश पुराण का सास्कृतिक अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है।

गणेशवारा के राजा कर्दभ ने गणेश चतुर्थी का व्रत रखा। जिसके प्रभाव से वह सम्पन्न हो गया। इस प्रसग के अलावा इस व्रत की महिमा से सबधित अनेक कथाएँ है। उदाहरण के लिए, मालवा के राजा चन्द्रागद तथा उनकी पुत्री इन्दुमती का नागकन्या से मुक्त होना।[318] शूरसेन का मध्यदेश का राजा बनना।[319] गणेश के नामस्मरण से पापी मछुआरे का भ्रुशुडी महात्मा बन जाना।[320] नि सतान कृतवीर्य का गणेश के अनुष्ठान से कृतवीर्यार्जुन नामक पुत्र की प्राप्ति करना।[321] शकर द्वारा कामदेव को भस्म करना [322] तथा उनके पुनर्जन्म की कथा [323], स्कद द्वारा तारकासुर का वध [324] आदि विविध घटना-प्रसग है। इसके अतिरिक्त उपासना खण्ड मे गणेश के सकट चतुर्थी के व्रत का माहात्म्य तथा गणेश पर दूर्वाकुर चढाने के

---

316 गणेश पुराण, 1 28 36

317 वही, 1 75, 6

318 वही, 1 53, पृ० 139

319 वही, 1 56,

320 वही, 1 57,

321 वही, 1 83,

322 वही, 1 84,

323 वही, 1 88,

324 वही, 1 87,

माहात्म्य का विस्तृत वर्णन विभिन्न कथाओ के माध्यम से किया गया है।

उपासना खण्ड मे गणेश की उपासना को महत्व दिया गया है। उनके महामत्र 'ॐ' को मत्रराज की सज्ञा दी गई है। गणेश की स्तुति की विधि, तत्र-मत्र, सगुण, निर्गुण, नाद-ब्रह्म स्वरूप, गणेश के विभिन्न क्षेत्र, व्रत तथा पूजा से सबधित विविध कथाएँ वर्णित है।

क्रीडा खण्ड

गणेश पुराण का द्वितीय खण्ड, क्रीडा खण्ड है। इसमे गणेश के विभिन्न अवतारो का वर्णन है। अवतारो के रूप मे उन्होने अनेक राक्षसो का वध किया। इसी खण्ड मे उनके बालचरित तथा लीलाओ का भी वर्णन है।

अवतार-तत्व पुराणो के प्रधान विषयो मे अन्यतम है। अवतार का तत्व ईश्वर के धर्मनियामक रूप पर आधारित है। विश्व को एक सूत्र मे बॉधने वाला, नियमित रखने वाला तत्व धर्म है। इस धर्म का नियमन सर्वशक्तिमान, परमात्मा की एक विशिष्ट शक्ति का विलास [325] माना गया है।

जब धर्म का पतन होता है, अधर्म का उदय होता है, तब भगवान पृथ्वी पर अवतरित होते है। भगवान का पृथ्वी पर उतर कर आना ही 'अवतार' शब्द का अर्थ है। श्रीकृष्ण गीता मे स्वय ही कहते है कि साधुओ के परित्राण (चारो ओर से रक्षा) के निमित्त तथा पापो के नाश के लिये मै युग-युग मे अपनी माया का सहारा लेकर स्वय उत्पन्न होता हूँ।[326] भगवद्गीता का यह श्लोक अवतारवाद का मौलिक स्वरूप प्रकट करता है।

इन प्रयोजनो के अतिरिक्त भागवत मे एक अन्य प्रयोजन की भी सूचना मिलती है। वहाँ बताया गया है कि अव्यय, अप्रमेय, गुणहीन, गुणात्मक भगवान की अभिव्यक्ति (अवतार) मनुष्यो के परमकल्याणभूत मोक्ष के साधन के लिये है। भगवान के भौतिक सौन्दर्य, चारित्रिक माधुर्य एव अप्रमेय आकर्षण का बोध जीव को तभी होता है जब उनकी

---

325 द्विवेदी, डॉ० करुणा एस०, कूर्म पुराण धर्म और दर्शन, अ० 2, पृ० 62

326 यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽत्मान सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।
ये श्लोक अन्य पुराणो मे भी मिलते है, जैसे- वायु० पु० 98/69, मत्स्य पुराण 47/235, देवी भागवत 7/39, महाभारत वन पर्व 272/71-72, आश्वमेधिक पर्व 54/13, ब्रह्म पुराण 180/26-27, 181/2-8

अभिव्यक्ति अवतार के रूप मे इस विश्व मे होती है।[327] भागवत के शब्दो मे, अलौकिक रागात्मिका भक्ति का वितरण ही भगवान के प्राकट्य का उच्चतर तात्पर्य है, जिसके सामने धर्म का व्यवस्थापन एक लघुतर व्यापार है।[328] अवतार लेने पर ही भगवान के हास, विलास, अवलोकन और भाषण अत्यत रमणीय होते है तथा उनके अवयवो से अलौकिक आभा निकलती है। इनके द्वारा भक्तो का मन तथा प्राण विषयो से हट कर भगवान मे ही केन्द्रित हो जाता है और न चाहने पर भी भक्ति मुक्ति का वितरण करती है।[329]

ज्ञान का वितरण भी भगवान के अवतार का प्रयोजन है। शुद्ध-बुद्ध-मुक्त भगवान ही बद्ध जीव के बन्धन को काटने का मार्ग बताकर उसे मुक्त कर सकते है। अवतार का यह मुख्य तात्पर्य है। भौतिक क्लेश का विनाश तो अवतार का एक लघुतर अभिप्राय है।

अवतार का बीज वैदिक ग्रन्थो मे मिलता है। पुराणो का यह प्रमुख तत्व है। गणेश पुराण के क्रीडा खण्ड मे भी परमतत्व गजानन के अवतार मे उनका सगुण, साकार स्वरूप वर्णित हुआ है। इसमे गजानन के विभिन्न अवतार, अवतारवाद के विभिन्न तत्वो व प्रयोजनो को परिपूर्ण करते है। सतयुग, द्वापर युग, त्रेतायुग व कलियुग मे वे भिन्न-भिन्न स्वरूपो व नाम से प्रसिद्ध हुये।

क्रीडा खण्ड के प्रारभिक अध्याय मे रौद्रकेतु के युग्म पुत्र प्राप्ति की कथा है। जो नरातक व देवातक नाम से प्रसिद्ध हुये। इन्हे नारद ने पचाक्षरी विद्या का उपदेश दिया। जिसका कठोर तप करके उन्होने शिव को प्रसन्न कर अद्‌भुत वरदान प्राप्त कर लिया। इसके द्वारा देवातक ने स्वर्ग पर आक्रमण कर इन्द्र को परास्त किया। वहॉ अपना राज्य स्थापित किया।[330] नरातक ने मृत्युलोक पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार सर्वत्र, सब लोको मे नरातक व देवातक का अधिकार हो गया।[331]

5वे-6ठे अध्याय मे गणेश के 'विनायक' अवतार का वर्णन है। ब्रह्मा के पुत्र कश्यप व

---

327 भागवत पुराण, 10 29 14
नृणा नि श्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मन

328 भागवत पुराण, 3 25 36
तैर्दर्श नीयावयवैरूदार विलासदास सेक्षित वामसुक्तै ।
हतात्मनो हतप्राणाश्च भक्तिरनिच्छत्रो मे गतिमण्वी प्रयुऽक्ते।

329 बलदेव उपाध्याय- पुराण विमर्श, चौखम्भा प्रकाशन, पृ० 169

330 वही, 2 3

331 गणेश पुराण, 2 4

उनकी पत्नी अदिति से विनायक के महोत्कर अवतार का जन्म हुआ।[332] वे नरातक एव देवातक के वध हेतु जन्म लेते है। अदिति ने पचाक्षरी मत्र की सिद्धि द्वारा गजानन को अपने पुत्र रूप मे प्राप्त किया था।[333] इस अवतार रूप मे उन्होने मात्र नरातक व देवातक ही नही, बल्कि अनेकानेक दैत्यो का भी वध किया। पृथ्वी को आसुरी शक्तियो व प्रवृत्तियो से मुक्ति दिलायी। जैसे, 7वे से 10वे अध्याय मे विरजा नामक राक्षसी का वध, जो उन्हे निगल गयी थी।[334] उद्यत व धुधुर, जो तोते का रूप धर कर मारने आये थे, उनके सहार की,[335] चित्रगधर्व, जो मगरमच्छ रूप मे विनायक व उनकी माता को मार डालना चाहता था, उसे शापमुक्त करने [336] की कथा वर्णित है। अध्याय नौ मे कश्यप के घर गधर्व हाहा-हूहू व तुम्बूर के आने तथा उनके द्वारा पचयत्न मूर्तियो (सर्वानी, सर्व, विष्णु, विनायक व रवि) की पूजा करते समय कश्यपनदन (विनायक) का वहॉ आकर उन मूर्तियो को चुराने, फिर अपने मुख मे उन्हे ब्रह्माण्ड का दर्शन कराने की कथाये वर्णित है।[337]

पॉचवे वर्ष मे जब कश्यपनदन का चूडाकर्म व यज्ञोपवीत सस्कार हो रहा था, तभी पॉच राक्षस (पिंगाक्ष, विघात, विशाल, पिगल और चपल) ब्राह्मण वेश धर कर उनको मारने आये जिन्हे कश्यपनदन ने अभिमत्रित चावल फेक कर समाप्त कर दिया।[338] बालक के उपनयन सस्कार के समय गायत्री मत्र आदि की दीक्षा दी गयी। ब्रह्मा ने इस अवसर पर उसे सदा खिला रहने वाला कमल देकर उसका नाम 'ब्रह्मणस्पति' रखा। वृहस्पति ने उसे 'भारभूति' नाम दिया। कुबेर ने रत्नो की माला गले मे डालकर उसे 'सुरानद' नाम दिया। वरुण ने 'सर्वप्रिय' कहा। शिव ने त्रिशूल व डमरू देकर उसे 'विरूपाक्ष' नाम दिया। साथ ही चन्द्रकला प्रदान कर उसे 'भालचन्द्र' नाम दिया। परशुराम की माता ने उसे परशु प्रदान कर 'परशु' नाम दिया। सागर ने मोतियो की माला देकर उन्हे 'मालाधर' नाम दिया। शेष ने स्वय को आसन रूप मे समर्पित कर उन्हे 'फणिराज आसन' नाम दिया। अग्नि ने दाहशक्ति प्रदान करके 'धनजय' नाम दिया। वायु ने 'प्रभजन' नाम दिया।[339]

---

332 गणेश पुराण, 2 6

333 वही, 2 5 6

334 वही, 2 7

335 वही, 2 7

336 वही, 2 8

337 वही, 2 9

338 वही, 2 10

339 वही, 2 10

इस आयोजन मे सभी देवता आये, किंतु गर्व के कारण इन्द्र नही आये। उन्होने वायु व अग्नि को बालक को लेने भेजा, किंतु दोनो को ही उस बालक ने पराजित कर दिया। तभी विनायक ने उन्हे अपने विराटस्वरूप का दर्शन कराया जिससे इन्द्र भयभीत हो गये। उन्होने विनायक को प्रणाम किया,[340] उनकी स्तुति की तथा उन्हे अपना अकुश भेट किया। इन्द्र ने उन्हे कल्पवृक्ष भी प्रदान किया तथा उनका नाम 'विनायक' रखा।

12वे-13वे अध्याय मे विनायक के सात वर्ष का हो जाने पर काशिराज के साथ काशीगमन की कथा है। काशिराज अपने पुत्र के विवाह मे कश्यप को लेने आये थे। किन्तु चातुर्मास्य के कारण कश्यप ने स्वय आने से इनकार कर दिया। अपने पुत्र विनायक को उनके साथ भेजा। मार्ग मे विनायक ने नरातक के चाचा धूम्रराज व उसके पुत्रो का वध कर डाला।[341] यह सुनकर नरातक ने विनायक को समाप्त करने हेतु राक्षसो को भेजा, जो उन्हे देखकर भाग गये।

विनायक व काशिराज के आगमन पर काशी के चारो ओर उत्सव मनाया जा रहा था। वहॉ नगर मे विघट व दत्तूर नाम के दो दैत्यो को देख विनायक ने उनकी इहलीला समाप्त कर दी।[342] तत्पश्चात् पतग व विधुल नामक राक्षस आधी का वेश धर कर गजानन को उडा ले जाने आये किन्तु गजानन ने उनका भी वध कर दिया।

काशिराज द्वारा उनकी पूजा-अर्चना की गयी। इन कृत्यो के कारण गजानन हर घर मे पूजे जाने लगे।[343]

16वे-17वे अध्याय मे काशीराज का भृशुण्डी के आश्रम मे पहॅुचने व भुशुण्डी तथा विनायक के मिलन [344] की कथा वर्णित है। 18 से 39वे अध्याय तक विभिन्न दैत्यो से मुक्ति, जैसे, कूप, कन्दर [345] अन्धकाम्मासुर, तुगानाध [346], भ्रमर्याव वध [347] के कथा प्रसग है।

40वे अध्याय मे पार्वती के तेज से दसभुज गणेश के जन्म की कथा है जो वक्रतुण्ड

---

340 गणेश पुराण, 2 11

341 वही, 2 12

342 वही, 2 13

343 वही, 2 15

344 वही, 2 16 17

345 वही, 2 19

346 वही, 2 20

347 वही, 2 21

के नाम से प्रसिद्ध हुये।[348] वे काशी गये और वहॉ पर राक्षस दुरासद का वध किया।[349] शिव का काशी से प्रयाण एव वहॉ पर दिवोदास का राजा बनना, तत्पश्चात् शिव ने विभिन्न देवो को काशी भेज कर दिवोदास की कमजोरियॉ खोजने का प्रयास किया। अतत विष्णु ने बौद्ध का स्वरूप धारण कर वैदिक धर्म के विरुद्ध प्रचार किया। विनायक दुण्डिराव के रूप मे ज्योतिषी बन कर दिवोदास के राज्य मे गये। दिवोदास ने राज्य का परित्याग कर दिया तथा शिव काशी वापस आ गये।[350] इस कथा को सुनने के पश्चात् काशिराज का गजानन के लोकगमन की कथा उल्लिखित है।[351]

त्रेतायुग मे विनायक ने पार्वती के पुत्र के रूप मे जन्म लिया, जो मयूरेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुये। इनके गणेश व हेरम्ब नाम भी प्रचलित थे। सिन्धु राक्षस के वध हेतु उन्होने मयूरेश्वर के रूप मे अवतार ग्रहण किया।[352] बाल्यकाल से ही अनेक राक्षसो का वध उन्होने किया। जैसे ग्रध्रासुर [353], बालासुर[354], व्योमा सुर [355], कमठासुर [356], शलभासुर [357], शैलासुर [358], अविजय [359], सिन्धु आदि के वध की कथाये वर्णित है। मयूरेश्वर ने पार्वती को अपने मुख मे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का दर्शन कराया।[360] गरुण व पक्षियो की माता विनिता द्वारा अडा दिया जाना, विनायक के मुष्ठि प्रहार से उस अडे से मयूर का निकलना, पक्षियो को सर्पो के बधन से विनायक द्वारा मुक्त करने का प्रसग है। मयूर ने स्वय को विनायक की सेवा मे अर्पित कर दिया। वे उनके वाहन बने।,इसी से विनायक मयूरेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुये।[361] इनके द्वारा ब्रह्मा को विश्व रूप दिखलाना, इन्द्र का दभ नाश, मयूरेश का विवाह, सिन्धु के वध आदि की कथाये 104 से 126 तक के अध्याय मे वर्णित है।[362]

---

348 गणेश पुराण, 2 40
349 वही, 2 41
350 वही, 2 43-47
351 वही, 2 51-53
352 वही, 2 73-126
353 वही, 2 83
354 वही, 2 84
355 वही, 2 8,6
356 वही, 2 87
357 वही, 2 89
358 वही, 2 91
359 वही, 2 90
360 वही, 2 92
361 वही, 2 97-99
362 वही, 2 104-126

द्वापर युग मे सिन्दूर राक्षस के विनाश हेतु विनायक ने पार्वती पुत्र के रूप मे गजानन नाम से जन्म लिया। कुरूप पुत्र होने के कारण शिव ने विषादग्रस्त पार्वती को ढाढ़स बँधाया। वामदेव के शाप के कारण गधर्व क्रौच का चूहे के रूप मे जन्म लेना, गजानन द्वारा उसे अपना वाहन बनाना, सिन्दूर राक्षस का वध कर स्वय लाल हो जाने की कथा अध्याय 127 से 137 तक मे वर्णित है।[363]

इन कथाओ मे 1 विनायक पूजा मे शमी के पत्रो के महत्व। 2 मन्दार लकडी से, विनायक की मूर्ति बनाने, 3 कई स्थलो पर विनायक की मूर्ति स्थापित करने आदि के प्रसग है।

अध्याय 138 से 148 तक मे ज्ञान व कर्मयोग का उपदेश है। यह भाग 'उपनिषद् अर्थ-गर्भ'[364], 'गणेश गीता', के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसमे अपने भक्त वरेण्य को गजानन ने कर्मयोग, ज्ञानयोग व क्षेत्र विवेक आदि के सन्दर्भ मे उपदेश दिया है।[365]

149वे अध्याय मे ब्रह्मा ने इस विषय का विस्तृत वर्णन किया है कि कलियुग मे अधर्म के नाश व धर्म की स्थापना हेतु विनायक धूम्रकेतु के रूप मे अवतार ग्रहण करेगे। इस युग के अत मे वे म्लेच्छो का नाश कर धर्म को पुनर्स्थापित करेगे।[366]

क्रीडा खण्ड के अतिम अध्याय 154 मे बनारस मे विद्यमान गणेश के 56 स्वरूपो का वर्णन है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गणेश पुराण के दोनो खण्ड गणेश की स्तुति, पूजा व प्रशसा से सबधित है। गणेश के लिए इनमे सामान्य रूप से विनायक, गजानन, वरदा, विघ्ननाश आदि नामो का प्रयोग हुआ है। गणेश सभी देवो मे एकता के प्रतीक है।[367] सब उन्हे परमतत्व के रूप मे स्वीकार करते है, जो सभी विघ्नो को दूर करने वाले तथा भक्ति, ज्ञान और मुक्ति का मार्ग दिखाने वाले है। इस पुराण मे गणेश के सगुण तथा निर्गुण दोनो ही रूपो का वर्णन है।

क्रीडा खण्ड का ऐतिहासिक महत्व

क्रीडा खण्ड के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गणेश पुराण के रचना काल मे वैदिक देवताओ के साथ गणेश का सामजस्य स्थापित करने के प्रयास चल रहे थे। जैसा कि पहले

---

363 गणेश पुराण, 2 127-137

364 हाजरा, आर० सी० 'द गणेश पुराण', लेख पृ० 89

365 गणेश पुराण, 2 138-148

366 वही, 2 149

367 वही, 2 138 20

उल्लेख हो चुका है, गणेश वैदिक देव नही है। ऋग्वेद मे 'गणाधिप' शब्द गणेश के लिये नही अपितु 'ब्रह्मणस्पति' के लिये आया है। किन्तु गणेश पुराण मे 'गजनात्वा गणपति' मत्र के साथ गणेश को जोडा गया है। इसे उनका ही मत्र बताया गया है। एक उल्लेख के अनुसार कश्यप के घर मे गणेश के जन्म लेने पर उपनयन सस्कार के समय ब्रह्मा ने उन्हे 'ब्रह्मणस्पति' नाम दिया।[368] साथ ही अग्नि, वरुण, कुबेर, वृहस्पति, शिव आदि द्वारा उन्हे परमदेवता के रूप मे मान्यता दी गयी।[369] इससे दो तथ्य स्थापित होते है। पहला यह कि गणेश की प्राचीनता वेदो तक ले जाने का प्रयास किया गया है तथा गणेश को वैदिक देवो के समकक्ष स्थापित किया गया है। दूसरा यह कि अन्य सम्प्रदायो ने भी गणेश को मान्यता प्रदान की। गणेश पुराण मे उन्हे ॐकारस्वरूप, बीजरूप तथा मायातीत कहा गया है।[370] गणेश के साथ इन्द्र के विरोध का उसी प्रकार निर्वाह किया गया है [371] जैसे वैष्णव कथानको मे कृष्ण के साथ इद्र का विरोध तथा उसकी पराजय दिखाई जाती है। इन्द्र वैदिक देव है तथा कृष्ण विष्णु के अवतार एव एक नये देव है। अत इन्द्र का हर उस नयी परम्परा से विरोध होता है जो वैदिक धारा से अलग होती है। इन्द्र का कृष्ण से विरोध होता है। गणेश के साथ उसी परम्परा का निर्वहन गणेश पुराण मे भी इन्द्र के विरोध के सन्दर्भ मे दर्शाया गया है।

इस खण्ड मे गणेश के विभिन्न अवतारो की भी चर्चा है। अवतार से तात्पर्य है- महनीय शक्ति सम्पन्न ईश्वर या देव का नीचे के लोक मे आना तथा मानव या अमानव रूप धारण करना।[372] अवतार की सिद्धि दो दशाओ मे मानी जाती है। पहला रूप का परिवर्तन (स्वीय रूप का परित्याग कर नवीन रूप ग्रहण) [373], दूसरा नवीन जन्म ग्रहण कर उसी रूप मे आना जिसमे माता के गर्भ मे उचित काल तक स्थिति की बात भी सन्निविष्ट है।[374] ईश्वर के लिये ये दोनो ही अवस्थाये उपयुक्त तथा सुलभ है। कार्यवश वे बिना रूप परिवर्तन किये ही आविर्भूत होते है। यह भी अवतार के भीतर ही माना जाता है। अवतार के ये तीनो ही रूप,

---

368 गणेश पुराण, 2 9 12

369 वही, 2 9 13

370 वही, 2 31 14, 1 13 3, 1 45 8

371 वही, 2 9 42

372 उपाध्याय, बलदेव, पुराण विमर्श, वही, पृ० 163

373 गणेश पुराण, 2 40 29-44

374 वही, 2 1

प्रस्तुत पुराण मे गणेश के सन्दर्भ मे प्राप्त होते है। इसमे गणेश के चार अवतारो का उल्लेख है- श्री महोत्कट-विनायक [375],श्रीमयूरेश्वर [376], श्री गजानन [377] और श्रीधूम्रकेतु [378]। मुद्गल पुराण मे गणेश के आठ अवतारो का उल्लेख है।[379] इन अवतारो मे गणेश के बालस्वरूप की क्रीडाओ और लीलाओ का मनोहारी वर्णन किया गया है। इससे गणेश एक पारिवारिक देवता के रूप मे, पुत्र के रूप मे, भाई के रूप मे वदनीय हो रहे थे। इस प्रकार जहॉ मानव गृहसूत्र (7वी-5वी शताब्दी ई० पू०)[380] तथा याज्ञवल्क्य स्मृति [381] (1-3 शताब्दी तक) विनायक दुष्ट आत्मा के रूप मे, बाधा पैदा करने वाले चरित्र के रूप मे रखे गये, वही गणेश पुराण के काल तक आते-आते वे परम तत्व, जगत के कारण, परमब्रह्म व विघ्नहर्ता स्वरूप मे स्थापित हो जाते है। अन्य सम्प्रदायो द्वारा भी उनकी सत्ता को सर्वोच्च मान्यता दिये जाने का उल्लेख है जो उनके विकास का चरम उत्कर्ष परिलक्षित करता है। यह बदली हुई सामाजिक परिस्थितियो मे गणेश के बढते महत्व एव गाणपत्य सम्प्रदाय के बढते प्रभाव का द्योतक है। इसमे गणेश के विविध स्वरूपो एव नामो का उल्लेख हुआ है,जो प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। इसका वर्णन आगे के अध्यायो मे विस्तार से किया गया है। क्रीडा खण्ड मे गणेश के विनायक अवतार की क्रीडास्थली काशी ही रही है।[382] अत अनुमान किया जा सकता है कि पुराणकार को काशी के भूगोल का अच्छा ज्ञान रहा होगा। काशी के 56 गणेश रूपो (56 विनायको) का वर्णन इसमे मिलता है।[383] गणेश के सात आवरणो की चर्चा है जिनमे 56 विनायक विद्यमान है। दुर्गा विनायक, भीमचण्डी विनायक, देहली गणप, उदण्ड विनायक, पाशपाणि, सर्वविघ्नहरण विनायक। ये प्रतिमावर्ग के विनायक है।[384] लम्बोदर, कूटदन्त, शूलटक, कूष्माण्ड, मुडविनायक, विकटद्विज विनायक, राजपुत्र व प्रणवाक्य विनायक [385], ये द्वितीय आवरण मे अवस्थित है। वक्रतुण्ड, एकदत, त्रिमुख विनायक, पचास्य विनायक,

---

375 गणेश पुराण, 2 6

376 वही, 2 81

377 वही, 2 127

378 वही, 2 149

379 मुद्गल पुराण, 20 5-12

380 मानव गृहसूत्र, II 14

381 याज्ञवल्क्य स्मृति, 1 271-294

382 गणेश पुराण, 2 6 54

383 वही, 2 154 5-22

384 वही, 2 154 5-6

385 वही, 2 154 7-8

हेरम्ब, मोदकप्रिय [386] ये तृतीय आवरण मे है। सिहतुण्ड विनायक, पुण्यताक्ष, क्षिप्रप्रसाद, चितामणि, दतहस्त, प्रचण्ड और दण्डमुण्ड विनायक,[387] ये चतुर्थ आवरण के नाम है। स्थूलदत, कलिप्रिय, चतुर्दन्त, द्वितुण्ड, गजविनायक, काल विनायक, मार्गेशालय विनायक,[388] ये पॉचवे आवरण मे विद्यमान है। मणिकर्णिका विनायक, आशासृष्टि विनायक, यक्षारण्य, गजकर्ण, चित्रघट व सुमगलमित्र विनायक [389], ये छठे आवरण के है। मोद, प्रमोद, सुमुख, दुर्मुख, गणप एव ज्ञान विनायक [390], ये सातवे आवरण के विनायक है। अविमुक्त, मोक्षदाता, भगीरथ विनायक, हरिश्चन्द्र विनायक, कपर्दी व बिंदु विनायक के नामो का भी उल्लेख हुआ है।[391] इन विभिन्न नामो व स्वरूपो से गणेश के प्रतिमा लक्षण पर प्रकाश पडता है। तुलनात्मक प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से इसका कालनिर्णय स्वतत्र अध्ययन का विषय है। यहॉ यह कहना ही समीचीन होगा कि इस अश मे प्राचीन एव अर्वाचीन तत्व सश्लिष्ट रूप मे सामने आते है। गणेश पुराण के ऐतिहासिक भूगोल मे वाराणसी क्षेत्र के साथ उसका घनिष्ठ सम्बध इस विवरण से स्पष्ट होता है। पुराण के रचनाकाल तक काशी गाणपत्य सम्प्रदाय का एक प्रमुख केन्द्र बन चुका था।

इसी क्रीडा खण्ड मे गणेशगीता भी है [392], जो पारम्परिक गीता की परम्परा मे उसी आधार पर लिखी गयी है। भगवद्गीता मे कर्मयोग, साख्ययोग व भक्तियोग के जो वर्णन आये है वे प्राय समान भावमय है। गणेश गीता मे योग साधना, प्राणायाम, तान्त्रिक पूजा, मानस पूजा, सगुणोपासना इत्यादि को विस्तार से समझाया गया है। विभूतियोग, विश्वरूप दर्शन आदि का सक्षेप मे वर्णन किया गया है। इसमे शब्दो की भिन्नता अवश्य है, परन्तु विषय वही है। गीता मे एकान्तिक धर्म का प्रवर्तन किया गया था, जिसका दर्शन तत्व जन्म और मृत्यु, आत्मा और परमात्मा, कर्म और योग था। गीता मे सभी मतो, दृष्टियो, सिद्धातो और विचारो का समन्वय है। ब्रह्म और आत्मा का निरूपण उसमे समान आधार पर किया गया है। अनासक्त और निष्काम कर्म का प्रतिपादन भी है। भक्त को भगवान की प्राप्ति अनुपम भक्ति साधना के माध्यम से ही हो सकती है।[393] प्राण व अतस् दोनो से मिलकर की गई एकनिष्ठ

---

386 गणेश पुराण, 2 154 9-10

387 वही, 2 154 11-13

388 वही, 2 154 14-15

389 वही, 2 154 16-17

390 वही, 2 154 18-19

391 वही, 2 154 20

392 वही, 2 138-148

393 गीता, 9 22

भक्ति-साधना उन्नत मानी गयी है। यौगिक साधना हेतु आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारण्य, अष्टाग योग-प्रक्रिया अनिवार्य है।[394] मुक्ति पाना परम कर्त्तव्य है, जो सत्कर्म से ही सभव है।[395] इस प्रकार जगत् और जीवन, आत्मा और परमात्मा, मोह और माया, राग और त्याग आदि का अद्भुत समन्वय गीता मे मिलता है। परा प्रकृति, अपरा प्रकृति, द्वैत और अद्वैत, ज्ञानयोग, कर्मयोग व भक्तियोग जैसे दर्शन और ज्ञान का अद्भुत समन्वय इसमे दिखाई देता है। स्पष्ट है कि यह दर्शन-तत्व उपनिषदो से प्रभावित है। गणेश गीता मे भी इन तत्वो को इसी रूप मे ग्रहण किया गया है। यह उद्देश्य स्पष्ट परिलक्षित होता है कि उपनिषदो की धारा के साथ गाणपत्य धर्म का सम्बध निरूपित किया जाय।

गणेश का स्वरूप और उनके विभिन्न अवतारः गणेश पुराण तथा अन्य पौराणिक साहित्य के संदर्भ में

भारतीयो का उपासना विज्ञान, समाज एव उसकी परिस्थितियो के अनुसार अपना बाह्य रूप बदलता रहता है। इतिहास के विकास सिद्धान्त भी उपासना विज्ञान पर परोक्ष रूप से प्रभाव डालता है, किन्तु उसका मूलतत्व समन्वयात्मक, परिष्कृत एव परिवर्धित रूप मे सुरक्षित रहता है। एक लम्बी विकास प्रक्रिया के पश्चात् देवताओ ने उपासना विज्ञान व मूर्ति विज्ञान के क्षेत्रो मे नवीन स्वरूप ग्रहण अवश्य किया, किन्तु मूल रूप मे उनका आत्मिक तत्व सुरक्षित रहा। देवोपासना मे व्यक्ति और समाज की रुचि, सस्कार, क्षेत्र विशेष की परम्परा और समय की आवश्यकता के अनुसार ब्रह्म के किसी एक साकार देवरूप को किसी विशेष क्षेत्र मे प्रधानता मिली तो दूसरे साकार देवरूप को अन्य विशेष क्षेत्र मे। मूलरूप मे सभी देवी-देवता एक अखण्ड ब्रह्म-चेतना के प्रतीक है। इन रूपो द्वारा वस्तुत एक ही परब्रह्म की उपासना की जाती है। इसी एकत्व भावना की अभिव्यक्ति गणेश पुराण मे भी है। इसके 'गणेश गीता' अध्याय मे गणेश स्वय अपने भक्तो को निज स्वरूप का परिचय देते हुये कहते है-"श्री शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और मुझ गणेश मे अभेद बुद्धि रूप योग है, उसी को मै सम्यक् योग मानता हूँ। क्योकि मै ही नाना प्रकार के वेश धारण करके अपनी लीला से जगत की रचना, पालन और सहार करता हूँ। मै ही महाविष्णु हूँ, मै ही सदा शिव हूँ, मै ही महाशक्ति हूँ, और मै ही सूर्य हूँ। मै अकेला ही समस्त प्राणियो का स्वामी हूँ। पूर्वकाल मे पॉच रूप धारण करके मैं प्रकट हुआ था। मै जगत के कारणो का भी कारण हूँ, किन्तु लोग

---

394 गणेश पुराण, 8 6

395 वही, 7 2

अज्ञानवश मुझे इस रूप मे नही जानते है। मुझसे ही अग्नि, जल, पृथ्वी, आकाश, वायु, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, लोकपाल, दसो दिशाएँ, बसु, मनु, गौ, पशु, नदियाँ, इक्कीस वर्ग, नाग, वन, मनुष्य, पर्वत, सिहगण, राक्षसगण उत्पन्न हुये है। मै ही सबका साक्षी जगच्चक्षु हूँ। मै सम्पूर्ण कर्मो से कभी लिप्त नही होता। मै निर्विकार, अप्रमेय, अव्यक्त, विश्वव्यापी और अविनाशी हूँ। मै अव्यय एव आनदस्वरूप परब्रह्म हूँ। मेरी माया सम्पूर्ण श्रेष्ठ मानवो को भी मोह मे डाल देती है।''[396]

उन्होने स्वय को अजन्मा, अविनाशी, सर्वभूतात्मा, त्रिगुणमयीमाया आदि भी बताया है। वे स्वय को माया का आधार भी सिद्ध करते है। अवतारवाद की परिपुष्टि करते हुये इसमे कहा गया है कि धर्म का ह्रास व अधर्म की वृद्धि होने पर, साधुओ की रक्षा व दुष्टो के सहार हेतु गजानन ही अवतार धारण कर नाना प्रकार की लीलाये करते है, धर्म की प्रतिस्थापना करते है।[397]

रेखाकित करने की बात है कि गणेश पुराण मे गणेश के निर्गुण व सगुण दोनो ही स्वरूपो का वर्णन है। निर्गुण रूप मे वे सृष्टि के नियता, इन्द्रियो के अधिष्ठाता, भूतमय व भूतो को उत्पन्न करने वाले, सृष्टि के रचयिता, उसकी स्थिति व लयरूप है।[398] गणेश का स्वरूप नित्य निर्गुण होते हुये भी नित्य सगुण माना गया है। माया से परे होने पर वह निर्गुण है, जबकि माया युक्त होने पर सगुण-साकार रूप धारण कर लेते है। जब-जब आसुरी

---

396 गणेश पुराण, (गणेश गीता) 2 21-29

397 अजोद्रव्ययोऽह भूतात्मा नाडिरीश्वर एव च।
आस्थाय त्रिगुण माया भवामि बहुयोनिसु।।
अधर्मोपचयो धर्मापचयो हियदा भवेत्।
साधून् सरक्षितु दुष्टा स्ताडितु सम्भवाम्यहम् ।।
उच्छिद्याधर्म निचय धर्म सस्थापयामि च।
हन्मि दुष्टाश्च दैत्याश्च नाना लीला करो मुदा।।
गणेश गीता 3 9-11

398 नमो नमस्ते परमार्थरूप नमो नमस्ते ऽखिलकारणाय।
नमो नमस्ते ऽखिलकारकाय सर्वेन्द्रियाणामपि वासिनेऽपि।।
नमो नमो भूतमयाय तेऽस्तु नमो नमो भूतकृते सुरेश ।
नमो नम सर्वधिमो प्रबोध नमो नमो विश्वलयोद्भवाय।।
नमो नमो विश्व भृतेऽखिलेश नमो नम कारणकारणाय।
नमो नमो वेदविदामदृश्य नमो नम सर्ववर प्रदाय।।
- गणेश पुराण, 1 40-42-44

शक्तियो के प्रबल होने पर जन-जीवन कण्टकाकीर्ण हो जाता है, धर्म का पराभव व अधर्म की वृद्धि होने लगती है, तब-तब निर्गुण, निराकार स्वरूप सगुण मे अवतार ग्रहण कर सद्धर्म की स्थापना करते है। विनायक ने भी अलग-अलग युगो मे भिन्न-भिन्न अवतार ग्रहण कर समाज को सन्मार्ग व सद्धर्भ की ओर उन्मुख किया।

गणेश के जन्म के विषय मे अनेक मत-मतान्तर है। कही वे केवल पार्वती पुत्र कहे जाते है, कही उन्हे शिवपुत्र कहा गया है और किसी-किसी स्थान पर वे शिव-पार्वती दोनो के पुत्र कहे गये है। कुछ स्थलो पर उन्हे स्वय उत्पन्न (स्वयभू) भी कहा गया है।

गणेश के इन भिन्न-भिन्न रूपो का वर्णन प्रस्तुत पुराण मे है। हर रूप मे उनके नाम, कर्म, गुण व वाहन परिवर्तित होते है। जैसे, सतयुग मे वे सिंहारूढ व दसभुज है, इस युग मे 'विनायक' नाम से प्रसिद्ध हुये। त्रेतायुग मे वे मयूर पर आरूढ है। उनकी छह भुजाये है। अर्जुन वृक्ष के समान उनकी छवि है। इस युग मे 'मयूरेश्वर' नाम से ख्यात हुये है। द्वापर मे वे रक्त वर्ण व मूषकारूढ़ तथा चतुर्मुख है। इस युग मे 'गजानन' नाम से इनकी प्रसिद्धि होती है। कलियुग मे धूम्रवर्णी, अश्वारोही व द्विभुज हुये तथा 'धूम्रकेतु' नाम से विख्यात हुये। इस रूप मे ही म्लेच्छो की सेना का नाश करते है।[399]

सतयुग मे गजानन ने कश्यप व अदिति के पुत्र रूप मे जन्म लिया।[400] इस अवतार रूप मे उन्होने विरजा [401], उद्यत, धुधुर [402] का वध किया तथा शापित चित्रगधर्व [403] को शापमुक्त किया। इसके अतिरिक्त धूम्रराज [404], जघन्य, मनु, विघट, दन्तूर [405], ज्रिघ्वा [406], ज्वालामुख, व्याघ्रमुख, दारुण [407] आदि अनेक राक्षसो का वध किया।

---

399 गणेश पुराण, 2 1 17-21
युगे-युगे भिन्न नामा गणेशो भिन्न वाहन , भिन्न कर्मा, भिन्न गुणो, भिन्न दैत्यापहारक । सिंहारूढ़ो, दशभुज कृते नाम्ना तेजोरूपी महाकाय सर्वेषा वरदो वशी। त्रेतायुगे बर्हिरूढ़ षडभुजोप्यर्जुनच्छवि । मयूरेश्वर नाम्ना च विख्यातो भुवनभत्रये। द्वापरे रक्तवर्णोऽसा वाखुरूढश्चतुर्भुज गजानन इतिख्यात पूजित सुरमानवे कलौ तु धूम्रवर्णोऽसाअश्वारूढ़ो द्विहस्तवान्। धूम्रकेतुरिति ख्यातो म्लेच्छा विनाशकृत्।

400 वही 2 6 22-27

401 वही, 2 7 12-21

402 वही, 2 8 5-12

403 वही, 2 8 14-32

404 वही, 2 12

405 वही, 2 13

406 वही, 2 14

407 वही, 2 15

दुरासद के वध हेतु पार्वती के नाक व मुख से क्रोध स्वरूप उत्पन्न तेज से विनायक ने जन्म लिया। इस अवतार रूप मे उनका नाम वक्रतुण्ड पडा [408] तथा उन्हे माता ने अपना वाहन सिह प्रदान किया। इस प्रकार सिहारूढ़ होकर वे वाराणसी की ओर गये [409]।

दुरासद राक्षस से युद्ध के दौरान वक्रतुण्ड ने उसकी सेना से लडने हेतु अपने तेज से 56 मूर्तियो का निर्माण किया। इस प्रकार उनके 56 स्वरूपो का निर्माण हुआ। जिनमे कुछ चतुर्भुज, षड्भुज या दशभुज तथा सिहारूढ, मूषकारूढ थे।[410] दुरासद पर विजय प्राप्त करने हेतु उन्होने योग से विराट स्वरूप प्राप्त किया। शिव के वरदान के कारण दुरासद की मृत्यु नही हो सकती थी अत उनके विराट स्वरूप ने काशी के द्वार पर अपना एक पैर एव दुरासद के मस्तक पर दूसरा रख उसे पर्वत की भॉति स्थिर कर दिया। दुष्टो को वश मे करने हेतु वे स्वय भी काशी मे अपने विराट रूप मे अवस्थित[411] हो गये। गणेश के एक पाद स्वरूप की 'ढुण्ढिराज' नाम से प्रसिद्धि हुयी। उनके तेज से उत्पन्न अवतार को 'ढुण्ढिराज' नाम दिया गया।[412] शिव ने काशी मे वास हेतु दिवोदास (काशिराज) को वहॉ से हटाने के लिये 'ढुण्ढिराज' को ही काशी भेजा। इस प्रकार ढुण्ढि रूप धारी गजान ने दिवोदास को अपनी माया से मोहित कर शिव को काशी का वास प्रदान किया। इसी स्वरूप मे उन्होने कीर्ति के पुत्र क्षिप्रप्रसाधन को जीवित कर वरदान भी दिया।[413]

अदिति व कश्यप के पुत्र रूप मे विनायक ने काशी मे नरातक व देवातक जैसे दो महाबली दैत्यो का भी वध करके पृथ्वी को भारमुक्त किया।[414]

त्रेतायुग मे गजानन ने सिंधु नामक राक्षस के दमन हेतु शिव-पार्वती के घर मे अवतार लिया व मयूरेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुये।[415] इस युग के अवतार मे गजानन रक्तवर्णी थे।

पार्वती के पुत्र रूप मे उनका नाम गुणेश रखा गया। हिमालय ने इस बालक को 'हेरम्ब' नाम प्रदान किया। इस रूप मे गजानन ने गृद्धासुर नामक विशालकाय राक्षस का वध

---

408 गणेश पुराण, 2 40 29-44

409 वही, 2 41 9

410 वही, 2 42 11-14

411 वही, 2 42 19-31

412 वही, 2 43 5-11

413 वही, 2

414 वही, 2

415 वही, 2

किया।[416] गुणेश अवतार मे उन्होने विडाल रूप धारण करके आये दो मायावी राक्षसो [417] गृद्धासुर [418], बालासुर [419] नाना मायाओ मे निपुण व्योमासुर [420], शतमाहिष नामक राक्षसी [421], कमठासुर [422], तल्पासुर [423] नामक महाबली राक्षसो का वध तथा दुदुभी [424], अजगर [425], शमसासुर [426], मेढा नामक मायावी वेष मे सिन्धु द्वारा भेजे गये दैत्य [427], वृक्कासुर [428] के अतिरिक्त इस अवतार मे उन्होने अनेको दैत्यो का वध कर पृथ्वी को भारमुक्त किया। स्वजनो व देवो को उनका स्थान प्रदान किया। इस अवतार मे उन्हे गणेश के साथ-साथ 'मयूरेश्वर' की सज्ञा से भी जाना गया।

मयूर पक्षी ने स्वय को गुणेश की भक्ति मे समर्पित किया तथा उनका वाहन बना।[429] मयूरेश्वर के रूप मे पार्वती पुत्र षडभुज तथा अर्जुनवृक्ष के समान वर्ण वाले थे।

द्वापर युग मे शिव-पार्वती के पुत्र के रूप मे उन्होने जन्म लिया। यहॉ वे रक्तवर्णी तथा मूषक वाहन से युक्त है। तब वे गजानन नाम से प्रसिद्ध हुये। इस अवतार रूप मे उन्होने सिन्दूर दैत्य का वध किया।[430]

---

416 गणेश पुराण, 2 83-17
एव दत्ता भूषणानि नाम चक्रे शुभ गिरि।
हेरम्बपति महाविघ्नहरे भक्तामय प्रदम् ।।

417 वही, 2 82

418 वही, 2 83

419 वही, 2 84

420 वही, 2 86

421 वही, 2 87

422 वही, 2 87

423 वही, 2 88

424 वही, 2 88

425 वही, 2 89

426 वही, 2 89

427 वही, 2 90

428 वही, 2 96 58-63
तत्राययौ वृको नाम महान्दुष्टतयोऽसुर भयकराननो मन्तो ग्रसन्निव महाबली पुच्छाघातेन चउव कम्पयन्दलदवान। दुष्टवा भयकर दैत्य मुनिपुत्रा पलयिता । सआयुधानि गृहय्याशु व वृक समताऽयत् । अडकुशाघात मात्रेण पतितो भुवि शोऽसुर। वम-रक्त निज रूपमास्थित ऽचूर्णयन्द्रमाल। सहरे जीव सघातान्दशयोजनविस्तृतत ।

429 वही, 2 7

430 वही, 2 130 27-34; 2 137

कलियुग मे गणेश के अवतार के सन्दर्भ मे गणेश पुराण मे वर्णन मिलता है कि चार भुजाधारी, श्यामवर्ण व मूषक वाहन युक्त तथा धूम्रकेतु नाम से विख्यात होगे।[431]

मुद्गल पुराण मे गणेश के आठ अवतारो का वर्णन मिलता है। वे अवतार है- वक्रतुण्ड, एकदन्त, महोदर, गजानन, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज और धूम्रवर्ण।[432]

अन्य पुराणो मे भी उनके विभिन्न स्वरूपो व अवतारो का वर्णन प्राप्त होता है। स्कन्द पुराण मे पार्वती से गणेश के जन्म से सम्बधित कथा सात स्थलो से प्राप्त होती है। स्कन्द पुराण मे आयी एक कथानुसार, पार्वती ने अपने शरीर पर लेप लगाया और उस लेप को छुडाने से निकली मैल से एक आकृति बनायी जिसका मुख हाथी जैसा था। उसे उन्होने अपना पुत्र कहा।[433] उस आकृति मे प्राण सचार किया और वे ही गणेश कहलाये।

स्कन्द पुराण मे आयी एक अन्य कथानुसार, पार्वती ने शरीर के लेप से मनोरजन के लिये एक सुन्दर बालक की रचना की। लेकिन लेप की कमी के कारण उस बालक का मुख नही बना पायी। इसलिये कार्तिकेय द्वारा लाये गये एक मतवाले हाथी के सिर को काट कर लेप से निर्मित उस आकृति पर लगा दिया। तत्पश्चात् पार्वती ने उसमे प्राण सचार किया।[434]

स्कन्द पुराण मे एक स्थान पर गणेश की उत्पत्ति का दार्शनिक आधार दिया गया है। यहॉ उन्हे प्रकृति कहा गया है। जिसका जन्म नही होता। (उन्हे प्रकृति का पर्याय माना गया है।) [435]

वामन पुराण मे भी ऐसी ही कुछ कथाये मिलती है।[436] एक कथा है कि पार्वती नि सतान थी। उन्होने अपने शरीर के लेप से गजमुखधारी पुत्र को उत्पन्न किया। शिव और पार्वती के स्वेद बिन्दुओ के मिल जाने से उसमे प्राण का सचार हुआ।[437]

इसके अतिरिक्त अन्य स्थलो पर भी इनकी उत्पत्ति का उल्लेख है– शिवपुराण [438], ब्रह्माण्ड पुराण [439], पद्म पुराण [440] आदि मे भी गणेश के जन्म से सम्बन्धित लगभग इसी

---

431 गणेश पुराण, 2 1 17-21

432 मुद्गल पुराण, 20 5-12

433 स्कन्द पुराण 1 2 27, 4-5

434 वही 7 3 32

435 वही, 1 1 10, 27-33

436 वायु पुराण 28 53-58, 64-66

437 वही 28 70-71

438 शिव पुराण 2 4 13-20

439 ब्रह्माण पुराण पु० 97

440 पद्म पुराण सृष्टि खण्ड- 40 453-458

प्रकार की कथाये मिलती है।

वृहद्धर्मपुराण मे गणेश की उत्पत्ति से सम्बन्धित कथा यह है कि शिव ने पार्वती के आग्रह पर परिहास मे उनके वस्त्र से ही एक पुत्र की रचना की जो पार्वती के स्तनो के सम्पर्क मे आने पर प्राणवान हो गया।[441]

ब्रह्मवैवर्तपुराणनुसार, गणेश का जन्म कृष्ण के अवतार के रूप मे हुआ। इस पुराण मे उल्लेख है कि पार्वती ने कृष्ण को देखकर उनके अनुरूप पुत्र प्राप्ति की इच्छा व्यक्त की।[442] तब विष्णु ने ब्राह्मण के वेश मे पार्वती के शयनगृह मे वीर्यपात किया।[443] दूसरी ओर, शिव का वीर्य पार्वती के गर्भ के स्थान पर उनकी शैय्या पर गिरा।[444] इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि प्रत्येक कल्प मे श्रीकृष्ण पार्वती के पुत्र बनकर गणेश रूप मे उत्पन्न हुये।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार, गणेश कृष्ण के अवतार है। वे शिव के औरस पुत्र नही है।इस पुराण मे ही उल्लिखित है कि पार्वती के पुन्यक व्रत धारण करने के फलस्वरूप ही कृष्ण के अवतार के रूप मे गणेश उत्पन्न हुये।[445]

बाराह पुराण का कथन है कि गणेश शिव के पुत्र है, जिसमे पार्वती का कोई सहयोग नही है। यह पुराण कहता है कि रूद्र ने अपने मुख से एक पुत्र उत्पन्न किया जो देखने मे रूद्र के समान था।[446]

लिग पुराण मे गणेश की उत्पत्ति शिव व पार्वती के सयोग से ही मानी गयी है।[447]

मुद्गल पुराणनुसार गणेश के कोई माता-पिता नही है, क्योकि वे स्वय ही स्रष्टा है।[448]

इन पुराणो के अतिरिक्त महाभागवत पुराण,[449] देवी पुराण [450] आदि मे भी गणेश के जन्म की कथाये लगभग एक-सी प्राप्त होती है। केवल गणेश पुराण मे ही गणेश की उत्पत्ति

---

441 वृहद्धर्मपुराण 2 60 8-14, 21-38

442 ब्रह्मवैवर्त पुराण 3 8 8

443 वही 3 8 19

444 वही 3 8 27

445 वही पु० 6 89 98

446 वायु पुराण 23 13

447 लिग पु० 105 7-15

448 मुदगल पुराण 82 49 17-30

449 भागवत पुराण 35 5-8 (10वी से 11वी श०)

450 देवी पुराण 112-8-9 (12वी श०)

शिव व पार्वती दोनो के सयोग से मानी गयी है।[451]

भागवत पुराण मे उल्लिखित एक कथा के अनुसार, पार्वती ने अपने शरीर पर लगाये गये हरिद्रा(हल्दी) लेप के मल से गणेश्वर अर्थात् गणेश की सर्जना की और उन्हे अपना द्वारपाल नियुक्त किया। जिस समय पार्वती स्नान कर रही थी उस समय शिव ने पार्वती के कक्ष मे प्रवेश करना चाहा। गणेश्वर द्वारा रोके जाने पर शिव और गणेश्वर मे भयानक युद्ध हुआ। शिव ने अपने त्रिशूल से उनका मस्तक काट दिया। पार्वती के आग्रह पर शिव ने फिर से उनके मस्तक को हाथी के सिर से युक्त किया।[452] चतुर्भुज स्वरूप [453] मे उन्होने एक विशाल सर्प को अपनी कमर के चारो ओर लपेट रखा है। इसके अतिरिक्त मुकुट, कुडल, अगद, कटिसूत्र, किकिणी, मोतियो की या लाल पुष्पो की माला धारण की है। उनके हाथो मे सदैव एक जैसी वस्तुओ का वर्णन नही है अपितु अलग-अलग वस्तुये वर्णित है। कभी खड्ग, क्षेत्रा, धनुष और शक्ति, कभी परशु, कमल, माला और मोदक, कही खड्ग के स्थान पर परशु भी मिलता है। कुछ स्थलो पर वे त्रिनेत्रधारी है [454] व चन्द्रकला [455] को माथे पर सजाये हुये वर्णित किये गये है। कुछ स्थलो पर सिद्धि-बुद्धि समेत वर्णन प्राप्त होता है।[456] वे हृदय पर चितामणि की मणि माला धारण किये हुये है।[457] अधिकाशत उन्होने लाल वस्त्र भी धारण किया है।

---

451 गणेश पुराण, 1 1 5-5
वही 2 2 129-30

452 भागवत पुराण 35वाँ अध्याय

453 गणेश पुराण, 1 12 33-38
1 15 4-6
1 20 31-34
1 31 32-34
1 49 21-23
1 66 17-19
1 87 31-35
1 82 26-29
1 91 8-9
2 130 1-5
2 130 21-22

454 वही, 1 21 11, 23 11

455 वही, 1 15 5, 87 33, 2 130 5

456 वही, 2 130 22

457 वही, 1 91 29

मात्र एक स्थल पर उन्हे शशिवर्ण कहा गया है [458] एक अन्य स्थल पर उन्हे पीताम्बरधारी कहा गया है।[459] अन्य प्रचलित स्वरूपो मे गणेश का दशभुज स्वरूप है।[460] जिसमे उन्होने भिन्न-भिन्न आयुध धारण किया है। उनके शीश पर चन्द्रकला अकित है, गले मे माला मोतियो या कमल की धारण की है। उनका श्वेतवर्णी स्वरूप है। वे सिद्धि-बुद्धि के साथ सिहारूढ है। इस स्वरूप के अतर्गत कभी-कभी गणेश मुण्डो की माला भी धारण करते है। पचमुखी गणेश का उल्लेख भी मिलता है।[461] उनके वक्षस्थल पर चितामणि की माला भी विद्यमान रहती है।

इन साक्ष्यो से स्पष्ट है कि गणेश विभिन्न रूपो मे वर्णित है। मुद्गल पुराण मे इनके 32 रूपो का [462], शारदा तिलक मे 51 रूपो [463] का व गणेश पुराण मे 56 स्वरूपो का वर्णन मिलता है।[464]

यह कहा जा सकता है कि गणेश के जन्म के आख्यानो मे जो भिन्नताये अन्य साहित्य व गणेश पुराण मे मिलती हैं, उससे यह स्पष्ट होता है कि एक देवता के रूप मे गणेश के व्यक्तित्व के विकास मे अनेक धाराये, मिथक, कल्पनाये, विश्वास जिनका स्वरूप क्षेत्रीय तथा जनजातीय दोनो ही रहा होगा, ने अपना योगदान दिया।[465] गणेश पुराण मे अवतारवाद की परिकल्पना की गयी है तथा उनके चार अवतार, विनायक, मयूरेश्वर, गजानन व धूम्रकेतु, माने गये है। यह तत्व भी गणेश के सन्दर्भ मे अन्य पुराणो मे नही प्राप्त होता। यह भिन्नता गणेश पुराण को अन्य पुराणो से अलग करती है तथा उसे साम्प्रदायिक स्वरूप प्रदान करती है। गणेश के अवतारो के वर्णन के सन्दर्भ मे यह बात स्पष्ट कही जा सकती है कि यहॉ वैष्णव अवतारवाद के सभी तत्व ग्रहण किये गये है। हिन्दू धर्म मे ज्ञान की अभिव्यक्ति के अतर्गत अवतारवाद का महत्वपूर्ण स्थान है। इसका प्रधान प्रयोजन धर्म स्थापन और अधर्म-विनाशन था। अवतार स्वय विष्णु ही है जिनके अनेक अवतारो की कथा वैदिकयुगीन ग्रन्थो मे विवृत है। उनके वराह, मत्स्य, कूर्म, नरसिह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि ये दस अवतार कहे जाते है। शतपथ ब्राह्मण मे जलप्लावन की कथा के साथ

---

458 गणेश पुराण, 2 130 22

459 वही, 1 20 31

460 वही, 1 37 10-13, 44 26-28, 88 32-35, 90 14-15, 2 6 22-25, 2 17 25-28

462 वही, 1 44 25-28

462 हाजरा आर० सी०, गणेश पुराण, जर्नल ऑफ गगानाथ झा रिसर्च इस्टीट्यूट, पृ० 96

463 वही, पृ० 96

464 गणेश पुराण, 2 42 11, 33 6, 2 43 10, 2 154 25

465 थापन, अनिता रैना, अण्डरस्टैण्डिग गणपति, नयी दिल्ली, 1997, अध्याय- 3, 6

मत्स्यावतार का उल्लेख है।[466] प्रजापति द्वारा जल के ऊपर कूर्म रूप मे अवतार लेना [467] ब्राह्मण ग्रथो मे उल्लिखित है। विष्णु के वराह रूप का सकेत ऋग्वेद मे मिलता है।[468] तैत्तिरीय सहिता और शतपथ ब्राह्मण मे भी वराह अवतार का वर्णन किया गया है।[469] वामन की कथा ऋग्वेद मे वर्णित है [470] जो तैत्तिरीय सहिता मे अत्यत विस्तार से विवृत की गयी है।[471] रामायण व महाभारत मे क्रमश राम और कृष्ण के अवतारो की कथाएँ है। 'रामायण' मे वर्णित है कि जब देवताओ ने अपना कष्ट भगवान विष्णु से निवेदित किया तब वे शख, चक्र, गदा धारण किये, पीतवस्त्र पहने, गरुड़ पर आसीन होकर प्रकट हुए।[472] तदनतर देवताओ के कष्ट दूर करने के लिए विष्णु ने राम के रूप मे अवतार लिया। ऐसा ही उल्लेख गणेश पुराण मे गणेश के लिये प्राप्त होता है।[473] जब सिधु राक्षस ने सभी को त्रस्त किया तब सभी देव गणेश का तप करने लगे। तब उन्होने अलौकिक स्वरूप मे ऋषि, मुनियो व देवताओ को दर्शन देकर राक्षसो व अधर्म के विनाश हेतु गिरिजा के घर मे अवतार लेने का आश्वासन दिया तथा मयूरेश्वर के रूप मे अवतार लिया। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, कि श्रीकृष्ण ने स्वय अपने अवतार की बात 'श्रीमद्भागवत' मे कही है।[474] इसी प्रकार का उल्लेख गणेश गीता मे गणेश के लिये किया गया है। अपने शिष्य वरेण्य से वे कहते है , जब अधर्म की वृद्धि होती है और धर्म का ह्रास होने लगता है तब साधुओ की रक्षा तथा दुष्टो का वध करने हेतु मै अवतार लेता हूँ। अधर्म का नाश करके धर्म की स्थापना करता हूँ। दुष्टो-दैत्यो को मारता हूँ और सानद नाना प्रकार की लीलाये करता हूँ।[475] कालान्तर मे अवतारवाद और उसका ज्ञान-तत्व पौराणिक धर्म की प्रधान पीठिका बन गया। वस्तुत अवतार की पृष्ठभूमि से देव-तत्व का प्रतिष्ठापन और दर्शन-तत्व का प्रतिपादन हुआ। ससार मे जब नैतिक और धार्मिक मूल्यो का अनैतिकता और अधार्मिकता के कारण विनाश होने लगता है, प्रकाश के स्थान पर

---

466 शतपथ ब्राह्मण, 2 8 1 1

467 वही, 7 5 1 5

468 ऋग्वेद, 8 7 10

469 तैत्तिरीय सहिता, 7 1 5 1, शतपथ ब्राह्मण, 14 1 2 11

470 ऋग्वेद, 1 154 1

471 तैत्तिरीय सहिता, 2 1 3 1

472 रामायण, बालकाण्ड, 15 15 16

473 गणेश पुराण, 2 78 28-41

474 गीता, 4 7 8, 2 4 6

475 गणेश पुराण, गणेश गीता, 43 9 11

अधकार का वातावरण विस्तार लेता है, ऋत्त के स्थान पर अनृत और धर्म के स्थान पर अधर्म छा जाता है, तब सत्पुरुषो के रक्षार्थ, भक्तो की आर्त्ति के विनाशार्थ और धर्म के स्थापनार्थ करुणाकर भगवान पृथ्वी पर अवतीर्ण होते है। वे अधार्मिक और अनैतिक तत्वो का समूल नाश करते है।[476] इस प्रकार जगत मे पुन धर्म, सदाचार और नैतिकता की स्थापना होती है तथा मानवता का भगवतत्व मे उत्तरण (उर्ध्वगमन) होता है। विष्णु पुराण मे विष्णु के लिये वर्णित है कि वह नाना रूपधारी स्थूल और सूक्ष्म, अव्यक्त और व्यक्त तथा मुक्ति के हेतु है।[477] गणेश पुराण मे भी गणेश को अव्यय, अविनाशी, आगम, सच्चिदानद स्वरूप, निर्गुण माना गया है तथा यह भी कहा गया है कि स्वजनो-उपासको पर कृपा करने के लिये वे साकार हो जाते है।[478] एक अन्य स्थल पर गणेश के चार अवतारो मे से अतिम अवतार धूम्रकेतु माना गया है। कलियुग का उल्लेख किया गया है कि इस युग मे सभी वर्ण अपने धर्म व कर्म से च्युत हो जायेगे। ब्राह्मण वेदरहित व स्नान, सध्या से रहित होगे। शास्त्र सम्मत विधि का लोप हो जायेगा। सज्जनो का उच्छेद होगा तथा दुष्टो का वैभव बढेगा।[479] ऐसे मे गजानन फिर से अवतार लेगे। उस समय वे शूर्पकर्ण, धूम्रवर्ण, नीले रग के अश्व पर सवार, हाथ मे खड्ग लिये अपनी इच्छानुसार सेना बनायेगे, तथा अपने तेज व सेना से म्लेच्छो की सेना का वध करेगे। इस अवतार मे वह धूम्रकेतु नाम से जाने जायेगे।[480] कृतयुग को पुनर्स्थापित करेगे।[481]

कल्कि अवतार मे ऐसी ही परिस्थितियो का वर्णन है। मत्स्य पुराण [482] मे बहुत ही रोचक वर्णन मिलता है कि कलियुग मे कल्कि अधार्मिक जनो का अपने नाना तीव्र आयुधो से सहार करेगे तथा सबका विध्वसन कर नये सुखद युग कृतयुग की स्थापना करेगे।[483] कल्कि का स्वरूप भी गणेश के धूम्रकेतु अवतार के सदृश्य ही है–अश्वरोही, धूम्रवर्ण, द्विभुजी, हाथ मे खड्ग है तथा इन्होने म्लेच्छो के वध हेतु अवतार ग्रहण किया है।[484]

---

476 मत्स्य पुराण, 43 12, 'कर्तु धर्मस्य सस्थानम्सुराणा प्रशासनम्'।

477 विष्णु पुराण, 2 2 3

478 गणेश पुराण, 1 9 31-32, 1 1 13, 1 10 27

479 वही, 2 149 15-29

480 वही, 2 149 36-39

481 वही, 2 149 40

482 मत्स्य पुराण, 47 245, 47 246

483 भागवत पुराण, 2 7 38

484 इन्दुमती मिश्रा - वही, पृ० 145

स्पष्ट है कि गाणपत्य धर्म पर वैष्णव अवतारवाद के सभी तत्वो का प्रभाव पडा है। यह कहा जा सकता है कि गणेश से सम्बधित धर्म व दर्शन तत्कालीन प्रचलित अन्य सम्प्रदायो के सिद्धातो से बहुत प्रभावित था। विष्णु, शिव आदि सम्प्रदायो द्वारा उनके इष्ट देवो पर आरोपित कर उन्हे उन देवो से भी उच्च स्थापित किया गया। इस प्रकार एक नये व स्वतत्र सम्प्रदाय के रूप मे गाणपत्य सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा कर गणेश पुराण और मुद्गल पुराण ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

❑❑

तृतीय अध्याय

गणेश पुराण में सामाजिक एवं आर्थिक बोध

सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की दिशा ▫ गणेश पुराण मे वर्ण व्यवस्था ▫ आश्रम व्यवस्था ▫ सस्कार ▫ स्त्री-दशा ▫ खान-पान ▫ वस्त्राभूषण ▫ आमोद-प्रमोद और मनोरजन के साधन ▫ सामाजिक एव सास्कृतिक चेतना के मूलभूत तत्व ▫ राजनीतिक स्थिति ▫ गणेश पुराण और तत्कालीन अर्थ-व्यवस्था

तृतीय अध्याय

गणेश पुराण में सामाजिक एवं आर्थिक बोध

सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की दिशा

भारतीय इतिहास मे 8वी से 12वी शताब्दी तक का काल सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनो की दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण माना जाता है। इस काल के सामाजिक परिवर्तनो के पीछे कुछ आर्थिक परिवर्तनो का भी योगदान रहा है। इस परिवर्तन ने प्राचीन सामाजिक व्यवस्था के प्रति लोगो का दृष्टिकोण बदल दिया। गणेश पुराण का काल हाजरा व अन्य विद्वानो ने कुछ मतभेद के साथ 1100-1400 ई० के मध्य का स्वीकार किया है। पूर्व मध्यकालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एव धार्मिक तत्वो का इस ग्रथ मे निदर्शन होना स्वाभाविक है। यह परिवर्तनो तथा उनसे उत्पन्न परिणामो का काल था। वे कारण जिनसे समाज व्यवस्था, अर्थव्यवस्था, राजनीति व धर्म की व्यवस्था मे परिवर्तन की आधी आयी, उन्हे जानने के लिये उस काल की चित्तवृत्तियो पर विचार करना होगा।

भारत के इतिहास मे हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद का और राजपूत वशो के शासन तक (650-1200 ई०) का काल सामान्य तौर पर पूर्व मध्ययुग कहा जाता है। इसके प्रथम चरण (650-1000 ई०) को आर्थिक दृष्टि से पतन का काल माना गया है। इस काल मे व्यापार तथा वाणिज्य का ह्रास हुआ। रोम साम्राज्य के पतन हो जाने से पश्चिमी देशो के साथ भारत का व्यापार बद हो गया।[1] इस्लाम के उदय के कारण भारत का स्थल मार्ग से होने वाला व्यापार भी प्रभावित हुआ। फलत नगर तथा नगर जीवन मे गतिरोध आया।[2] इस काल मे स्वर्ण मुद्राओ का अभाव इसी कारण से दिखता है। चादी एव ताबे की मुद्राये भी बहुत कम ढलवायी गयी।[3] नगरो के पतन के कारण व्यापारी गॉवो की ओर उन्मुख हुए। देश मे अनेक आर्थिक तथा प्रशासनिक इकाइयॉ सगठित हो गयी, जो अपने आप मे पूर्णतया स्वतत्र थी। व्यापार-वाणिज्य के पतन के कारण व्यापारी तथा कारीगर एक ही स्थान पर रहने के लिये विवश

---

1 गोपाल, लल्लन जी, इकॉनामिक लाइफ ऑफ नार्दन इण्डिया, वाराणसी, 1965, पृ० 115

2 नदी, रमेन्द्रनाथ, प्राचीन भारत मे धर्म के सामाजिक आधार, नई दिल्ली, 1998, पृ० 135

3 शर्मा, आर० एस०, भारतीय सामतवाद, पृ० 39

हुए। उनका एक स्थान से दूसरे स्थान पर आना-जाना बन्द हो गया। इस काल की अर्थव्यवस्था अवरुद्ध हो गयी और एक ऐसे समाज का उदय हुआ जिसमे क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से अधिकाधिक आत्मनिर्भर होते गये।[4] उन्हे अपनी जरूरत की वस्तुये स्वय बनानी पडती थी। सामाजिक गतिशीलता के अभाव के फलस्वरूप एक सुदृढ स्थानीयता की भावना का विकास हुआ।[5]

पूर्व मध्यकाल के द्वितीय चरण (1000-1200 ई0) से व्यापार-वाणिज्य की स्थिति मे सुधार के लक्षण दिखने लगते है। दसवी शताब्दी के बाद भारत का व्यापार पश्चिमी देशो के साथ पुन बढ़ा, जिससे देश की आर्थिक प्रगति को प्रोत्साहन मिला। सिक्को का प्रचलन फिर से बढ़ा। व्यापार-वाणिज्य की प्रगति ने समाज को आर्थिक समृद्धि की ओर अग्रसर किया।[6]

इन परिस्थितियो ने सामाजिक जीवन को भी प्रभावित किया। इस काल के समाज मे एक विशिष्ट वर्ग का उदय हुआ, जो 'सामत' कहलाया। समाज का यह शक्तिशाली वर्ग था। यद्यपि भारत मे सामतवाद का अकुरण शक-कुषाण काल से ही दिखाई देने लगता है, तथापि इसका पूर्ण विकास पूर्व मध्यकाल मे हुआ। इस काल की राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियो ने सामतवाद के विकास के लिये उपयुक्त आधार प्रदान किया।

अरबो और तुर्को के आक्रमण, शक्तिशाली राजवशो के पराभव, छोटे-छोटे राज्यो के उदय ने राजनीतिक अव्यवस्था को जन्म दिया। फलत व्यापार-वाणिज्य मे कमी आयी और अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से भूमि और कृषि पर निर्भर हो गयी। भूस्वामी आर्थिक स्रोतो के केन्द्र बने। भूसम्पन्न कुलीन वर्ग का आविर्भाव हुआ। इन सम्पन्न भूस्वामियो की ओर बहुसख्यक शूद्र व श्रमिक अपनी जीविका के लिये उन्मुख हुये। दूसरी ओर, इन भूस्वामियो को भी बड़ी सख्या मे श्रमिको की आवश्यकता थी। कालातर मे जब व्यापार व वाणिज्य विकसित हुये तो इस वर्ग ने उसके अनुकूल स्वय को ढाल लिया।[7] आर० एस० शर्मा की मान्यता है कि भारत मे सामतवाद का उदय राजाओ द्वारा ब्राह्मणो तथा प्रशासनिक और सैनिक अधिकारियो को भूमि तथा ग्राम दान मे दिये जाने के कारण हुआ। पहले ये अनुदान केवल ब्राह्मणो को ही धार्मिक कार्यो के लिये दिये गये, लेकिन बाद मे प्रशासनिक तथा सैनिक अधिकारियो को भी उनकी सेवाओ के बदले मे यह दिया जाने लगा।[8] भूमि के साथ कृषको तथा बॅटाईदारो को भी

---

4 ग्रोथ ऑफ रूरल इकॉनामी इन अर्ली फ्यूडल इडिया, अध्यक्षीय भाषण, भारतीय इतिहास काग्रेस, पैंतालीसवॉ अधिवेशन, अन्नामलाई विश्वविद्यालय, 1984

5 वही

6 शर्मा, आर० एस०, भारतीय सामतवाद, पृ० 123

7 यादव बी० एन० एस०, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इडिया इन ट्वेल्थ सेचुरी, पृ० 140

8 शर्मा, आर० एस०, वही, पृ० 179

हस्तान्तरित कर दिया जाता था। उन्हे भूमि छोडकर अन्यत्र जाने की अनुमति नही थी।[9] इस प्रकार समाज मे ऐसे लोगो की सख्या बढती गयी जिन्हे भूमि से दूसरे के श्रम पर पर्याप्त आय प्राप्त होने लगी। सामत अपने अधीन कई छोटे सामत रखने लगे। वे अपने अधिकार क्षेत्रो मे राजाओ जैसे विशेषाधिकार तथा सुविधाओ का उपभोग करने लगे। जिन लोगो को भूमि अनुदान मे मिली उससे सम्बन्धित समस्त अधिकार भी उन्हे प्राप्त हो गये। परिणाम यह हुआ कि सामतो के छोटे-छोटे राज्य स्थापित होते गये जो अपनी शक्ति और प्रभाव बढाने के लिये परस्पर सघर्ष मे उलझते रहे।[10] व्यापार-वाणिज्य का ह्रास, आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था, प्रबल स्थानीयता तथा अवरुद्ध सामाजिक गतिशीलता के तत्व समाज एव अर्थव्यवस्था मे पैदा हुये।[11]

इन परिस्थितियो ने परम्परागत चातुर्वर्ण व्यवस्था को भी प्रभावित किया। कोल्डक का विचार है कि सामतवाद के विकास से जाति व्यवस्था के बधन शिथिल पड़ गये तथा समाज के उच्च तथा निम्न वर्गो का अन्तर क्रमश समाप्त हो गया। क्योकि सामत किसी भी जाति के हो सकते थे।[12] यह मत आशिक रूप से ही सत्य है। वस्तुत सामतवाद का भारतीय जातिवाद पर प्रभाव इतना सहज नही था जितना कॉलब्रुक ने माना है। यहॉ सामतवाद का विकास चातुर्वर्ण की अवस्थित स्थिति से ही हुआ। इस काल मे सामाजिक स्तरीकरण की दो प्रवृत्तियॉ साथ-साथ चलती हुई दिखती है।[13] एक ओर समाज के उच्च तथा कुलीन वर्ग द्वारा वर्ण नियमो को कठोरतापूर्वक लागू करने का प्रयास किया गया, वही दूसरी ओर, इस युग के व्यवस्थाकारो ने विभिन्न जातियो एव वर्गो के मिश्रण से बने हुये शासक एव सामत वर्ग को वर्णव्यवस्था मे समाहित कर आदर्श तथा यथार्थ के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास भी किया।

सामतवादी प्रवृत्तियो के विकास के साथ-साथ भूसम्पत्ति, सामरिक गुण, राज्याधिकार आदि सामाजिक स्थिति एव प्रतिष्ठा के प्रमुख आधार बन गये। ब्राह्मण वर्ण भी इनकी ओर आकर्षित हुआ। समाज के प्रथम दो वर्ण (ब्राह्मण एव क्षत्रिय) एक दूसरे के निकट आ गये। अतिम दो वर्णो (वैश्य और शूद्र) मे भी सन्निकटता आयी। इस प्रकार पूर्व-मध्यकालीन समाज दो भागो मे विभाजित हो गया। प्रथम भाग मे ब्राह्मण एव क्षत्रिय तथा द्वितीय मे वैश्य एव शूद्र

---

9 कीथ, हॉपकिंस, ककरर्स एण्ड स्लेव्ज, कैम्ब्रिज, 1978, पृ० 99-100

10 गोपाल, लल्लन जी, इकॉनामिक लाइफ ऑफ नार्दन इडिया, वाराणसी, 1965, पृ० 73

11 शर्मा, आर० एस०, भारतीय सामतवाद, पृ० 39

12 कॉलब्रुक, एच० टी०, मिसलेनियस एसेज, लदन, 1973, पृ० 52

13 यादव, बी० एन० एस०, वही, पृ० 108

समाहित हो गये। दोनो भागो का अतर बढ गया। समाज का द्विभागीकरण इस काल मे पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सुस्पष्ट हो गया।[14]

सामंतो के रहन-सहन का समाज के कुलीन वर्ग पर प्रभाव पडा। सामंत वैभव एव विलास का जीवन व्यतीत करते थे। कुलीन वर्ग ने इनका अनुकरण किया। परिणामस्वरूप श्रम को घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। सामंतो की तरह ही ब्राह्मण भूस्वामी भी बहुसख्यक दास दासियो को अपनी सेवा मे रखने लगे। कुलीन वर्ग दूसरे के श्रम पर निर्भर हो गया। इस प्रक्रिया और परिणाम का स्पष्ट निरूपण गणेश पुराण मे मिलता है। इसमे लोगो को भूमिदान, गोदान आदि के लिये बार-बार प्रोत्साहित किया गया है।[15] ऐसा भी विवरण प्राप्त होता है कि गॉवो के साथ अनेक दास-दासियो का दान भी राजा ने किया।[16]

उस काल की एक अन्य महत्वपूर्ण विशिष्टता थी वर्ण-व्यवस्था की कठोरता तथा नवीन वर्गो का उदय। आठवी शताब्दी से समाज पर इस्लाम धर्म का प्रभाव परिलक्षित होने लगा था। इसके सामाजिक समानता के सिद्धान्त ने परम्परागत चातुर्वर्ण व्यवस्था को गम्भीर चुनौती दी, जिसके परिणामस्वरूप हिन्दू समाज मे रूढ़िवादिता बढ़ी। समाज में शुद्धता और सुरक्षा बनाये रखने के उद्देश्य से विवाह, खान-पान तथा स्पृश्यता के नियम अत्यन्त कड़े कर दिये गये। किंतु इस समय भी जाति प्रथा की रूढ़ियो को मान्यता देने से इनकार करने वाले कुछ लोग समाज मे विद्यमान थे और वे थे- जैन आचार्य, शाक्त-तान्त्रिक सम्प्रदाय तथा चार्वाक।[17]

बारहवी शताब्दी तक आते-आते समाज मे जाति प्रथा के विरोध की भावना प्रबल हुई। अब तक निम्न वर्गो की आर्थिक स्थिति मे भी सुधार होना शुरू हो चुका था। कृषि, उद्योग-धधो, व्यापार तथा वाणिज्य आदि की उन्नति हुई। जिसके फलस्वरूप निम्न वर्ग के लोग सामाजिक दृष्टि से दलित होने के बावजूद आर्थिक दृष्टि से समृद्ध हो गये। उन्होने जाति प्रथा के कडे नियमो एव प्रतिबधो को मानने से इनकार कर दिया। वे पौराणिक हिन्दू धर्म त्याग कर नास्तिक धर्मो के अनुयायी होने लगे।[18] इससे समाज के उच्च वर्णो को काफी निराशा हुई।

---

14 यादव, बी० एन० एस०, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दर्न इंडिया इन ट्वेल्थ सेचुरी, पृ० 17475

15 गणेश पुराण, 1 26 8, 1 26 22, 1 26 10

16 वही, 1 41 25

ब्रम्होवाच। इत्युक्त्वा पूजयामास त कलाधर मादराह ददौ तस्मैदशग्रामान् गोवस्त्र भूषणानि च।

17 दत्ता, बी० एन०, स्टडीज इन इडियन सोशल पॉलिटी, कलकत्ता 1944, पृ० 135

18 यादव, बी० एन० एस०,सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया इन ट्वेल्थ सेन्चुरी, पृ० 89

सामाजिक परिवेश मे हुये परिवर्तन के कारण पूर्व मध्ययुग मे परम्परागत वर्णो के कर्तव्यो को भी नये सिरे से निर्धारित किया गया। पहली बार 'पराशर स्मृति' (600-902 ई0) मे कृषि को ब्राह्मण वर्ण की वृत्ति बताया गया है।[19] जबकि शास्त्रकारो ने अभी तक मात्र आपत्तिग्रस्त ब्राह्मणो के लिये कृषि का विधान किया था। पूर्व मध्यकाल मे अधिकाश ब्राह्मणो ने कृषि करना या कराना प्रारभ कर दिया था। भूमिदानग्राही कुलीन ब्राह्मण शूद्रो से कृषि कराते थे। क्षत्रिय वर्ण इस समय दो भागो मे बॅट गया। पहला– शासक व जमीदार वर्ग, दूसरा- सामान्य क्षत्रिय। इस काल मे वैश्य और शूद्र दोनो के कार्यो मे समानता मिलती है। यह माना जा सकता है कि उस समय 'कृषि' को सभी वर्णो का सामान्य धर्म निर्धारित किया गया। यह समाज के बढ़ते हुये कृषिमूलक स्वरूप का सूचक है, जो सामतवाद के प्रतिष्ठित होने के कारण पूर्व मध्यकाल मे अत्यधिक स्पष्ट हो गया था।[20]

पूर्वमध्यकालीन समाज मे एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि वैश्य वर्ण की सामाजिक स्थिति पतनोन्मुख हुई। उन्हे शूद्रो के साथ समेट लिया गया। वैश्यो की स्थिति मे गिरावट का कारण पूर्व मध्यकाल के प्रथम चरण मे व्यापार-वाणिज्य का ह्रास है। इस काल मे आतरिक तथा बाह्य दोनो प्रकार के व्यापार का ह्रास हुआ। अत वैश्यो का आर्थिक पतन हुआ। दूसरी ओर शूद्रो का सबध कृषि के साथ हो जाने से उनकी आर्थिक दशा पहले से अधिक अच्छी हो गयी। गणेश पुराण मे इस तथ्य से सदर्भित अनेक उदाहरण प्राप्त होते है। यह उस समय की सामाजिक सरचना की गतिशीलता को स्पष्टतया परिलक्षित करती है।[21] एक स्थल पर वर्णित है कि गणेश पुराण को सुनने वाला शूद्र क्रमश उच्च वर्ण को प्राप्त करता है अर्थात् क्रमश वैश्य, क्षत्रिय व द्विज बन जाता है।[22] शूद्रो को तीर्थयात्रा करने व पवित्र सरोवर मे स्नान करने का भी अधिकार प्राप्त हो चुका था।[23]

---

19 बोस, ए० एन०, सोशल एड रूरल इकॉनामी आफ नार्दन इडिया, कलकत्ता, 1942, पृ० 32

20 शर्मा, आर० एस०, पूर्व मध्यकालीन भारत मे सामाजिक परिवर्तन (500-1200 ई०), दिल्ली, पुनर्मुद्रित 1995, पृ० 11

21 गणेश पुराण, 2 155 18, 2 147 9

22 वही, 2 155 17
शुद्रोऽपि मध्ये सस्थाप्य ब्राह्मणान्शृणुयादिदम् ।
क्रमेण लभते वर्णान्वैश्यक्षत्रिद्विजाह्याम् ।।

23 वही, 1 29 12-13
चितामणिरितिख्याता सर्वेषा सर्वकामदा ।
तस्याग्रतो महाकुड गणेश पदपूर्वकम् ।।
कश्चिच्छूद्रो महाकुष्टी जराजर्जरितो नृप ।
तीर्थयात्रा प्रसगेन कदम्बपुरमागत ।।

उस काल की एक अन्य अभिन्न विशिष्टता है जातियो तथा उपजातियो की सख्या मे वृद्धि।[24] परम्परागत चार वर्ण भी अनेकानेक जातियो मे बिखर गये। नयी-नयी जातियो को इनके अन्तर्गत समाहित कर लिया गया। परम्परागत वर्णो के विघटन का सर्वाधिक प्रभाव ब्राह्मणो पर पडा।[25] प्रारभ से ही ब्राह्मण गोत्र, प्रवर तथा शाखा के आधार पर विभाजित थे। वृत्ति, शिक्षा, धर्म, शुचिता, क्षेत्र, स्थान आदि के आधार पर उनमे भेद किया जाता था। भूमि अनुदानो की अधिकता के कारण ब्राह्मणो मे दृढ़ स्थानीयता की भावना विकसित हो गयी, जिसके परिणामस्वरूप पूर्व मध्यकाल मे उनकी अनेक उपजातियॉ बनी।[26]

क्षत्रिय वर्ण मे जातियो का बाहुल्य मुख्य रूप से राजपूत कहे जाने वाले नये समुदाय के उदय के कारण हुआ।[27] राजपूतो के विभिन्न कुलो की उत्पत्ति परम्परागत भारतीय वर्णो तथा विदेशी जातियो से हुई। हिन्दू समाज व्यवस्था मे बैक्ट्रियायी, यूनानी, शको और पर्थियाइयो को द्वितीय श्रेणी के क्षत्रियो के रूप मे सम्मिलित किया गया। जब हूण ,गुर्जर जैसे मध्य एशियाई लोग तथा सोलकी (चालुक्य), परमार, चाहमान, तोमर, गहरवाल आदि क्षत्रिय वर्ग मे शामिल हुये। इससे क्षत्रियो की सख्या तेजी से बढ़ने लगी।[28]

पूर्व मध्यकाल मे शूद्र जातियो की सख्या सबसे अधिक हो गयी। आयतक विधिग्रन्थों अर्थात् धर्मसूत्रो मे 10-15 वर्णसकर जातियो की चर्चा है।[29] किन्तु मनुस्मृति मे 61 जातियो का उल्लेख हुआ है।[30] यदि ब्रह्मवैवर्त पुराण मे [31]दी गई अतिरिक्त जातियो की सूची भी मिला दे तो यही सख्या सौ से ऊपर चली जाती है। आठवी शताब्दी की रचना विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार वैश्य स्त्रियो तथा निम्नस्तरीय जातियो के पुरूषो के समागम से हजारो वर्णसकर जातियो का जन्म होता है।[32] स्पष्ट है कि इस काल के सामाजिक परिवर्तनो से शूद्र वर्ग के लोग ही सबसे अधिक प्रभावित हुए। जगलो, वनो आदि मे रहने वाले पिछड़े लोगो पर कृषि की

---

24 गणेश पुराण, 1 32 11

25 शर्मा, आर० एस०, पूर्व मध्यकालीन भारत का सामती समाज और सस्कृति, पृ० 173

26 ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्म खण्ड II पृ० 136

27 शर्मा, आर० एस०, वही, पृ० 174

28 भण्डारकर, डी॰ आर०, फारेन एलिमेंट्स इन द हिन्दू पाप्यूलेशन, जर्नल ऑफ एशियट इडियन हिस्ट्री, I, पृ० 301-3

29 शर्मा, आर० एस०, वही, पृ० 174

30 मनुस्मृति, X 1-51

31 ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्म खण्ड, X 14 136

32 सूर्यवशी, भगवान सिंह, द आभीराज देअर हिस्ट्री एण्ड कल्चर, बड़ौदा, 1962, पृ० 39-40

दृष्टि से उन्नत इलाको के ब्राह्मणीकृत राजाओ की विजय से शूद्र जाति की सख्या और प्रभेद मे अपार वृद्धि हुई।[33] ब्रह्मवैवर्त पुराण [34] तथा अन्य रचनाओ मे उल्लिखित आभीर, आगरी, अम्बष्ठ, मित्तल, चण्डाल, कौच आदि वर्णसकर जातियो के लोग मूलत कबायली थे जिन्हे ब्राह्मण समाज व्यवस्था मे स्पृश्य या अस्पृश्य शूद्रो के रूप मे शामिल किया गया। मध्यकाल मे अस्पृश्य शूद्रो की सख्या मे भारी वृद्धि हुई। इस वृद्धि का प्रमुख कारण यह भी माना जाता है कि शिल्पियो ने जातियो का रूप धारण कर लिया। गुप्तोत्तर काल मे वाणिज्य-व्यापार के ह्रास के कारण शिल्पियो की श्रेणियॉ रूढ, गतिहीन, आधिकाधिक अनुवशिक और स्थानीयकृत होती चली गयी। अलग-अलग व्यवसायो व श्रेणियो से सबद्ध लोगो ने स्वय की धीरे धीरे सकीर्ण समूहो मे बॉध लिया, जो जातियो के पर्याय बन चुके थे। गणेश पुराण मे भी अनेको जातियो व उपजातियो का उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे पिलाक्ष, भील [35], शक, यवन [36], चाण्डाल [37], अत्यज [38]। स्पष्ट है कि गणेश पुराण का रचना काल पूर्व मध्य काल होने से उस काल के समाज की सभी प्रमुख प्रवृत्तियो का निदर्शन होता है।

गणेश पुराण में वर्ण व्यवस्था

वर्ण व्यवस्था हिन्दू वैदिक सस्कृति का वह मूल आधार है, जिसके द्वारा सामाजिक सगठन का विकास हुआ। धर्म को अत्यधिक महत्व देने के कारण वर्णो की व्युत्पत्ति को ईश्वर से जोड़ा गया। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त मे वर्णो की रचना श्रष्टा के विभिन्न अगो से मानी गयी है। शरीर के रूपक के माध्यम से भावनात्मक धार्मिक आधार बनाया गया है।[39]

---

33 शर्मा, आर० एस०, भारत मे सामाजिक परिवर्तन, पृ० 23

34 मजूमदार, बी० पी०, सोशियो-इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इडिया, कलकत्ता, 1960, पृ० 211

35 गणेश पुराण, 2 28 15

36 वही, 2 79 20

37 वही, 2 149 22

प्रतिग्रह करिष्यन्ति चाण्डालस्य द्विजातय ।

दरिद्राश्च भविष्यन्ति हाहाभूता विचेतस ।।

38 वही, 1 76 38

39 ऋग्वेद 10 90 12

ब्राह्मणोऽस्य मुखामासीत् बाहु राजन्य कृत ।

उरु तदस्य यद्वैश्य पद्भ्य शूद्रोऽजायत ।।

प्रारभ मे वर्ण व्यवस्था का स्वरूप कार्यशीलता पर ही आधारित था। ब्राह्मण का कर्त्तव्य अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ करना, दान लेना तथा देना था। क्षत्रिय का कार्य जनरक्षा, युद्ध करना, वैश्य का मुख्य कर्त्तव्य पशुपालन, कृषि व्यापार तथा ऋण देना था। शूद्र का कर्त्तव्य तीनो उच्चतर वर्णो की सेवा करना था।

महाभारत मे ब्रह्मा के विविध अगो से चारो वर्णो की उत्पत्ति बताई गई है। शान्तिपर्व मे कहा गया है कि ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, भुजाओ से क्षत्रिय, जघे से वैश्य तथा तीनो वर्णो की सेवा के लिये पैर से शूद्र की उत्पत्ति हुई।[40] भगवद्गीता मे उल्लिखित है कि चारो वर्णो की उत्पत्ति गुण तथा कर्म के आधार पर हुई है।[41]

महाभारत मे उल्लिखित है कि समाज मे सर्वप्रथम ब्राह्मण ही थे। बाद मे कर्म की विभिन्नता के कारण कई वर्ण हो गये।[42] वर्णगत समूहो का विभाजन कर्म के आधार पर हुआ। उपनिषदो मे अनेक स्थलो पर कर्म को महत्व प्रदान किया गया है।कर्त्तव्य के लिए कर्मो का सपादन अमृतत्व का साधन माना गया है।[43]

धीरे-धीरे विकास प्रक्रिया के साथ वर्णो की उत्पत्ति जन्मना मानी जाने लगी। ब्राह्मण परिवार मे जन्मा व्यक्ति अयोग्य तथा अज्ञानी होकर भी पूजनीय माना जाता था तथा चारो वर्णो मे जन्म के आधार पर श्रेष्ठ समझा जाता था।[44] इन्ही आधारो पर वर्ण व्यवस्था का परिचालन होता रहा ।

गणेश पुराण के सदर्भ मे तत्कालीन वर्ण व्यवस्था किस प्रकार पुराणकार को प्रभावित करती है तथा नयी व्याख्या के लिए प्रेरित करती है, यह उल्लेखनीय है। सामाजिक ढॉचे मे परिवर्तन के साथ ही नयी व्याख्याएँ उत्पन्न हो रही थी। मनु तथा याज्ञवल्क्य द्वारा बनाई गयी व्यवस्था को नये सिरे से स्मृतिकारो द्वारा निरीक्षित तथा परिवर्तित किया गया। इन्होने वर्ण व्यवस्था की जीवतता को नये सामाजिक परिप्रेक्ष्य मे बनाये रखा। बाण ने उल्लेख किया है

---

40 महाभारत, शान्तिपर्व 184 12

41 गीता 4 13
चातुर्वर्ण्य मया सृष्टा, गुणकर्म विभागश ।
तस्य कर्त्तारमपि का विद्धयकर्त्तामत्यमम् ।।

42 महाभारत, शातिपर्व, 188 10

43 मण्डूकोपनिषद् 1 1 8 कर्मसु चामृतम् ।

44 आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1 1 15
चत्वारो वर्णा ब्राह्मणाक्षत्रिय वैश्य शूद्रा ।
तेषाम् पूर्वापूर्वो जन्मत श्रेयान् ।।

कि हर्ष ऐसा शासक था जो मनु के समान वर्णो तथा आश्रमो के सभी नियमो का पालन करता था।[45]

यह ध्यातव्य है कि ईसा की छठी शताब्दी से सामाजिक व्यवस्था मे परिवर्तन मिलता है। विभिन्न वर्णो की स्थिति मे उतार-चढ़ाव दिखाई देने लगा।ह्वेनसाग के अनुसार जातियो और श्रेणियो मे ब्राह्मण सर्वाधिक सम्मानित और पवित्र थे। उनकी ख्याति और व्यापकता के कारण भारत के लिए 'ब्राह्मण देश' का सबोधन भी प्रचलित रहा। वे अपने सिद्धान्तो के पालन मे सयम, शुचिता और सदाचार का सर्वदा ध्यान रखते थे।[46] समाज मे ब्राह्मणो की स्थिति अत्यत उत्कृष्ट और विशिष्ट थी। वे अपने उच्च कर्मो और सयमित जीवन के कारण समाज मे वदनीय थे।

क्षत्रिय समाज का पोषण तथा रक्षण करने वाला वर्ण था। देश की रक्षा का भार उसी पर था। ह्वेनसाग ने क्षत्रियो को राजन्य वर्ग का माना तथा पीढियो से शासन कार्य करने वाला कहा।[47] विदेशी लेखको के साक्ष्य भी इनकी विशेषता बताते है। इब्नखुदीज्का ने लिखा है कि क्षत्रियो के सम्मुख सभी सिर झुकाते है, लेकिन ये किसी को सिर नही झुकाते।[48] मध्यकालीन शास्त्रकार लक्ष्मीधर ने मनु, पराशर पाठीनसि, हारित, बौधायन, आपस्तम्ब तथा सेवल का उल्लेख करते हुए कहा कि राजा के रूप मे क्षत्रिय का विशेष कर्त्तव्य था–शस्त्र धारण करना, देश का निष्पक्ष शासन करना तथा वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करना।[49] शास्त्रकारो द्वारा वर्णानुकूल कर्म की प्रशसा की गयी है।तथा इसी के माध्यम से व्यक्ति, परिवार एव समाज का उत्कर्ष माना है। व्यावहारिकता को ध्यान मे रखकर आपत्तिकाल मे उसके लिए जीविकोपार्जन हेतु अन्य वर्णो के कर्म अनुपालित करने की सलाह दी गयी। लक्ष्मीधर ने लिखा है कि क्षत्रिय कृषि तथा व्यापार कर सकता था।[50]

वैश्य वर्ण हेतु कृषि तथा व्यवसाय का सयोजन किया गया था। आर्थिक स्थिति के सुदृढ़ीकरण के लिए वैश्य वर्ण को नियोजित किया गया था। बाद मे पूर्व मध्य काल तक आते-आते वैश्यो के कार्यो मे कुछ कमी आ गयी । अल-इदरीसी ने वैश्यो को कला-कौशल मे निपुण, कारीगर तथा मिस्त्री बताया है।[51]

---

45 हर्षचरित, 2 36

46 मिश्रा, जयशकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना, 1999, पृ० 149

47 वही, पृ० 168

48 मिश्रा, जे० एस०, ग्यारहवी सदी का भारत, पृ० 112

49 कृतकल्पतरू, गृहस्थ, पृ० 252

50 कृतकल्पतरू, गृहस्थ, पृ० 191

51 घोषाल, यू० एन०, सम स्ट्डीज आफ इडियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, बाम्बे, 1965

सामाजिक परिवर्तन के चलते समाज मे वर्णगत परिवर्तन भी परिलक्षित हो रहे थे। अपने पूर्व निर्धारित कर्मो से उच्च वर्ग के लोग च्युत होते गये तथा धीरे-धीरे शूद्र वर्ण के निकट पहुँच गये। अलबरुनी लिखता है कि पिछले दो वर्णो मे कोई अन्तर नही है। यद्यपि ये दोनो एक दूसरे के विपरीत है तथापि एक ही साथ निवास करते है।[52] इससे स्पष्ट है कि वैश्यो की स्थिति मे ह्रास हुआ।

शूद्र का व्यवहार क्रम मे चौथा स्थान था। अन्य जातियो की सेवा का भार उन पर था।वे अधिकार तथा कर्तव्य की दृष्टि से समाज मे अत्यत उपेक्षित तथा निम्न थे। पराशर तथा गौतम के अनुसार शूद्रो का प्रधान कार्य द्विज की सेवा करना था।[53] वैश्यो की जब कृषि से विमुखता हुई तो शूद्रो ने कृषि कार्य को ग्रहण कर लिया। पुराणो के अनुसार, शूद्र का प्रधान कर्म सेवावृत्ति था। दो अन्य कर्म माने गये–शिल्प तथा मृति।[54]

समसामयिक ग्रन्थो तथा काव्यो मे शूद्रो को आदर की दृष्टि से देखा गया। मेधातिथि तथा विश्वरूप के अनुसार शूद्र न सेवक बनाये जा सकते है, न ब्राह्मण पर निर्भर किये जा सकते है। वे व्याकरण तथा अन्य विद्याओ के शिक्षक हो सकते है। स्मृतियो द्वारा निर्धारित उन सभी कृत्यो को कर सकते है जो अन्य वर्णो के लिए निर्दिष्ट थे।[55]

धर्मशास्त्रो तथा ग्रथो मे जब भी चतुर्वर्ण का उल्लेख हुआ है, सर्वदा ध्यान रखा गया है कि उनकी स्थितियो की ऐसी समायोजना हो जिससे वरिष्ठता क्रम मे किसी प्रकार का व्यवधान न उत्पन्न हो । समाज की श्रेणियो के अनुसार सामाजिक जीवन तथा आचार को चलाने के लिए अनेक नियम-उपनियम बने थे। चारो वर्णो के अनुसार ही उनकी व्याख्या होती थी।

गणेश पुराण मे पूर्व मध्यकाल की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियो, सम्प्रदायो तथा वातावरण की झलक दिखाई देती है। वर्ण व्यवस्था के सदर्भ मे इसमे कहा गया है कि प्रजापति ने अपने मुख से ब्राह्मण एव अग्नि को जन्म दिया। बाहु,उरू (जघा) व पद से क्रमश क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र को जन्म दिया।[56] यह उल्लेख ऋग्वेद से मिलता-जुलता है। विष्णु

---

52 घोषाल, यू० एन०, सम स्टडीज आफ इडियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, बाम्बे, 1965, पृ० 117

53 पराशर स्मृति 1 7 74, वृहत् गौतम स्मृति 22 6

54 वायु पुराण, 8 163, ब्रह्माण्ड पुराण, 2 7 163
शिल्प जीव भूता चैव शूद्राणा व्यदधात्प्रभु ।

55 मेघातिथि, मनु० 3 67 121, 3 156 127

56 गणेश पुराण, 1 16 8-9
मुखतो ब्राम्हणाग्निमसृजत् कमलासन ।
बाहुरूपादतोऽन्या स्त्रीन् वर्णाश्चन्द्रमस नर ।।

पुराण, मत्स्य पुराण आदि मे भी वर्ण व्यवस्था की ऐसी ही व्याख्या की गयी है।[57] यह वर्ण व्यवस्था जन्मना न होकर कर्म के आधार पर गणेश पुराण मे उल्लिखित है। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय शुद्ध श्वेत रग की मिट्टी तथा वैश्य एव शूद्र काले रग की मिट्टी लेकर नदी के किनारे जायॅ तथा हाथ साफ करें। जहॉ वाल्मीकि और ब्राह्मण का निवास न हो।[58] यहॉं वर्ण विभाजन का स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता है।

वर्ण व्यवस्था मे ब्राह्मण का स्थान प्रारभ से ही महत्वपूर्ण रहा है। पृथ्वी पर सर्वप्रथम उन्ही को उत्पन्न माना जाता है। उन्हे विशेषाधिकार प्राप्त थे, जो आगे भी बने रहे। गणेश पुराण में ब्राह्मण के महत्व यत्र-तत्र दिखाई देते है। इसमे वार्णित है कि चौरासी लाख योनियो मे मनुष्य योनि श्रेष्ठ है। इनमे भी तीन वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) श्रेष्ठ है। ब्राह्मण सर्वोत्तम है। ब्राह्मणो मे भी ज्ञानी, ब्रह्मवेत्ता, अनुष्ठान परायण ब्राह्मण श्रेष्ठ होते है।[59] ऐसे ब्राह्मणो का उल्लेख किया गया है जो वेदो तथा शास्त्रों के ज्ञाता थे।[60] एक स्थल पर कहा गया है कि ब्राह्मणो को दान देने से असाध्य रोग भी ठीक हो जाते है।[61] राजा भीम स्वस्तिवाचनपूर्वक ब्राह्मणों को दान देते है।[62] पुत्र प्राप्ति के समय कल्याण द्वारा ब्राह्मण को दान देने का उल्लेख मिलता है। गणेश भक्त ब्राह्मण की महिमा का वर्णन मिलता है कि उसके वायु स्पर्श को पाकर स्वास्थ्य प्राप्ति सभव है।[63] गणेश पुराण मे वर्ण निमय का भी उल्लेख है। यजन,

---

57 विष्णु पुराण, 1 12 63-64

तन्मुखात् ब्राह्मणास्त्त्को बाहो क्षत्रमजायत ।
वैश्यास्तवोरूजा शूद्रास्तव पद्भ्या समुद्गता।।

58 गणेश पुराण- 1 3 13-14

59 वही, 1.37 27-29

चतुरशीति लक्षासु योनिषु श्रेष्ठतासु च।
मनुष्याणा महाभाग वर्णास्तत्र महत्तरा।।
तत्रापि ब्राह्मणा श्रेष्ठास्तमत्रापि ज्ञानिन परा।।

60 वही, 1 37 28

ज्ञानिष्वनुष्ठानपरास्तेषु च ब्रह्मवेदिन।

61 वही 1.29 17

62 वही 1.19 17

एव निश्चित्य स नृप स्वस्ति वाचपूर्वकम्।
कृत्वा दानानि बहुशो ब्राह्मणेभ्यो ययौ पुरात् ।।

63 वही 1 23 39

कस्यचित् द्विजवर्यस्य द्विरदानन चेतस।
दैवात् स्पर्शेन भद्रे ते सम्यक्पुत्रो भविष्यति।।

अध्ययन, दान व शरणागत की रक्षा इनके कर्त्तव्य है। वे कोई निषिद्ध आचरण नही करते। ये नियम तो सभी वर्णो के लिए है। अध्ययन व यज्ञ ये दो कर्म विशेष कर ब्राह्मणो के है।[64] पूजा-विधि के अन्तर्गत ब्राह्मणो को भोजन कराने का उल्लेख है।[65] उन्हे दान मे गॉव देने का भी उल्लेख है।[66] बुद्ध नामक बाह्मण को अपराधी होने पर भी कोई दण्ड नही दिया गया।[67] गणेश के स्वरूप को ब्राह्मणो ने परमेश्वर के रूप मे, क्षत्रियो ने वीर के रूप मे, वैश्यो ने सहारकारी रुद्र के रूप मे तथा शूद्रो ने हरि (विष्णु) और राजा के रूप मे देखा।[68] ईश्वर की भक्ति करके ब्राह्मण वेदाग का ज्ञाता हो जाता है, क्षत्रिय विजय प्राप्त करता है, वैश्य धन से पूर्ण हो जाता है तथा शूद्र को सद्गति की प्राप्ति होती है। ब्राह्मणो का महत्व स्पष्टतया इस पुराण मे परिलक्षित होता है। लगभग ऐसी ही दशा का वर्णन अन्य स्थलो पर भी मिलता है। ब्राह्मण के अतिरिक्त वैश्य, शूद्र , अत्यज आदि वर्णे का उल्लेख भी गणेश पुराण मे है।[69] इसमे उल्लिखित है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इनके कर्म स्वभाव से ही भिन्न होते है। आतरिक एव बाह्य इन्द्रियो को वश में रखना, मृदुता, क्षमा एव भिन्न प्रकार के तप, शुचिता, दोनो प्रकार का ज्ञान, उनके अनुसार अनुष्ठान करते रहना–यह ब्राह्मण का कर्म है।

दृढता, शूरता, दक्षता, युद्ध मे पीठ न दिखाना, शरणागत की रक्षा, दान, धैर्य, तेज, प्रभुता, मन को उन्नत बनाये रखना, नीति व लोक का पालन करना क्षत्रिय के कार्य है।

नाना वस्तुओ को बेचना, खरीदना, भूमि का कर्षण (जोतना), गायो की रक्षा करना, तीनो प्रकार के कर्म के अधिकारी बने रहना वैश्यो का कर्म है।

---

64 गणेश पुराण, 1, 53 26-27
अधीतिर्यजन दान शरणागत पालनम् ।
निषिद्धाचरण नैव विध्यर्थ प्रतिपालनम् ।।
एते धर्मास्त्रिवर्णाना याजनादि त्रय द्विजे ।

65 वही, 1 59 31
निवेद्य पूजन नत्वा क्षमाप्य च तत पुन ।
ब्राह्मणान्भोजये भुक्त्या शक्त्या वा चैकविंशतिम् ।।

66 वही, 1 73 22
कृत्याऽभ्युर्दायक् श्राद्ध ददौ दानान्यनेकश ।
माल्यालकार वासासि गावो रत्नान्यनेकश ।।

67 वही, 1 76 31

68 वही, 2 13 19-20
ब्राह्मणा परमात्मान पश्यन्ति स्म विनायकम् ।
क्षत्रियास्त महावीर पश्यन्ति स्म रणोत्सुकम् ।।

69 वही, 2 35 10

दान देना, द्विजो की सेवा, शिव की सेवा आदि शूद्रो के कर्म है।[70]

पूर्व मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था का उल्लेख भी गणेश पुराण में मिलता है। गणेश कहते है कि रजस, सत्व तथा तमस के आधार पर मैने चारो वर्णो की सृष्टि की है, जिसका आधार कर्म है। विद्वानो ने मुझे इसका कर्त्ता तथा अकर्त्ता माना है।[71] इसके साथ ही चारो वर्णो की उत्पत्ति यज्ञ से मानी गयी है।[72] पूर्व मध्यकाल मे उत्पन्न सामाजिक परिवर्तन की झलक भी इस पुराण मे मिलती है–शूद्र वेद पढेंगे। ब्राह्मण शूद्रो का कर्म करेगे। क्षत्रिय वैश्य का कर्म करेगे तथा वैश्य शूद्रों का। द्विज लोग चाण्डाल से दान ग्रहण करेगे। सब दरिद्र हो जायेगे।[73] आगे मिलता है कि कुछ क्षत्रिय अपने कुलाचार के विरुद्ध भिक्षा लेगे। इस तरह लोग विधि व नियमो का आचरण नही करेगे। सकटकारी कर्म करेगे।[74] एक अन्य स्थल पर गणेश कहते है कि वे वर्णसकर के विधाता बनेगे।[75] गणेश पुराण मे एक स्थल पर म्लेच्छो का भी उल्लेख मिलता है जो कि तत्कालीन विदेशी जातियो के लिए सकेतित है।[76]

सामाजिक परिवर्तन का सकेत एक अन्य स्थल पर मिलता है जहॉ कहा गया है कि अपना धर्म गुणरहित हो तो भी दूसरे के सागगुण युक्त धर्म से अच्छा है। अपने धर्म मे मरण भी अच्छा होता है। दूसरे धर्म मे भय ही मिलेगा।[77]

---

70 गणेश पुराण, 2 148 32
दान द्विजाना शुश्रूषा सर्वदा शिवसेवनम् ।

71 वही 2 14 18-19
चत्वारोहि मया वर्णा रज सत्त्वतमों शत ।
कर्मांशतश्च ससृष्टा मृत्युलोके मयाऽनृप ।।
कर्तारमपि मा तेषामकर्तार विदुर्बुधा ।

72 वही 2 139 10
वर्णान्सृष्ट्वाऽवद चाह सयज्ञास्तान्पुरा प्रिय ।

73 वही, 2 149 22
प्रतिग्रह करिष्य चाण्डालस्य द्विजातय ।
दरिद्राश्व भविष्यन्ति हाहाभूता विचेतस ।।

74 गणेश पुराण- 2 149 29
व्रतानि नियमाश्चापि नाचरिष्यन्ति कर्हिचित् ।
वर्णसकर कारीणि कर्ता कर्माणि भूजन ।

75 वही, 2 139 24
हता स्यामस्य लोकस्य विधाता सकरस्य च ।
कामिनो हि सदा कामैरज्ञानात्कर्म कारिण ।।

76 वही, 2 149 30
म्लेच्छप्राया सर्वलोका परद्रव्यापहारिण ।

77 वही, 2 139 35

गणेश पुराण मे एक स्थल पर उल्लिखित है कि इसके श्रवण से शूद्र वैश्य, वैश्य क्षत्रिय तथा क्षत्रिय ब्राह्मण बन जाते है।[78] इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज मे वर्ण-व्यवस्था सबधी नियम कठोर नही रह गये थे, उनमे परिवर्तन सभव था। किसी वर्ण-विशेष का व्यक्ति दूसरे वर्ण मे सम्मिलित हो सकता था। दूसरा उदाहरण एक अन्य स्थल पर भी मिलता है जहाँ कहा गया है कि जो भक्ति से रहित होकर गणेश की उपासना करता है, वह चाण्डाल है। भक्ति से भजन करता हुआ चाण्डाल भी ब्राह्मणो से अच्छा है।[79] स्पष्ट है कि उस काल मे वर्ण को महत्व दिया जाने लगा था तथा निचले वर्ण को भी भक्ति, पूजा, उपासना का अधिकार मिला था। भक्ति का मार्ग उनके लिये वर्जित नही था।

इस पुराण मे कहा गया है कि जो ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न ब्राह्मण के प्रति, गो तथा हाथी के प्रति समान भाव रखते है, वे पडित और महात्मा है।[80]

सामाजिक परिवर्तन का उदाहरण एक अन्य स्थल पर भी दिखता है जहाँ बताया गया है कि दुर्धश नामक क्षत्रिय राजा की पत्नी एक केवट से प्रेम करती थी। इससे उसे जारज पुत्र उत्पन्न हुआ जिसे राजा की मृत्यु के पश्चात् शासक बनाया गया।[81] उसे राजा के सभी चिह्न दे दिये गये। कोष, सोना सब पर उसका अधिकार हो गया तथा वह साम्ब राजा बनकर शासन करने लगा।

गणेश पुराण मे अन्य जातियो के उल्लेख से तत्कालीन समाज मे उन जातियो के अस्तित्व का ज्ञान होता है। साम्ब राजा तथा उसके दुष्ट मत्री ने अपने पापो के कारण राक्षस तथा भील योनि मे जन्म लिया। वे पिलाक्ष तथा भील नाम से प्रसिद्ध हुए।[82] इसमे अत्यज

---

78 गणेश पुराण, 2 155 50
वेदाध्ययनसपन्नोमान्योऽपि द्विजपुगव ।
शूद्रो वैश्यत्वमाप्नोति वैश्य क्षत्रियतामियात् ।।

79 वही 2 146 7
भजन्भक्त्वा विहीनो य स चाण्डालोऽमि धीयते ।
चाण्डालोऽपि भजनभक्ता ब्राह्मणेभ्याऽधिको मम ।।

80 वही 2 141 36

81 वही, 2 27 22-23
तस्य पत्नया प्रमदया कैवर्तासक्त चित्तया
जनित सुमुहूर्ते सनज्ञातो जारजस्विति।
यावन्ति राजचिन्हानि तावन्ति ददतुश्चतौ
निवेदित कोशसहित सर्वराज्य सराष्ट्रकम्।।

82 वही- 2 28 35
राक्षसीभिल्लयोर्योनो ततश्चान्ते समीयतु ।
पिंगाक्षो दुर्बुद्धिरिति नाम्ना ख्यातौ च भूतले।।

जाति का भी उल्लेख है।[83] गणेश पुराण मे शको तथा यवनो आदि का भी उल्लेख किया गया है।[84] शूद्र जाति के बारे मे कहा गया है कि इस जाति के लोग गणेश पूजन करने तथा गणेश कुण्ड मे स्नान करने के कारण दिव्य देहधारी बन गये।[85] इससे ज्ञात होता है कि उस समय तक शूद्रो को भी पूजा तथा तीर्थ का अधिकार मिल गया था।

गणेश पुराण के एक प्रसग मे बताया गया है कि ऋषि पत्नी मुकुदा राजपुत्र रुक्मागद पर मुग्ध हो गयी थी। यह जानकर इन्द्र रुक्मागद का वेश धरकर मुकुदा के पास आये। इनसे उत्पन्न पुत्र कृत्समद को शास्त्रार्थ से इसलिए निष्कासित कर दिया गया क्योकि वह राजपुत्र रुक्मागद से उत्पन्न था।[86] शूद्रो के विषय मे कहा गया है कि नित्यकर्म के नियम को स्त्री एव शूद्र आधा कर सकते है।[87]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गणेश पुराण मे चतुर्वर्ण व्यवस्था के सदर्भ के कुछ वर्णो के लिये पारम्परिक विवरण ही प्राप्त होता है। जैसे, ब्राह्मण वर्ण, गणेश पुराण कालीन समाज मे भी सर्वोच्च व विशेषाधिकार प्राप्त स्थिति मे था। वह दण्ड से मुक्त था।[88] स्वर्ण[89],

---

83 गणेश पुराण, 1 76 18

84 वही 1 79 16

शकाश्च बर्बरा आसस्तस्या केशसमुद्भवा ।

85 वही- 1 29 14

गणेश कुडे स्नात्वैव दिव्यदेहमवाप स ।

विनायकस्वरूपैस्तु गणैराननिततम्बरात् ।।

86 वही,1 36 29

तपस्वीति भवान्मान्यो न मुनिस्त्व यतस्तव।

जन्म रुक्मागदाज्जात राजपुत्राद्विचारय।।

87 वही, 1 3 20

अर्द्ध पाद दिवारात्रौ शौच स्त्री शूद्र एवच ।

88 वही, 1 76 31,

ददहुस्ते जना सन्तो दपती स्व स्वकाष्टत ।

न शास्ति राजा दड्यत ब्राह्मणत्वाद् द्विजाधमम् ।

89 वही, 1 49 17

तत्तदृतु भतनीशे नारिकेलानि चानयेत् ।

बहुप्रकार मार्तिक्य काचनी दक्षिणा तथा ।।

गाय [90], भूमि [91], ग्राम [92], वस्त्र, आभूषण [93], घर [94] आदि दान मे पाने का अधिकारी था। विप्रपूजा तत्कालीन समाज मे भी प्रचलित थी। किन्तु वैश्यो व शूद्रो की सामाजिक स्थिति मे परिवर्तन हो गया था। समाज की चतुर्वर्ण उत्पत्ति पर ऋग्वेद [95] या वैष्णव परम्परा [96] मे जो बात पुरुष या विष्णु या प्रजापति के लिये कही गयी है, इस पुराण मे वही तथ्य उसी प्रकार से गणेश पर आरोपित कर दिया गया है। इससे दो बाते स्पष्ट होती है– पहली, गणेश को प्राचीन वैदिक परम्परा से जोडने का प्रयास और दूसरी, गणेश पुराण का साम्प्रदायिक स्वरूप। तत्कालीन समाज मे वर्ण व्यवस्था के सदर्भ मे सामाजिक गतिशीलता, जडता तथा रूढिवादिता के तत्व प्राप्त होते है। वैश्यो का सामाजिक स्तर अपेक्षाकृत नीचे हुआ जबकि शूद्र उच्च स्थिति को प्राप्त कर चुके थे। लेकिन यह स्तर भेद मात्र भौतिक स्तर पर ही हो रहा था। आनुष्ठानिक स्तर पर समाज मे वर्ण व्यवस्था मे कोई अभूतपूर्व परिवर्तन नही दिखायी देता है और भौतिक गतिशीलता परिवर्तनशील होती है, स्थायी नही।

स्पष्ट है कि गणेश पुराण मे वर्ण-व्यवस्था तथा तत्कालीन समाज के परिवर्तन का चित्रण है। साथ ही, उस काल मे परिवर्तित विभिन्न परिस्थितियो पर भी इससे प्रकाश पडता है।

---

90 गणेश पुराण, 1 26 8

91 वही, 1 51 40-41

92 वही, 1 26 22
ततस्तस्मै ददौ ग्रामान् वासो रत्न धनादिकम् ।
अन्येषा ब्राह्मणाना च गोधनान्यशुकानि च ।।

93 वही, 1 50 29-30
तेभ्यो भूषण वासासि दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ।
दद्यात् स्त्रीणामलकारान् योषिद्भ्यश्च सकुचुकान् ।।

94 ऋग्वेद, 10 90 12
ब्राह्मणोस्य मुखासीद् बाहु राजन्य कृत ।
उरूतदस्य यद्वैश्य पदभ्या शूद्रोऽजायत्।।

95 गीता, 4 13
चातुर्वण्य मया सृष्ट गुण कर्म विभागश ।
तस्यकर्त्तारमपि मा विहयत्कर्तारमव्ययम् ।।

96 गणेश पुराण, 2 139 10
वर्णान्सृष्ट्वाऽवद चाह सयज्ञास्तान्पुरा कृत ।

आश्रम व्यवस्था

प्राचीन हिन्दू समाज मे आश्रम व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मनुष्य के जीवन को सुव्यवस्थित ढग से बॉटने के लिए समाज मे आश्रम व्यवस्था जैसी सस्था की नियोजना की गई थी। पुरुषार्थ की अवधारणा आश्रम के माध्यम से ही विकसित हुई। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति विभिन्न आश्रमो के सहयोग से सभव मानी गयी। जीवन के चरम लक्ष्य को ध्यान मे रखते हुए ज्ञान, कर्त्तव्य, त्याग तथा आध्यात्म के आधार पर मानव जीवन को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास इन चार आश्रमो मे विभाजित किया गया। इनका अन्तिम लक्ष्य था– मोक्ष की प्राप्ति।

आश्रम व्यवस्था का उद्‌भव वैदिक काल के उत्तरार्द्ध से माना जा सकता है।[97] पुराणो मे भी ऐसी व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। यह माना गया है कि विभिन्न आश्रमो का परिपालन करने से विशिष्ट लोको की प्राप्ति होती है।[98] सूत्रकाल तक आश्रम व्यवस्था भारतीय समाज मे पूरी तरह प्रतिष्ठित और गठित हो चुकी थी। इसका परिपालन समाज मे द्विज लोगो के लिए अत्यत आवश्यक माना जाता था।

आश्रम व्यवस्था का मूल आधार सामाजिक व्यवस्था रही है। इसके साथ ही आश्रम की नियोजना मे व्यवस्थित तथा नियमित जीवन का भी अत्यत महत्व है। मनु [99],गौतम [100], आपस्तम्ब [101], विष्णु आदि शास्त्रकारो ने चारो आश्रमो का उल्लेख किया है।

मनुष्य जीवन के लिए निर्धारित चार पुरुषार्थो– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का क्रियान्वयन आश्रमो के माध्यम से ही माना जाता था। ब्रह्मचर्य आश्रम के माध्यम से व्यक्ति के धर्म-तत्व को समझने की चेष्टा होती थी। अर्थ और काम नामक पुरुषार्थ की पूर्ति गृहस्थ आश्रम के माध्यम से होती थी। वानप्रस्थ तथा सन्यास के द्वारा मोक्ष नामक पुरुषार्थ की प्राप्ति होती थी। आश्रम के अन्तर्गत सन्यासी मनुष्य अपना कर्म करता तथा वृत्तियो पर अकुश लगाये रहता था। परिणामस्वरूप उसे चरम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति होती है।

---

97 ऐतरेय ब्राह्मण, 35 2, तैत्तरीय सहिता, 6 2 75

98 विष्णु पुराण, 1 6 33
वर्णानाश्रमाणा च धर्मधर्मभृता ।
लोकाश्च सर्ववर्णाना सम्याधर्मानुपालियम् ।।

99 मनुस्मृति, 2 240, 6 87

100. गौतम धर्मसूत्र, 3 2
ब्रह्मचारी गृहस्थी भिक्षुवैंखानस चत्वार आश्रमा ।

101 आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2 9 21

गणेश पुराण मे भी आश्रम व्यवस्था का उल्लेख अनेक स्थलो पर किया गया है तथा उसे मान्यता प्रदान की गई है। इससे यह ज्ञात होता है कि पूर्व मध्यकाल मे भी आश्रम व्यवस्था का स्वरूप रहा होगा। इसी काल मे रचित अन्य पुराणो मे भी आश्रम व्यवस्था की चर्चा की गयी है। विष्णु पुराण मे ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी और परिव्राज के विषय मे चर्चा की गई है।[102] मत्स्य [103] तथा ब्रह्माण्ड [104] पुराणादि मे उल्लिखित है कि गृहस्थ, भिक्षु, आचार्यकर्मा (ब्रह्मचारी) तथा वानप्रस्थ चार आश्रमजीवी है तथा वर्णो के धर्म को प्रतिष्ठित करने के उपरान्त ब्रह्मा ने चार आश्रमो को स्थापित किया।

गणेश पुराण मे वर्णित है कि दिवोदास के राज्य मे ब्राह्मण आश्रमो मे अपने आचार के साथ रहते थे। शिष्य गुरुओ के सेवक थे व स्त्रियॉ पतिव्रता थी। यति लोग तीनो समय हवन करते थे। गृहस्थ लोग गृहस्थ धर्म का पालन करते थे। इस प्रकार वहॉ धर्म की वृद्धि हो रही थी। स्वर्ग मे देवता प्रसन्न हो रहे थे तथा पितरो को अपना भाग मिलता था। कोई स्त्री न बन्ध्या थी, न विधवा। न ही किसी के सन्तान की मृत्यु होती। न अनावृष्टि। कृषि मे शुक,टिड्डी व मूषक आदि की बाधा नही होती थी। इसलिये धनधान्य खूब उत्पन्न होते।[105] यहॉ समाज की झलक के साथ ही आश्रम व्यवस्था का सकेत भी स्पष्ट दिखायी देता है। एक अन्य स्थल पर लिखा है कि ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी या सन्यासी, इनमे से एक की पूजा करने वाला सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।[106] आचार नियम के अतर्गत गणेश पुराण मे बताया गया है कि मूत्र का उत्सर्ग करने के बाद दो बार हाथ धोना चाहिए, पैरो को एक बार धोना चाहिए। यह गृहस्थो के लिए नियम है। ब्रह्मचारी को इससे दोगुना करना चाहिए। वानप्रस्थियो को तिगुना तथा यति को चौगुना करना चाहिए।[107]

पूर्व मध्यकाल मे आश्रम व्यवस्था कहॉ तक प्रचलित थी, यह विचारणीय प्रश्न है।

---

102 विष्णु पुराण, 3 18 36
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थस्तथा आश्रमी।
परिवाड् वा चतुर्थोऽत्र पचमो नोप्रपद्यते।।

103 मत्स्य पुराण, 40 1

104 ब्रह्माण्ड पुराण, 2 7 869

105 गणेश पुराण, 2 45 15-18

106 वही, 2 144 11
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतिश्च य ।
एका पूजा प्रकुर्वाणोप्यनो वा सिद्धिमृच्छति।।

107 वही, 1 3 19
व्रतवान् द्विगुण कुर्यात् त्रिगुण वनगोचर ।
यतिश्चतुर्गुणु कुर्यादात्रा वर्धंतु यौनवान् ।।

गणेश पुराण इसका उल्लेख व्यवस्था के रूप मे करता है। यह परम्परावादिता है या यथार्थ के रूप मे है, इसको व्यापक परिदृश्य से जोड कर ही समझा जा सकता है।

संस्कार

सस्कारो का मानव जीवन मे अत्यत महत्व है। जीवन मे सस्कारो द्वारा ही मनुष्य का वैयक्तिक तथा सामाजिक विकास सभव है। अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य के जीवन पर अपना कुप्रभाव डालने वाले अदृश्य विघ्नो से निरापद होने के लिए सस्कारो का निर्धारण समाज मे किया जाता है। हमारे समाज मे सस्कारो का प्रचलन वैदिक युग से ही रहा है किन्तु सूत्रो और स्मृतियो मे इसके विषय मे विस्तार से विवेचन मिलता है। सस्कारो की सख्या के विषय मे धर्मशास्त्रकारो मे मतभेद है। गौतम [108] इनकी सख्या चालीस मानते है तो वैखानस[109] अट्ठारह मानते है।[110] किन्तु प्राय सभी धर्मशास्त्रकार सोलह सस्कारो को मान्यता देते है– गर्भाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशात, समावर्तन, विवाह तथा अत्येष्टि।

गणेश पुराण मे विभिन्न सस्कारो का उल्लेख है। तत्कालीन अन्य ग्रन्थो मे भी सस्कारो का उल्लेख है। गणेश पुराण मे वर्णित है कि गर्भवती स्त्री की इच्छा (दोहद) की पूर्ति अत्यत आवश्यक है।[111] पुत्र जन्म के समय अर्ध्य आदि से ब्राह्मणो तथा गणेश पूजन का भी वर्णन है तथा षोडश मातृकाओ का पूजन स्वस्ति-वाचन द्वारा किया गया। जातक सस्कार भी सपन्न हुआ। ब्राह्मणो को दान दिया, परिजनो का सत्कार कर बाजे बजाये गये तथा घर-घर शर्करा बॉटी गयी।[112] कश्यप तथा अदिति ने गजानन को पुत्र रूप मे प्राप्त कर उसका जातकर्म सस्कार कराया गया तथा उसे घी व मधु का प्राशन कराया। मन्त्रपाठ के साथ माता ने उन्हे स्तनपान कराया। पॉचवे दिन गुड़ का बायना बॉटा गया तथा ग्यारहवे दिन नामकरण

---

108 गौतम धर्मसूत्र, 1 822
इत्येते चत्वारिशत्सस्कारा ।

109 बौधायन धर्मसूत्र, 14 6 1

110 मिश्रा, जे० एस०, वही, पृ० 285

111 गणेश पुराण, 2 1 28
दोहदान्पूरयत्येष य य सा कामयत्सति ।

112 वही, 2 1 34
नानावादिन्न निर्घोषै शर्करा च गृहे-गृहे।
स्वस्तिवाच्य चकराशु मातृपूजनपूर्वकम् ।।

किया गया।[113] एक अन्य प्रसग मे लिखा गया है कि जातकर्म सस्कार के अतर्गत ब्राह्मणो को दान दिया तथा दस दिन बाद नामकरण किया गया।[114]

तत्कालीन अन्य ग्रन्थो मे भी जातकर्म सस्कार का वर्णन मिलता है। अनिष्टकारी शक्तियो से बालक को बचाने के लिए यह सस्कार सपन्न होता था। विष्णु पुराण मे वर्णित है कि पिता सविधि स्नानादि कर नान्दीमुख-श्राद्ध तथा पूजन करता था।[115] मध्यकालीन लेखको ने भी जातकर्म सस्कार पर प्रकाश डाला है।[116]

ब्राह्मण ग्रन्थो[117], गृह्यसूत्रो[118], स्मृतियो[119] आदि मे नामकरण सस्कार का विस्तृत उल्लेख मिलता है। मनु के अनुसार दसवे या बारहवे दिन शुभ तिथि, नक्षत्र तथा मुहूर्त मे नामकरण सस्कार का आयोजन करना चाहिए।[120]

गणेश पुराण मे बालक के पॉचवे वर्ष मे चूडाकर्म तथा यज्ञोपवीत सस्कार का वर्णन किया गया है। शुभ मुहूर्त देखकर ब्राह्मणो को बुलाया गया तथा क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी उपहार लेकर उपस्थित हुए। षोडश मत्रिकाओ का पूजन किया गया। अभ्युदय श्राद्ध के पश्चात् ब्राह्मणो का अर्चन किया गया।[121] गणेश के स्वरूप का वर्णन करते हुए बताया गया

---

113 गणेश पुराण, 2 6 39-41

चकारजातकर्मास्य कश्यपो ब्राह्मणै सह ।
प्राशयित्वा मधु घृत पस्पर्श मन्त्रतश्च तम् ।।
छित्वा नाल तु सक्षाल्य बाल प्रास्वापयच्च सा ।
इक्षुसार पचमे तु वायनानि महामुदा ।।
महोत्कटेति नामास्य चक्रे एकादशे पिता ।

114 वही, 2 6 38

115 विष्णु पुराण, 3 13 6

116 मिश्रा, जे० एस०, वही, पृ० 184

117 शतपथ ब्राह्मण, 6 1, 3 9

118 आपस्तम्ब गृहसूत्र, 15 8 11

119 याज्ञवल्क्य स्मृति, 1 12

120 मनुस्मृति, 2 30

121 गणेश पुराण, 2 10 1

ततस्तु पचमे वर्षे सचौल व्रतबधनम् ।
चकार कश्यपे धीमान् सूत्रोक्तविधिना शुभम् ।।

है कि उन्होने सॉपो का यज्ञोपवीत धारण किया था[122] रुक्मागद का यज्ञोपवीत सस्कार पॉचवे साल सम्पन्न हुआ। एक अन्य प्रसग मे भी राजपुत्र का यज्ञोपवीत पॉचवे वर्ष मे होने का वर्णन है।[123]

एक अन्य प्रसग मे यज्ञोपवीत (उपनयन) सस्कार के अन्तर्गत बताया गया है कि इसमे बालक को वस्त्र तथा मेखला पहनाई गई तथा मत्रपूर्वक उसे दण्ड (हाथ मे लाठी) दिया गया। बालक की अजलि मे सामग्री भरकर सूर्यमडल को देखने के बाद उसका होम हुआ। सर्वप्रथम माता ने उसे पाद अर्ध्य देने के बाद भिक्षा दी तत्पश्चात् अन्य लोगो ने भिक्षा दिया।[124]

मध्यकालीन शास्त्रकारो ने यज्ञोपवीत सस्कार के विषय मे विभिन्न मत व्यक्त किये है। इस सस्कार को हिन्दू समाज मे सर्वाधिक महत्व दिया गया है, क्योकि इसका सम्बन्ध व्यक्ति के भौतिक उत्कर्ष से है। इसे सपन्न होने के पश्चात् बालक 'द्विज' कहलाता था। अनियमित तथा अनुत्तरदायी जीवन समाप्त होकर नियमित तथा अनुशासित जीवन प्रारभ होता था।[125] उपनयन सस्कार का उद्देश्य होता था– वेदो का अध्ययन।

गौतम तथा मनु के अनुसार ब्राह्मण बालक का गर्भ से आठवे, क्षत्रिय बालक का ग्यारहवे तथा वैश्य बालक का बारहवे वर्ष मे उपवीत होना चाहिए।[126]

---

122 गणेश पुराण, 1 14 22
मुक्ता दाम लसत् कठ सर्प यज्ञोपवीतिनम् ।
अनर्घ्य रत्न घटित बाहु भूषण भूषितम् ।।

123 वही, 1 36 15-16
दशाहे तु व्यतीते स नामकर्मा करोन्मुनि ।
ततस्तु पचमऽदेऽस्य व्रतबन्ध चकारह ।।

124 वही, 2 10 18-20
उपनीते तत्र शिशौ वासश्च मेखलामपि ।
उपवीताजिने दड ददुस्तस्मै स्वमत्रत ।।
पादमर्घ तत सर्वा भिक्षा माता पुरा ददौ ।

125 पाण्डेय, राजबली, हिन्दू सस्कार, पृ० 99-100

126 गोमिल धर्मसूत्र, 1 6 12
उपनयन ब्राह्मस्याष्टमे, एकादशद्वादशयो क्षत्रियवैश्वयो ।
- मनुस्मृति 2 36

पुराणो मे ऐसे उदाहरण दिये गये है जिनसे स्पष्ट होता है कि उपनयन के उपरान्त विद्याध्ययन प्रारभ होता था। राजा सगर को उसके उपनयन सस्कार के बाद ही और्व ने वेदाध्ययन कराया था।[127] अन्य प्रसग मे वर्णित है कि जडभरत का उपनयन सस्कार होने के पश्चात् ही उसे गुरु से शिक्षा ग्रहण करने का निर्देश दिया गया था।[128]

इन उद्धरणो से स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज मे उपनयन सस्कार का बहुत महत्व रहा, जिसकी झलक गणेश पुराण मे भी दिखाई देती है।

प्रस्तुत पुराण मे सस्कारो के अतर्गत अत्येष्टि सस्कार का भी वर्णन यत्र-तत्र मिलता है। श्राद्ध कर्म सस्कार के विषय मे वर्णित है कि कौण्डिन्य नगर के राजा की मृत्यु पर ब्राह्मणो द्वारा प्रबोधन दिया गया। अतिम सस्कार करने वाला व्यक्ति आप्त कहलाता है। अतिम सस्कार उसके मत्री ने किया तथा ईश्वर का स्मरण कर सबने नीम के पत्ते चबाये। तेरहवे दिन रानी को वस्त्र दिये गये तथा उन लोगो ने भोजन किया।[129]

अत्येष्टि सस्कार का विस्तृत विवेचन रेणुका तथा परशुराम के प्रसग मे दिखाई देता है। परशुराम से रेणुका कहती है कि उनका अग्नि सस्कार वहाँ होना चाहिए जहाँ किसी और का न हुआ हो। मुनि को बुलाकर तेरह दिन का शास्त्रो के अनुसार कर्म हो तभी गति मिलेगी।[130]

परशुराम ने उसकी मृत्यु होने पर मुडन करके विधिपूर्वक स्नान किया। उठावनी का श्राद्ध किया तथा मत्रपूर्वक अग्नि सस्कार हुआ। दत्तात्रेय के कहने पर रेणुका तथा जमदग्नि का उर्ध्वदैहिक सस्कार किया गया। तत्पश्चात् अत्येष्टि कर्म सपन्न हुआ।[131] इसी प्रसग मे आगे वर्णित है कि अत्येष्टि सस्कार के बाद प्रतिदिन भिक्षा करनी चाहिए तथा जिसके घर शुद्धि न हुई हो, उसके घर नही खाना चाहिए।[132]

---

127 विष्णु पुराण, 4 3 37

128 वही, 3 13 39

129 गणेश पुराण, 1 25 29

त्रयोदशाहे निर्वृत्ते राज्ञयै दत्तवाम्बराणि ते ।

चक्रेस्ते भोजन प्रीत्या प्रत्यह बहुवासरम् ।।

130 वही, 1 80 27

इत्युत्त्वा रेणुका देह त्यक्त्वा धामाय दुर्गमम् ।

रामस्तत् सर्व मकरो तयादिष्ट महामना ।।

131 वही, 1 81 12-13

132 वही, 1 81 2

पॉचवे दिन कर्म समाप्त करने के बाद परशुराम के समक्ष एक व्याघ्र आ गया। भय से वे माता का स्मरण करने लगे जिसके कारण माता रेणुका वहॉ उपस्थित हो गई। किन्तु उस समय उनके शरीर के अग सम्पूर्ण नही थे क्योकि बारह दिन पूर्ण नही हुए थे। सपिण्डीकरण के पश्चात् यदि रेणुका आती तो सागोपाग पूर्ण होकर आती।[133] इसके बाद परशुराम ने वृषोत्सर्ग किया तथा बारहवे दिन सपिण्डीकरण किया। तेरहवे दिन श्राद्ध हुआ तथा ब्राह्मणो को दान दिया गया।[134]

अन्य साक्ष्यो से भी अत्येष्टि सस्कार के विषय मे विस्तृत जानकारी मिलती है। बौधायन के अनुसार, जन्म के बाद के सस्कारो द्वारा मनुष्य इस लोक को विजित करता है जबकि मृत्युपरान्त के सस्कारो से परलोक को विजित करता है।[135]

अन्य पुराणो मे वर्णित है कि मृत शरीर को स्नान कराकर, पुष्पमाला से विभूषित कर गॉव के बाहर जलाशय मे सवस्त्र स्नान कर जलाजलि अर्पित करनी चाहिए। अशौच के अन्त मे विषम सख्या मे ब्राह्मणो को भोजन कराना चाहिए।[136]

मत्स्य पुराण मे तीन प्रकार की अत्येष्टि क्रिया का वर्णन है- 1 शव को जलाना, 2 शव को गाड़ना, 3 शव को फेकना।[137]

पिंडदान, श्राद्धकार्य तथा ब्राह्मण भोजन के बाद मृतक का परिवार शुद्ध माना जाता था।[138]

गणेश पुराण मे सस्कारो के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक रीति-रिवाजो, क्रिया-कलापो, परम्पराओ का स्पष्ट चित्रण दिखाई देता है जिसके माध्यम से तत्कालीन समाज के

---

133 गणेश पुराण, 1 81 25

134 वही, 1 81 30

वृषोत्सर्ग च कृत्वा नेकादशदिने द्विज ।

सपिंडीकरणचैव द्वादशे कृतवान द्वयो ।।

135 बौधायन गृहसूत्र, 2 43

136 विष्णु पुराण, 3 13, 7 18

137 मत्स्य पुराण, 39 17

अष्टक उवाच -

य सस्थित पुरुषो दह्यते व निखन्यते वाऽपि कृष्यते वा ।

138 विष्णु पुराण, 2 13 20

अयुजो भोजयेत्काम द्विजानन्ते ततो दिने।

दधाद्धर्भेषु पिण्ड प्रेतायोच्छिष्टसशन्निधौ।।

अध्ययन मे सुगमता होती है। इसमे उस समय के नैतिक, बौद्धिक तथा सामाजिक मूल्य एव प्रतिमान स्पष्ट परिलक्षित होते है।

उपनेशन सस्कार का उल्लेख भी यहाँ मिलता है। तरह-तरह के रत्नो का सचय कर उससे चौक बनाया, गणेश पूजन किया, पुण्यवाचन किया। उत्तम वस्त्रो से ढॅके स्थान पर गणेश को बैठाया तथा उनकी आरती की।

गणेश पुराण मे प्रसगत आये दैनिक रीति-रिवाजो तथा आचारो के वर्णन से तत्कालीन जीवनचर्या का ज्ञान होता है। एक स्थल पर कहा गया है कि जब रात्रि एक प्रहर शेष रह जाये तो पुरुष को जग जाना चाहिए। शैय्या का त्याग कर पवित्र स्थान पर बैठकर गुरु का स्मरण करे। अपने इष्टदेव का चितन कर प्रणाम करे फिर धरती पर पैर रखने से पूर्व प्रार्थना करे कि हे पृथ्वी माता, पाद स्पर्श करने के लिए मुझे क्षमा करो।[139]

इसके पश्चात् जल का पात्र लेकर गॉव के पश्चिम उत्तर दिशा के बीच जाये। ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय शुद्ध श्वेत रग की मिट्टी हाथ मे ले, वैश्य तथा शूद्र काली मिट्टी लेकर नदी के किनारे जाये। ऐसे स्थान पर मूत्र तथा मल का त्याग करे जहॉ बाल्मीकि न हो तथा उसे फूस से ढक दे। पहले घास, काठ आदि से गुदा भाग को पोछे, बाद मे पॉच बार मिट्टी व पानी से धोये। दस बार बाये हाथ को और सात बार दोनो हाथो को धोये। मूत्र का उपसर्ग करने के बाद भी दो-दो बार हाथ धोये तथा पैरो को एक बार ही धोये। गृहस्थ के लिए ये नियम है। ब्रह्मचारी को इससे दुगुना करना चाहिए। वन मे रहने वाले वानप्रस्थियो को तिगुना करना चाहिए। यति को चौगुना करना चाहिए। रात्रि मे इसका आधा किया जा सकता है। इसके पश्चात् आचमन कर लकड़ी से जीभ साफ करे तथा दॉतो को शुद्ध करे। वनस्पति से प्रार्थना करे। ठडे जल से स्नान करे। फिर गृहसूत्र मे बताये गये अगो से उपासना करे। पूजा कार्य सम्पन्न कर किसी ब्राह्मण की उपस्थिति मे भोजन करे। पुराण का श्रवण करे। दान दे। मधुर वचन आदि से परोपकार करे। न अपनी प्रशसा करें न दूसरे को हानि पहुँचाये। गुरुद्रोह, वेदनिन्दा, नास्तिकता, पाप कर्मो का सेवन, अभक्ष भक्षण तथा पराई स्त्री का सत्सग न करे। साथ ही अपनी स्त्री का कभी त्याग न करे तथा ऋतुगामी हो।[140]

इसी प्रसग मे आगे कहा गया है कि माता-पिता, गुरु तथा गाय की सेवा करनी चाहिए। दीन, अन्धे तथा कजूसो को अन्नवस्त्र का दान देना चाहिए। सत्य का कभी त्याग न करे, भले ही प्राण का त्याग करना पड़े। जिस पर ईश्वर की कृपा है, जो साधुओ का पालन-

---

139 गणेश पुराण, 1 3 5-6

140 वही, 1 3 10-15

पोषण करते है और धर्मशास्त्र के अनुसार अपराधियो को दण्ड देते है उन्हे नीतिपूर्वक विद्वानो से पूछकर अपना व्यवहार करना चाहिए। जिसके प्रति विश्वास न हो उस पर कभी विश्वास न करे। विश्वस्त व्यक्ति के प्रति भी अति विश्वास न करे। जिसके प्रति कभी बैर हो गया हो उस पर तो कभी विश्वास न करे। इस प्रकार के आचरण से अपने राष्ट्र की वृद्धि होती है। दान भी अपनी शक्ति के अनुसार करे अन्यथा क्षीणता आ जाती है।[141]

पुत्र धर्म का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जो पुत्र पिता की बात श्रद्धा से सुने, उसका श्राद्ध करे, गया मे पिण्ड का दान करे, वह पुत्र कहलाता है। जो धनुर्शास्त्र के तत्व को जानता हो, नीति-निपुण हो, सबको सतुष्ट रखे तथा पितरो का उद्धार करे, वही पुत्र कहलाता है।[142]

पुत्र धर्म के विषय मे एक अन्य स्थल पर बल्लाल से उसकी माता कहती है कि पितृ धर्म के आधार भले ही अनर्थकारी हो, उसका कोई अपराध नही होता। श्रुति, स्मृति तथा पुराण ऐसा कहते है। तुम पुत्र धर्म के अनुसार पिता को निरोग बनाओ। तुम्हारे कारण पिता भी प्रशसनीय बनेगे। यशस्वी अच्छे पुत्र को पिता के वचन का पालन करना चाहिए।[143]

अन्यत्र लिखा है कि कुम्भीपाक नरक मे पापी लोग उबलते है, असिपत्रो (तलवार की धार) से काटे जाते है, लोहे के घन से मारे जाते है। कॉटे से छेदे जाते है। कृमिकुण्ड आदि नरक मे पापात्माओ को डाल दिया जाता है।[144]

स्वर्ग का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि जो ऊर्जा अर्थात् धूप मे स्नान करे, मछली के सदृश जल मे स्नान करे तथा वर्षा मे स्नान करे, तिल व अन्न का दान दे, गायो का दान दे। जो गीता का अध्ययन करने वाला व प्राणियो का उपकार करने वाला है, वही इस लोक मे आता है।[145]

मातृऋण के विषय मे उल्लिखित है कि शिवा ने बालक द्वारा दैत्य के वध पर कहा कि उसने मातृऋण चुका दिया।[146]

---

141 गणेश पुराण, 1 3 31-32

142 वही, 1 2 28

143 वही, 1 23 22-23

144 वही, 2 52 16-17

भुजते प्राणिन स्वस्वकर्म भोगाननेकश ।

कुम्भीपाके च पच्यते छिद्यन्ते चासिपत्रकै ।।

145 वही, 2 52 29

146 वही, 2 88 27

मातृणामृणमुत्तीर्णो बाले ये जीवितप्रद ।

नीति के सदर्भ मे उल्लेखनीय है कि सभा मे आये हुये व्यक्ति का, चाहे वह साधु हो या असाधु, बलवान हो या दुर्बल, उसका सम्मान करना चाहिए। यह सनातन नीति है। यहॉ के सब सभासद व्यर्थ है, मत्री व नागरिक व्यर्थ है। यह राजा का ही धर्म नही है यह तो सभासदो का कार्य है।[147]

अन्यत्र वर्णित है कि गो, ब्राह्मण व देवताओ से जो लोग द्वेष रखते है, उन्हे यश नही मिलता है। उनके द्वेष से किसी का कल्याण नही होता है। जो सारे प्राणियो मे समभाव रखता है, शुभ व अशुभ कर्मो का फल देता है उसकी सेवा से लोगो को अभीष्ट सिद्धि होती है, जैसे कामदेव से होती है। जैसा बीज बोया जाता है वैसा ही अकुर निकलता है। अशुभ कर्म से दु ख व शुभ कर्म से सुख पैदा होता है। इसलिए सत्पुरुष आदर के साथ शुभ कर्म करते है। शरीर, मन व वाणी से सब प्राणियो का हित करते है। पुरुषार्थ तो वह है जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारो पदार्थो का साधक होता है।

जिसका मन दूसरे की पत्नियो के प्रति लोलुप न बने, जो अनिन्द्य की निदा न करे, शरणागत की रक्षा मे जो दृढ़ बना रहे, धर्म परायण हो व सब प्राणियो के लिए समान हो, वही पुरुषार्थी माना जाता है।[148]

आगे कहा गया है कि आपकी वाणी दूषित न हो। सच्चा शील आपमे हो। अपने गुणो का आख्यान न करे, परोपकार मे लगे व दूसरो की चुगली से दूर रहे।[149]

दैनिक रीति-रिवाजो तथा लोकाचारो के सन्दर्भ मे भी गणेश पुराण के अनेक स्थलो पर जानकारी दी गयी है। इसमे उल्लिखित है कि ताम्बूल दान से सत्कार करने की परम्परा थी।[150] सत्कार के अन्तर्गत ही ब्राह्मण को गोदान देने की प्रथा का भी उल्लेख मिलता है।[151] अन्यत्र वर्णित है कि राजा ने अपने माता-पिता की कुश की प्रतिकृति बनाया तथा यह कहते हुए स्नान कराया कि माता का स्नान हो जाये।[152]

---

147 गणेश पुराण, 2 111 10

148 वही, 2 117 20-21
स एव पुरुषार्थ स्याद्यश्चापि न निन्दति,
शरणागत रक्षाया दृढ़ो धर्मपरायण ।
परोपकरणे सक्त परपैशून्य वर्जित ।।

149 वही, 2 117 20
अदुष्ट वाक्सत्यशील स्वर्गुणानामकीर्तक ।
परोपकरणे सक्त परपैशून्यवर्जित ।।

150 वही, 1 26 8

151 वही, 1 26 22

152 वही, 1 35 37

अन्यत्र वर्णित है कि ब्राह्मणो की पूजा कर उन्हे दान दिया, गाजे-बाजे बजवाये तथा घर-घर शर्करा भेजी गयी।[153] शर्करा बॉटने का कई स्थलो पर उल्लेख है।

नजर उतारने का भी जीवन्त तथा रोचक उल्लेख मिलता है कि अदिति ने दही-भात बालक के ऊपर उतार कर उसे बाहर फेक दिया ताकि बालक के ऊपर शाति बनी रहे, दुष्टो की दृष्टि न पडे।[154]

नवजात शिशु के सदर्भ मे उल्लिखित है कि सर्वप्रथम उसे घृत तथा मधु चटाया गया तत्पश्चात् स्तनपान कराया गया।[155] इसी सदर्भ मे आगे वर्णन मिलता है कि बालक का चौथा मास आने पर मुनि पत्नियो ने उतारे के लिए अनेक दिव्य पदार्थ गौरी को दिये। वे हल्दी, रोली आदि से बालक की अर्चना कर रही थी।[156]

नीति विषयक तथा लोकाचार विषयक तथ्य तत्कालीन सामाजिक जीवन का साक्षात् प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करते है। नीति विषयक आचारो के माध्यम से जहॉ समाज मे आदर्श स्थिति का विश्लेषण कर सकते है वही लोकाचारगत तथ्यो से तत्कालीन समाज मे प्रचलित रीति-रिवाजो, परम्पराओ तथा रूढ़ियो आदि की झलक मिलती है। इस दृष्टि से गणेश पुराण की भूमिका अत्यत महत्वपूर्ण है।

स्त्री-दशा

स्त्रियो की दशा मे युग के अनुरूप परिवर्तन होता रहा। उनकी स्थिति मे वैदिक काल से लेकर पूर्वमध्ययुग तक अनेक उतार-चढ़ाव आते रहे तथा उनके अधिकारो मे यथानुरूप परिवर्तन भी होते रहे। राजनीतिक और आर्थिक घटक समाज मे स्त्रियो की दशा निर्धारित करने मे निर्णयात्मक भूमिका निभाते रहे है।

वैदिक काल मे स्त्री शिक्षा, सस्कार एव अनुष्ठान की दृष्टि से उच्चतर स्थिति पर विद्यमान थी। वैदिक काल मे अध्ययन प्राप्त करने वाली स्त्रियो के दो वर्ग थे। एक 'सद्योवधू'

---

153 गणेश पुराण, 1 54 20

वादयामास वाद्यानि शर्करा च गृहे-गृहे।

प्रेषयामास च तदा हर्षादिन्दुमती शुभा।।

154 वही, 2 72 22 12

ततोऽदितिस्तु दध्यन्न भ्रामयित्वाऽत्यज छरि ।

दुष्टदृष्टिनिपातस्यशान्तये बालकोपरि ।।

155 वही, 2 82 10

156 वही, 2 84 38

और दूसरी 'ब्रह्मवादिनी'। 'सद्योवधू' वे थी जो विवाह से पूर्व तक वेद-मत्र और याज्ञिक प्रार्थनाओ का ज्ञान प्राप्त करती थीं। 'ब्रह्मवादिनी' वे कहलाती थी जो शिक्षा समाप्त करके विवाह करती थी।[157] अनेक स्त्रियॉ अध्यापिकाओ का जीवन व्यतीत करती थी। ऐसी स्त्रियॉ 'उपाध्याया' कही जाती थी।[158]

पाणिनि ने स्त्री शिक्षणशाला का उल्लेख किया है।[159] सूत्रकाल तक स्त्रियॉ यज्ञ भी सम्पादित करने लगी थीं।[160] वैदिक युग मे स्त्री और पुरुष दोनो यज्ञरूपी[161] रथ से जुडे हुए दो बैल माने जाते थे। स्पष्टत यज्ञ मे उनकी उपस्थिति अनिवार्य थी।[162] उस काल मे स्त्रियॉ मत्रविद् और विदुषी होती थी। ब्रह्मचर्य[163] का अनुगमन करती हुई उपनयन सस्कार भी कराती थी। कन्या के लिये उपनयन का विधान मनु ने भी किया है।[164]

वैदिक काल मे स्त्री आदर-सम्मान की पात्र तो थी किन्तु सपत्ति सम्बधी उसके अधिकार सीमित थे। पैतृक सम्पत्ति मे कोई अधिकार उसे नही दिया गया था। वैदिक साहित्य मे कतिपय ऐसे भी उल्लेख मिलते है जिनसे ज्ञात होता है कि कन्या को दायभाग का अधिकार नही था। पुरुष दायभागी थे, स्त्री दायभागिनी नही थी। भाई अपनी बहन को धन न प्रदान करे।[165] ऋग्वेद के वर्णन अनुसार पुत्रहीन व्यक्ति की सम्पत्ति पर पुत्री का अधिकार था।[166] वह दत्तक पुत्र से श्रेष्ठ समझी जाती थी।[167]

चौथी शताब्दी ई॰ पू॰ तक यह व्यवस्था समाज में प्रचलित रही।[168] किन्तु दूसरी

---

157 अथर्ववेद, 11 5 18

158 पतजलि, 3 822 'उपत्याधीते अस्या सा उपाध्याया'

159 पाणिनि, अष्टाध्यायी, 6 2 46 'छात्र्यादय शालायाम् '

160 पाराशर गृहसूत्र, 2 20, ऋग्वेद 1 72 5,5 32

161 तैत्तरीय ब्राह्मण, 3 75

162 शतपथ ब्राह्मण, 1 19 2 14

163 अथर्ववेद, 11 5 18

164 मनुस्मृति, 2 66

165 निरुक्त, 9 4, ऋग्वेद, 3 31 2

166 ऋग्वेद, 1 124 7,
'अभ्रातेव पुस एति प्रतीचो गर्तारूगिव सनये धनानाम् ।'

167 वही, 7 4 8,
'नहि ग्रभाथारण सुशेयोऽन्योदर्यो मनसा मन्त वा'

168 थेरीगाथा, स॰ 327

शताब्दी ई० पू० मे आकर स्त्री-शिक्षा पर अनेक प्रतिबध लग गये, जिनके कारण स्त्री का सम्पत्ति विषयक अधिकार बाधित हुआ। दूसरी शताब्दी ई० पू० तक स्त्री का उपनयन व्यवहारत बन्द हो चुका था। विवाह के अवसर पर ही उसका उपनयन सस्कार सम्पन्न कर दिया जाता था। इस सम्बन्ध मे मनु का कथन है कि पति ही कन्या का आचार्य, विवाह ही उसका उपनयन सस्कार, पति की सेवा ही उसका आश्रम निवास और गृहस्थी के कार्य ही दैनिक धार्मिक अनुष्ठान थे।[169] स्मृतिकारो ने यह व्यवस्था दी कि बालिकाओ के उपनयन मे वैदिक मत्र नही पढना चाहिए।[170] इस युग मे ऐसे अनुदार धर्मशास्त्रकारो के एक वर्ग का आगमन हुआ जिसने भाई के न रहने पर भी बहन के उत्तराधिकार को स्वीकार नही किया। आपस्तब ने यह व्यवस्था दी कि उत्तराधिकारी के अभाव में जब सपिण्ड या गुरू या शिष्य कोई न हो तब पुत्री उत्तराधिकारी हो सकती है। यद्यपि उसने पुत्री को उत्तराधिकारी न स्वीकार करके सारी सम्पत्ति धर्मकार्य मे लगा देने का निर्देश दिया है।[171] वशिष्ठ ,गौतम और मनु ने भी उत्तराधिकारिणी के रूप मे पुत्री का कही नाम नही लिया है।[172] कुछ अन्य शास्त्रकारो ने अपेक्षाकृत उदारता दिखायी है। कौटिल्य ने अभातृपुत्री को उत्तराधिकारिणी घोषित किया है, चाहे उसे कम ही हिस्सा क्यो न मिले।[173] पिता की मृत्यु हो जाने पर कन्या का विवाह करना पुत्र का कर्त्तव्य था। वह अपने हिस्से का एक चौथाई विवाह-कार्य मे व्यय कर सकता था।[174] इस काल तक वेदो के पठन-पाठन तथा यज्ञो मे संम्मिलित होने के अधिकार से भी उन्हे वचित कर दिया गया। स्पष्ट है कि सस्कार, शिक्षा, अनुष्ठान के सदर्भ मे स्त्री-दशा वैदिक काल की तुलना मे निम्नतर थी। बालविवाह की कुप्रथा प्रारम्भ हो गयी। सम्पत्ति के पैतृक विभाजन मे सीधे-सीधे कन्या का कोई अधिकार नही माना गया।

---

169 मनुस्मृति, 2 67,
वैवाहिको विधि स्त्रीणा सस्कारो वैदिको मत ।
पतिसेवा गुरौर्वासौ गृहार्थोग्नि परिक्रिया ।।

170 वही, 2 56, 9 18

171 आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2 14 2 4
'पुत्राभावे य प्रत्यासन्न सपिण्ड ।तदभावे आचार्य ।
आचार्यभावे अन्तेवासी ह्वत्वा धर्मकृत्येपु योजयेत् । दुहिता वा ।

172 वशिष्ट धर्मसूत्र, 15 7, गौतम धर्मसूत्र, 28 21, मनुस्मृति, 9 185

173 अर्थशास्त्र, 3 5, द्रव्यम् पुत्रस्य सौदर्या भ्रातर सहजीविनो वा हरेयु कन्याश्च ।

174 याज्ञवल्क्य स्मृति, 2 135

गुप्तकाल की स्मृतियो व परवर्ती निबधकारो को विवेचित करने पर यह तथ्य प्राप्त होते है कि वे सैद्धातिक स्तर पर पैतृक सम्पत्ति में कन्या और पति की सम्पत्ति मे पत्नी के अधिकारो की वकालत करते है। जैसे– वृहस्पति [175] और नारद [176] ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि क्या पुत्री अपने पिता की पुत्र के समान सन्तान नही है ? दायभाग और मिताक्षरा के अनुसार मृत पति के सम्पूर्ण धन को पुत्र के अभाव मे विधवा प्राप्त करे।[177] विज्ञानेश्वर ने स्त्री धन छह प्रकार का बताया है।[178] धर्मशास्त्रकारो ने स्त्री-धन के उपयोग पर प्राय प्रतिबध लगाया है तथा किन्ही विशेष स्थितियो मे ही पति द्वारा उसके उपयोग की अनुमति दी है।[179] उल्लेखनीय है कि शास्त्र के स्तर पर तथा सैद्धातिक स्तर पर उन्हे सम्पत्ति मे अधिकार की बात की जा रही थी। दूसरी ओर व्यावहारिक स्तर पर विसगतियॉ दिखाई दे रही थीं। सामाजिक और आनुष्ठानिक बधनो मे स्त्री को बॉध दिया गया। शिक्षा पाने का अधिकार समाप्त हो गया, बालविवाह, सतीप्रथा, विधवा की दुर्दशा जैसे तत्व समाज मे पूर्णतया विकसित हो चुके थे।

पूर्वमध्यकाल वस्तुत भारतीय समाज मे सक्रमण का काल था। अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तनो के साथ स्त्रियो की सामाजिक स्थिति मे भी उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। गुप्त-कालीन स्त्रियो की सम्माननीय दशा को गुप्तोत्तर युग मे सामाजिक आघात-प्रतिघात सहने पडे। उनका नैतिक एव आध्यात्मिक महत्व क्षीण हो रहा था।[180] उनका उपनयन सस्कार भी नही होता था। परन्तु दैवीशक्ति से समीकृत किये जाने के कारण तात्रिक उपासना मे उन्हे विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त थी।[181] तात्रिक उपासना काफी सरल एव लोकप्रिय थी। अत स्त्रियो की प्रतिष्ठा को इसके द्वारा पर्याप्त बल मिला। गणेश पुराण मे तत्कालीन समाज मे स्त्री दशा से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यो का निदर्शन हुआ है। एक स्थल पर आचार नियमो का निर्धारण करते समय स्त्री व शूद्रो को समान स्थिति मे रखा गया है।[182]

---

175 वृहस्पति स्मृति, 15 35

176 नारद स्मृति, 13 50, पुत्राभावे तु दुहिता तुल्य सतान कारणात् ।

177 दायभाग, खड 13, मिताक्षरा याज्ञ० 2 136

178 मिताक्षरा, 2 143 44

179 नारद स्मृति, व्यवहारमयूख मे, मिश्रा, जयशकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, से उद्धृत पृ० 418

180 प्रबोध, अक 1, भाग 27

181 यादव, बी०एन०एस०, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया इन ट्वेल्थ सेचुरी, पृ० 71

182 गणेश पुराण, 1 3 20, अर्धपाद दिवारात्रौ शौच स्त्री शूद्र एव च ।

उक्त पुराण मे पत्नी के धर्म का उल्लेख करते हुए वर्णित है कि स्वामी के वचनो का पालन करना तथा दिन-रात उसकी सेवा करना पत्नी का धर्म था।[183] ऋषियो ने एक अन्य स्थल पर स्त्रियो के धर्म का उल्लेख करते हुए कहा है कि इहलोक तथा परलोक मे पत्नी को पति के ही साथ रहना चाहिए।[184] स्पष्ट है कि पुराणकार पूर्वमध्यकालीन उस सोच से प्रभावित था जिसमे स्त्रियो को पति की सेवा करने तथा उसकी छाया मात्र बनकर रहने की परम्परा उल्लिखित है।

इस काल मे सामाजिक जीवन मे नारी के आदर्श स्वरूप की कल्पना की गयी तथा उसके व्यवहार से परिवार और समाज का उत्कर्ष होना सम्भव माना गया। स्त्री द्वारा अनैतिक शारीरिक सबध स्थापित करने को व्यभिचार माना गया। किन्तु इस विषय का सम्बन्ध व्यक्ति की प्राकृतिक यौन-उत्कठा और तृष्णा से था। इससे सम्बधित अनेक उल्लेख प्राप्त होते है।[185] गणेश पुराण मे वर्णित है कि सतयुग और त्रेता मे ब्रह्मा ने स्त्रियो की स्वतत्रता की बात कही है।[186] यह प्रसग भी उल्लेखनीय है कि बलात्कार द्वारा दूसरे की पत्नी से अनैतिक आचरण करने वाला नरक को जाता है। अपनी इच्छा से यदि स्त्री किसी पुरुष के पास आती है तो पुरुष नरकगामी नही होगा।[187] यह भी सदर्भित है कि जिस स्त्री का मन पर-पुरुष के प्रति कामाध हो जाता है, वह नरकगामी होती है।[188] हिन्दू समाज मे विवाहित स्त्री का पर-पुरुष के साथ गमन घोर पाप समझा गया है। शास्त्रकारो ने स्त्री के इस अनैतिक आचरण को बहुत बडी त्रुटि मान कर कठोर मार्ग पर चलने का परामर्श दिया है।[189] याज्ञवल्क्य ने ऐसी दुश्चरित्र

---

183 गणेश पुराण, 1 1 31-33, 1 30 20

184 वही, 1 2 23,
मयाऽपि नानाविध भोगवत्या सुखेन राज्य परिभुक्त ।
मस्य स्त्रीणाहि भर्ता गमन सहैव परत्र लोके मुनिभि प्रदिष्टम् ।।

185 वही, 1 28, 5-6
न देवेषु न नागेषु यक्षगधर्व पुजयो ।
पश्यामि चारु सर्वागया मते मे हृदय त्वयि ।।
अत्यासक्त त्वऽधरामृतपाने च देहि तत् ।

186 वही, 1 28 10,
बलात्कारेण योऽन्यस्य स्त्रिय धर्षितुमिच्छति ।
स एव नरक याति न स्वय पातितामपि ।।

187 वही, 1 28 15

188 वही, 1 28 17

189 मिताक्षरा, याज्ञवल्क्य स्मृति, 1 72

स्त्री के सभी अधिकार छीन लेने तथा जीवन -निर्वाह हेतु केवल भोजन देने तथा अनादरपूर्वक मैले वस्त्र पहनाकर भूमि पर शयन कराने की व्यवस्था की है।[190] गणेश पुराण मे ऋषि-पत्नी अहिल्या का इन्द्र द्वारा छल से शील-भग करने पर भी ऋषि उसे दोषयुक्त मानते है [191] तथा शाप देते है।

गणिकाओ की परम्परा प्राचीन काल से ही भारतीय समाज मे विद्यमान है।[192] महाभारत मे भी अनेक स्थलो पर इनका उल्लेख हुआ है।[193] परवर्ती साहित्य मे गणिकाये विभिन्न नामो से उल्लेखित की गयी है। जैसे नर्तकी, रूपाजीवा, वेश्या, देवदासी आदि। पद्म पुराण मे निर्देश है कि मदिर सेवा के लिये अनेक सुन्दरियो को क्रय करके प्रदान करना चाहिए।[194] भविष्य पुराण के अनुसार सूर्यलोक की प्राप्ति हेतु सूर्य मदिर को वेश्याकदब अर्पित करना चाहिए।[195] ह्वानच्याग ने अपने यात्रा विवरण मे मुल्तान के सूर्य मदिर मे देवदासियो की उपस्थिति का उल्लेख किया है।[196] अल्बरूनी सहित अनेक अरब यात्रियो ने देवदासियो के विषय मे लिखा है।[197] पूर्वमध्यकालीन अभिलेखो मे भी देवदासियो का यत्र-तत्र सदर्भ प्राप्त होता है।[198] गणेश पुराण का समाज पूर्वमध्यकालीन ऐसा समाज था जो सामतवादी विशिष्टिताओ से घिरा था। समाज का एक वर्ग विलासिता व वैभव से युक्त था। ऐसे मे वेश्या वर्ग की समाज मे उपस्थिति स्वाभाविक ही थी। कई स्थलो पर पुरुषो का वेश्याओ के प्रति अनुराग प्रदर्शित हुआ है।[199]

---

190 याज्ञवल्क्य स्मृति, 1 70,
हताधिकारा मलिना पिण्डमात्रोपजीविनाम् ।
परिभूतामद्य शय्या वासयेत् व्यभिचारिणीम् ।।

191 गणेश पुराण, 1 32 19

192 ऋग्वेद, 1 167 4, पराशुभ्रा अयासो यह्वा साधारण्येव मरूतोमिमिक्षु ।

193 महाभारत, आदिपर्व, 115 39, उद्योग पर्व, 30 38, 68 15, वनपर्व, 239 37 आदि

194 पद्म पुराण, 52 97,
क्रीता देवाय दातव्या धीरेणाक्लिष्ट कर्मणा ।
कल्पकाल भवेत्स्वर्गो नृपौ वासौ महाधनी ।।

195 भविष्य पुराण, 1 93 67,
वेश्याकदबक यस्तु दद्यातनूर्याय भक्तित ।
स गच्छेत्परम स्थान यत्र तिष्ठति भानुनाम् ।।

196 वाटर्स टी, ऑन युवान च्यागस ट्रैवेल्स इन इडिया, खण्ड -2 लदन, 1904-5, पृ० 354

197 मिश्र, जयशकर, ग्यारहवी सदी का भारत, वाराणसी, 1968, पृ० 159-61

198 इपि० इ० , पृ० 26

199 गणेश पुराण, 1 76 5-7
एकदा नगरे तस्मिन् वेश्या नर विमोहिनी ।
माता पित्रो समक्ष च पश्चात्चौर्य पुनश्च तान् ।
वेश्यायै प्रतिपाद्यैताश्विक्रीड सुभृश तथा ।।

किन्तु उक्त पुराण मे यह भी वर्णित है कि धर्मपत्नी को त्याग कर वेश्या के प्रति आसक्ति पुरुष को समाज मे निन्दनीय बनाती है।[200] इससे प्रतीत होता है कि समाज मे वेश्यावृत्ति की परपरा प्रचलित होने के बावजूद नैतिक आचरण के स्तर पर इसे उचित नही माना जाता रहा होगा। गर्भवती स्त्री की हर इच्छा पूर्ण करने का उल्लेख है।[201] एक क्षत्रिय रानी [202] का केवट के प्रति प्रेम का वर्णन तथा उससे उत्पन्न पुत्र को राज्य का शासक बनाना भी समाज की परिवर्तित हो रही मूल्य-मान्यताओ का द्योतक है। पूर्वमध्यकालीन राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियो के कारण स्त्री का जीवन पति पर पूर्णतया आश्रित था। पतिविहीन स्त्री का जीवन निरर्थक समझा जाता था। इसका दिग्दर्शन गणेश पुराण मे भी है।[203] यहॉ कहा गया है कि विधाता ने पति-पत्नी के शरीर को एक बनाया हैं किन्तु प्राण एक नही बनाया। पति के सुख के बिना सभी सुख व्यर्थ है।[204]

स्त्री की दशा के सन्दर्भ मे एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य गणेश पुराण मे मिलता है और वह है–सतीप्रथा। यद्यपि भारतीय समाज मे सती होने की परम्परा प्राचीन काल से है।[205] किन्तु पूर्वमध्यकाल मे विदेशी आक्रमणकारियो के कारण यह परम्परा व्यापक हुई। घटियाला(जोधपुर) अभिलेख(810 ई०) राजपूत सामत राणुक का उल्लेख करता है, जिसके साथ उसकी पत्नी सम्पलदेवी सती हो गयी थी।[206] गणेश पुराण मे भी उल्लिखित है कि चक्रपाणि ने बेल व चन्दन की लकड़ी से सिन्धु का सस्कार किया। उसकी पत्नी दुर्गा पतिव्रता होने के कारण उसके साथ ही चली गयी।[207]

मातृपूजन का उल्लेख भी उक्त पुराण मे प्राप्त होता है। ऋषियो ने गणेश की अग्रपूजा तथा सावित्री (ब्रह्मा की पत्नी) की पूजा नही की तो सावित्री ने क्रुद्ध होकर उन्हे शाप दिया।[208]

---

200 गणेश पुराण, 1 76 37

201 वही, 2 1 28

202 वही, 2 27 22

203 वही, 2 5 9, पति बिना न चान्यास्ति गति सद्योषिता प्रभो ।

204 वही, 2 124 18-19, देहैक्य कृतवान्धाता दम्पत्योर्वेददर्शनात् प्राणैक्य न कृत तस्माद्ब्रह्मणा ।

205 महाभारत, आदि पर्व, 95 65, तत्रैन चिताग्निस्थ माद्री समन्वाहरोह ।

206 प्रोग्रेस रिपोर्ट आफ द आर्केलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, वेस्टर्न सर्किल, 1906-7, पृ० 35

207 गणेश पुराण, 2 124 46,
तलस्ते सस्कृति चक्रुर्विल्वचन्दन दारुभि ।
दुर्गासहैव सयाता पातिव्रत्य गुणान्विता ।।

208 वही, 2 36 10,
मुच्चन्ती मुखतो ज्वाला दग्धुकामा चराचरम् ।
शशाप सा देवमुनीन्जडायूय भविष्यथ ।।

कई अन्य स्थलो पर भी मातृपूजन का उल्लेख है। यह समाज मे प्राप्त तत्र विधान के फलस्वरूप मातृपूजन के प्रभाव को दर्शाता है। तत्रो से गाणपत्य सम्प्रदाय अत्यत प्रभावित था। यह प्रभाव गणेश पुराण मे भी परिलक्षित होता है। स्त्री-धन के सन्दर्भ मे हिन्दू धर्मशास्त्रकारों तथा भाष्यकारो ने अपने-अपने तर्क दिये है। मनु का उल्लेख करे तो पाते है कि उन्होने छह प्रकार के स्त्री-धन का विवरण प्रस्तुत किया है। वैवाहिक अग्नि के सम्मुख जो कन्या को दिया जाता है, जो कन्या को पति-गृह जाते समय मिलता है, जो स्नेहवश उसे दिया जाता है, जो माता-पिता और भाई द्वारा मिलता है।[209] विवाह के समय कन्या को धन देने की प्रथा पूर्वमध्यकाल मे भी विद्यमान थी। भाष्यकारो ने ग्रन्थो मे इसका स्पष्ट विधान किया है। गणेश पुराण मे भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है। औरव नामक ब्राह्मण ने अपनी कन्या के विवाह के अवसर पर बहुत-सा धन दिया।[210]

इन साक्ष्यो के आधार पर हम कह सकते है कि गणेश पुराण मे स्त्रियो से सम्बधित तथ्य तत्कालीन समाज को प्रतिबिम्बित करते है। विदेशी आक्रमणो तथा राजनैतिक परिवर्तनो का प्रभाव स्त्रियो की दशा पर पडना स्वाभाविक ही था। स्त्रियो की दशा के सन्दर्भ मे वे सभी तत्व इस पुराण मे परिलक्षित होते है, जो पूर्वमध्यकालीन समाज की विशिष्टता थे।

खान-पान

मनुष्य का जीवन भौतिक तथा आध्यात्मिक इन दोनो पक्षो का सतुलित समन्वय है। भौतिक जीवन के अतर्गत प्रतिदिन का खान-पान, वस्त्राभूषण, गीत-नृत्य तथा मनोरजन के अन्य साधन आते हैं। आध्यात्मिक जीवन के अतर्गत परमसत्ता के प्रति प्रेम का भाव प्रकट होता है। सासारिक तथा आध्यात्मिक दोनो पक्षो का उचित समन्वय आवश्यक है। भौतिक जीवन के विविध पक्ष तत्कालीन सामाजिक, सास्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक पक्षो पर प्रकाश डालते हैं।

भारत मे प्राचीनकाल से ही विविध प्रकार के भोज्य तथा पेय पदार्थ प्रचलित थे। शाकाहारी तथा मासाहारी दो वर्ग प्रचलित थे। उत्तरवैदिक काल तक आते-आते खाद्य सामग्री से सबधित कई पकवान बनने लगे थे। जैसे क्षीरोदय, पिष्ट आदि। भोजन करने की प्राय चार विधियाँ थी - 1 भक्ष्य (जो चबाकर खाया जाता था), 2 चोष्य (जो

---

209 मनु, 9 194,

अध्यग्न्यध्वावाहनिक दत्त च प्रति कर्मणि ।

भातृ भातृपितृ प्राप्त षड्विध स्त्रीधन स्मृतम्।।

210 गणेश पुराण, 2 34 14, ता गृहस्य विधिना परिवर्ह ददौ बहु

चूसकर खाया जाता था), 3 लेह्य जो चाटकर खाया जाता था, 4 पेय (जिसे पिया जाता था)।

साधारणतया लोग निरामिष होते थे। यव, माष, मुद्‌ग, तिल, तेल, घृत, दुग्ध, दही, कन्द-मूल, फल, मसाले, लवण, गुड आदि खाते थे। पूरिका (पूड़ी),ओदन (चावल), गुडोदन (मीठा चावल), सूप (दाल) आदि का भी प्रचलन था।

पूर्वमध्यकाल मे भी खान-पान की इसी परम्परा का पालन हो रहा था। अरब यात्री सुलेमान के अनुसार भारतीयो मे चावल अधिक प्रचलित था, गेहूँ नही के बराबर था।[211] अन्य साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि गेहूँ का प्रचलन था। दही, घी, शाक और दाल का उल्लेख भी मिलता है। अगूर, बादाम, सन्तरा, अनार, आम, नीबू आदि विभिन्न फलो का उल्लेख भी मिलता है।

गणेश पुराण मे भी अनेकश विविध खाद्य पदार्थो का उल्लेख मिलता है, जिससे तत्कालीन समाज मे प्रचलित खाद्य पदार्थों का ज्ञान होता है। उल्लेख है कि मोदक, पुआ, खाड पडा दूध, सुपारी का चूर्ण, कत्था, इलायची, लौग, केसर मिश्रित ताम्बूल (पान), केला, आम, कटहल, द्राक्ष (किशमिश) का भोग गणेश को लगाया जाता था।[212]

इसी प्रसग मे आगे वर्णित है कि दूध, दही, घी, मधु, गन्ने (इच्छुदण्ड) से उत्पन्न शर्करा, गुड़, मधुपर्क, खीर, सादे चावल, दही, दूध, घृत से युक्त लौग, इलायची, मिर्च के चूर्ण से युक्त चावल के आटे की बाटी, मोदक, पूआ (अपूप), पूडी, हल्दी, हीग, नमक से युक्त दाल आदि पदार्थ प्रचलित थे।[213]

अनार, नीबू, जामुन, आम, किशमिश (द्राक्षा), केला, खजूर (छुहारा), नारियल, सतरा तथा हाथ साफ करने के लिए चदन का चूर्ण समर्पित है। कपूर, सुपारी का चूर्ण, कत्थे से मिला हुआ इलायची, लौग पड़ा केसर युक्त ताबूल समर्पित है।[214] गणेश पुराण मे अन्य स्थल पर वर्णित है कि बाटी, अपूप, लड्डू, खीर, पचामृत आदि से गणेश को भोग लगाये।[215] गणेश के पूजन के समय नैवेद्य मे मोदक, पूआ, पूड़ी-कचौड़ी, लड्डू, बाटी, खीर, विविध प्रकार की चटनी तथा चूसने वाले भोज्य, नाना प्रकार के फल एव ताबूल (पान) भेट करे।[216]

---

211 रेनाउडॉट ई०, एशियट एकाउट ऑफ इडिया एड चायना ब्राट टू मुहम्मडन ट्रैवेलेर्स, लदन, 1733, पृ० 34

212 गणेश पुराण, 1 49 27,
प्रवाल मुक्ताफल पत्र रत्न ताबूल, जाबूनदमष्टगधम् ।
पुष्पाक्षतायुक्त ममोघशक्ते दत्त मयाऽर्घ्य सफली कुरुष्व ।।

213 वही, 1 49 50-52

214 वही, 1 49 16

215 वही, 1 51 39

216 वही, 1 59 28

यदि वर्षापर्यन्त घी, लड्डू आदि खाये तो सिद्धि प्राप्त होगी।[217] श्रावण मास मे सात लड्डू, भादो मे दही, आश्विन मास मे उपवास, कार्तिक मास मे दुग्धपान, मार्गशीर्ष मे निराहार, पौष मास मे गोमूत्र का सेवन करे। माघ मास मे तिलभक्षण, फागुन मे घृत और शर्करा, चैत्य मास मे पचजत्य,वैशाख मे शतपत्रिका, ज्येष्ठ मास मे घृत का सेवन करे तथा आषाढ मे मधु का भक्षण करे।[218] इसी पुराण मे उल्लेखित है कि 18 प्रकार के अनाज को पीसकर उसकी रोटी तथा टूटे तन्दुलो का भात बनाया। अक्षत, पुष्प आदि एकत्र कर फल तथा वल्कल रखा। सूखे आवलो के टुकड़े मुख सुगधित करने के लिए रखे।[219] अन्य प्रसग मे गणेश द्वारा दरिद्र ब्राह्मण के घर भात खाने का वर्णन मिलता है। जब भात का पानी निकल कर चारो ओर फैलने लगा तो बालक दस भुजाधारी बन गया, दसो भुजाओ से उन्होने वह चावल खाया। [220] दुधेश के जारज पुत्र के मासाहारी होने का उल्लेख भी गणेश पुराण मे है।[221] इसमे दही भात से नजर उतारने का उल्लेख भी मिलता है।[222] तत्कालीन समाज मे प्रचलित तथा वर्णित खान-पान, फलो, पकवानो आदि का बहुतायत से उल्लेख मिलता है।

वस्त्राभूषण

वस्त्र तथा परिधान भी मनुष्य के विकास तथा उसके इतिहास से जुडे है। पूर्व वैदिक युग से ही लोग विभिन्न प्रकार के वस्त्र तथा परिधान धारण करते थे। बुनाई तथा सिलाई कला से भी लोग परिचित थे। वस्त्र के लिए 'वासस्', 'वसन' 'वस्त्र' आदि शब्दो का प्रयोग किया जाता था। प्राय नीवी (अधोवस्त्र) तथा अधिवास (उत्तरीय) पहने जाते थे।[223] उत्तर वैदिक युग मे भी अनेक नये प्रकार के वस्त्रो का उल्लेख मिलता है। सूत कातने हेतु करघा के लिए 'वेमन' शब्द का उल्लेख है।[224] बौद्ध काल मे वस्त्र उद्योग के विकास के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के रग-बिरगे वस्त्रो का प्रचलन हुआ। कपास, रेशम, ऊन, सन आदि अनेक प्रकार के तन्तुओ से वस्त्रो का निर्माण होता था। बेसनगर से प्राप्त यक्षिणी की मूर्ति से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज मे स्त्रियॉ धोती, अधोवस्त्र और कटि भाग मे नाभि के नीचे करधनी भी धारण करती

---

217 गणेश पुराण, 1 59 36

218 वही, 1 59 39-40

219 वही, 2 22 51-52

220 वही, 2 23 46

221 वही, 2 27 25

222 वही, 2 72 11

223 ऋग्वेद, 1 140 9

224 तैत्तरीय ब्राह्मण, 2 1, 4 2

थीं।[225] पुरुष भी कमरबध पहनते थे। कमरबध बहुत कलात्मक तथा आकर्षक होते थे, जो स्त्री व पुरुष दोनो की शोभा बढाते थे। पुरुष वर्ग के लिए पगडी सर्वाधिक प्रिय परिधान थी, जिसे विभिन्न प्रकार से, विविध रूपो से सजाकर बॉधा जाता था।

केश-सज्जा भी श्रृगार का अत्यत प्राचीन साधन रहा है, जो पुरुषो के साथ ही स्त्रियो मे अत्यत लोकप्रिय था। अजता, बाघ आदि गुफाओ मे दीवारो पर चित्रित नारी के विविध केश-विन्यास तत्कालीन युग की सौन्दर्यप्रियता को व्यक्त करते है। आभूषण सौन्दर्य को बढाने के माध्यम समझे जाते है। यही कारण है कि स्त्री-पुरुषो मे ये सदैव ही प्रिय रहे है। प्राचीन काल मे तो स्त्री-पुरुष प्रारभ से ही अलकारप्रिय थे। ऋग्वेद काल मे भुज,केयूर, नूपुर, भुजबध, ककण, मुद्रिका आदि आभूषण प्रचलित थे।[226] अगूठी, कुडल, मेखला आदि का उल्लेख भी मिलता है। काल के अनुसार उनके नाम तथा स्वरूप मे परिवर्तन होते गये।

गणेश पुराण मे गणेश के तेजोमय स्वरूप का वर्णन करते हुए उल्लिखित है कि उन्होने रक्तवर्ण का वस्त्र पहना था, जो सायकाल के सूर्यमण्डल से भी अधिक दीप्तिमान था। कटिभाग मे जो सूत्र (करधनी) थी, उसके प्रभाजाल से हिमाद्रि शिखर भी लज्जित थे। सिर पर मुकुट अनेक सूर्यो की शोभा से बढकर था। शरीर पर ओढ़ा उत्तरीय अनेक ताराओ से अकित आकाश जैसा था।[227] अन्यत्र वर्णित है कि वे विचित्र रत्नो से जडा हुआ कटिसूत्र (करधनी) पहने हुए थे। सोने के तारो से चमकता हुआ लाल वस्त्र शरीर पर लिपटा था।[228] तत्कालीन वस्त्राभूषणो के विषय मे गणेश पुराण मे अन्य कई स्थलो पर भी उल्लेख मिलता है। इनमे गणेश रूपी शिशु का वर्णन किया गया है जो कि मुकुट पहने था। कानो मे कुण्डल थे, कण्ठ मे मणियो तथा मोतियो की माला थी। कटि मे कटिसूत्र था।[229] एक अन्य स्थल पर पालकी, गॉव तथा मोतियो की माला के दान का वर्णन है।[230] स्त्रियो से सबधित आभूषणो का भी उल्लेख यहॉ मिलता है। वह सभी आभूषणो से भूषित है। उसके शरीर पर ताटक, कानो मे कुण्डल, मस्तक पर अनेक रत्नो से जटित मुकुट तथा ललाट पर मुक्ता षोडश शोभित है। सुवर्ण व रत्नो से बनी करधनी लटक रही है। बाहुओ मे अगद, हाथो मे वलय है और प्रत्येक अगुली मे सुवर्ण व रत्नो से बनी मुद्रिकाएँ है। मुक्ता फलो से बनी हुई माला वक्ष पर लटक रही

---

225 कुमारस्वामी, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, लदन, 1927, प्लेट न० 5 17

226 मिश्र, जयशकर, ग्यारहवी सदी का भारत, पृ० 280

227 गणेश पुराण, 1 12 34-36

228 वही, 1 14 21-22

229 वही, 1 15 4-5

230 वही, 1 24 15

है। सुवर्ण तथा रत्नो से बनी काची कटि मे है। गुल्फो (टखने) मे सुवर्ण के नूपुर है।[231] विशेष अवसरो पर स्त्रियॉ स्वय को वस्त्रो, अलकारो से विभूषित करती थी।[232] बालको को भी उत्सव के अवसर पर मूल्यवान रत्न, आभूषणो तथा सुगन्धियो से अलकृत करने का वर्णन है।[233] एक अन्य स्थल पर कुछ आभूषणो तथा वस्त्रो के साथ ही साफे का उल्लेख किया गया है, जो सभवत उस समय पुरुषो का प्रिय पहनावा रहा होगा। सिधु ने वस्त्र व आभूषण धारण किये। बॉहो मे केयूर, मस्तक पर मुकुट, रत्नयुक्त हार व कुण्डल पहने। खड्ग व तरकश लेकर प्रत्यचा सहित धनुष-बाण लिए, रेशमी वस्त्रो (साफे) से दोनो कान ढॅककर सिहासन पर आ बैठे।[234] साफे के स्थान पर कही-कही शिरोवस्त्र का उल्लेख है।[235] साधको तथा तपस्वियो के लिए मृगचर्म ही वस्त्र था। गणेश पुराण मे उल्लिखित है कि शिव ने व्याघ्र का चर्म धारण किया है। अर्धचन्द्र भूषण है। शरीर पर भस्म है तथा गजचर्म का उत्तरीय पहना है।[236] इन अनेक उद्धरणो से स्पष्ट है कि तत्कालीन समय मे प्रचलित वस्त्राभूषणो की झलक प्रस्तुत पुराण मे मिलती है। स्त्रियो व पुरुषो के आभूषण लगभग समान थे। समाज मे वर्ग के अनुसार आभूषण धारण किये जाते थे। प्रस्तुत पुराण मे अनेक स्थलो पर अवसर के अनुकूल आभूषणो तथा वस्त्रो के धारण करने का उल्लेख है। प्रस्तुत पुराण की इस दृष्टि से विशेष सास्कृतिक महत्ता है।

आमोद-प्रमोद और मनोरंजन के साधन

भारतीय समाज मे प्राचीन काल मे मनोरजन तथा आमोद-प्रमोद का विशिष्ट व अनिवार्य महत्व था। मनुष्य के स्वस्थ शरीर तथा मन के लिए मनोरजन अत्यत आवश्यक था। विभिन्न प्रकार के खेल तथा आखेट आदि उस समय प्रचलित थे। पूर्व वैदिक युग मे लोगो के मनोरजन का साधन उत्सव रहा। सगीत के प्रति भी उनकी अभिरुचि थी। नृत्य, गान तथा वाद्य के माध्यम से मनोरजन होता था। सगीत के अनेक वाद्यो वेणु, नाड़ी, आघाट तथा मृदग आदि का प्रयोग होता था। आखेट भी मनोरजन का एक साधन ही था। घरेलू खेलो मे चौपड़ अधिक प्रिय था। सगीत तथा नृत्य मे स्त्री-पुरुष दोनो भाग लेते थे।

पूर्व मध्य काल मे नृत्य, गान, सगीत तथा नाटक के आयोजन होते थे। वीणा, नगाड़ा

---

231 गणेश पुराण, 1 48 19-21

232 वही, 1 55 19

233 वही, 3 13 46

234 वही, 2 117 38

235 वही, 2 18 5

236 वही, 2 128 25

आदि का वादन शास्त्रीय रूप मे प्रचलित था। पूजा-अर्चना के समय भी इनका प्रयोग किया जाता था। जलक्रीड़ा भी मनोरजन का माध्यम थी। तात्पर्य यह है कि समाज मे विभिन्न प्रकार के मनोरजन के साधन उपलब्ध थे, जिनका लोग अपनी रुचि के अनुसार चुनाव करते थे तथा मन एव शरीर दोनो से स्वस्थ रहते थे। समाज मे मनोरजन अभिजात तथा धनिक वर्ग के अतिरिक्त सामान्य जनता के लिए भी था।

गणेश पुराण मे भी तत्कालीन समय मे प्रचलित विभिन्न खेलो, नृत्य, गीत, सगीत, उत्सव आदि के उल्लेख है जो उस समय के समाज का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते है। इसमे वर्णित है कि भगवान शिव को विष्णु ने गधर्व रूप धारण कर अपने गायन से सतुष्ट किया। विविध प्रकार से वीणावादन किया तथा आलाप सुनाये। स्कध, गणेश्वर, देवी पार्वती व ऋषि-मुनियो को गायन से सतुष्ट किया।[237] राजा भीम के दो मत्री मनोरजन तथा सुमत, आध्यात्म विद्या, वेदत्रयी, वार्ता तथा सोलह कलाओ मे निपुण थे।[238] एक अन्य स्थल पर उल्लिखित है कि देवता की स्तुति मे गायन किया गया तथा कुछ लोग देवभक्ति मे नाचने भी लगे।[239] एक अन्य प्रसग मे वर्णन है कि राजा और दक्ष के सत्कार के लिए नगर के लोग तथा अप्सराये नृत्य करती थी। गान विद्या मे निपुण गधर्व दौड़कर उस नगर मे आये। चारो ओर से उठता हुआ जयघोष तथा वाद्य- स्वर आकाश मे फैल गया।[240] रुक्मागद के कौण्डिन्यपुर आने पर वाद्यघोष, ब्राह्मणो के आशीर्वचन तथा गधर्व-अप्सराओ के सगीत से दिशाएँ गुजायमान हो गयी।[241] गीत, वाद्य, नृत्य तथा उत्सव कराने का भी उल्लेख है।[242] यज्ञ आदि उत्सवो पर भी नृत्य का आयोजन होता था। उल्लिखित है कि एक ओर विद्वान् लोग परस्पर शास्त्रो पर विवाद करते थे। दूसरी ओर अप्सराये नृत्य करती थी।[243] इसमे यह वर्णित है कि गधर्व व अप्सराये ताल-मृदग बजाते हुए तरह-तरह के गान व नृत्य कर रहे है। एक बाजे को गधर्वअस्त्र से अभिमत्रित किया गया जिसको सुनकर सभी मत्रमुग्ध हो जाते थे।[244] ऐसे ही एक अन्य प्रसग मे उल्लिखित है कि नृत्योत्सव के आयोजन मे शिव, गणेश तथा अन्य देवता नृत्य करने लगे।

---

237 गणेश पुराण, 1 17 19-20

238 वही, 1 19 14

239 वही, 1 22 16

240 वही, 1 26 6

241 वही, 1 35 19

242 वही, 1 54 34

243 वही, 2 30 18

244 वही, 2 68 3

मनुष्य, पशु, वृक्ष, यक्ष, राक्षस, मुनि, चौदह भुवन के वासी, इक्कीसो सर्गो के देवता, बालक के प्रभाव से नाचने लगे, जिससे दसो दिशाएँ निनादित हो गयी।[245] सामाजिक दृष्टि से गणेश पुराण मे पूर्व मध्यकाल की वर्ण-व्यवस्था, स्त्री-दशा, रहन-सहन, रीति-रिवाज, आचार-विचार, वस्त्राभूषण आदि का परिचय मिलता है। वर्ण-व्यवस्था तथा उसमे हो रहे परिवर्तन का उल्लेख तत्कालीन अन्य ग्रथो मे भी है।[246] निस्सदेह गणेश पुराण धार्मिक महत्व के साथ ही सामाजिक तथा सास्कृतिक तथ्यो की दृष्टि से भी मूल्यवान है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना के मूलभूत तत्व

पूर्व मध्यकाल मे नगरो के ह्रास के कारण ब्राह्मण परिवार वहाँ से विसर्जित होकर अन्यत्र जाकर बस रहे थे। 400-1100 ई॰ के बीच ब्राह्मणो ने कुल अडतीस बार उत्प्रवास किया।[247] कई ऐसे नये प्रमाण उपलब्ध है जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि अपने मूल नगरो या उनके आस-पास के स्थानो को छोडकर ब्राह्मण परिवार सबसे पहले उन नये स्थानो पर मे आ बसे जहाँ उन्हे वशगत आश्रय मिलने की सभावनाएँ दिखायी दी। कुछ अप्रवासी ब्राह्मण भूमिदान या ग्रामदान प्राप्त करने मे सफल हुए।[248] पूर्व मध्यकाल की यह सामाजिक व्यवस्था गणेश पुराण मे परिलक्षित होती है। ब्राह्मणो को भूमिदान देने और महत्व की ओर बढने की बात बार-बार कही गयी है। उड़ीसा से प्राप्त सातवी शताब्दी के एक दानपत्र मे एक ब्राह्मण परिवार का उल्लेख है, जो मूलत मथुरा का रहने वाला था। किन्तु तब उल्लखेट नगर मे निवास कर रहा था। उसे वहाँ से बीस मील दूर का एक गाँव दान मे दिया गया था।[249] गुजरात क्षेत्र से प्राप्त सातवी शताब्दी का एक अन्य अभिलेख बताता है कि पाँच अथर्ववेदी ब्राह्मण परिवार जो मूलत मरुकच्छ नगर के रहने वाले थे, बाद मे मुख्य नगर भेरज्जक (आधुनिक बोरजई) मे आकर रहने लगे थे। जब उन्हे वहाँ से बारह मील की दूरी पर माफी की जमीन दान मे मिली तो वे अतत वही जाकर बस गये।[250] गुजरात क्षेत्र से ही प्राप्त एक अन्य दानपत्र मे ऐसे ब्राह्मण परिवार का उल्लेख है जो कर्नाटक के उत्तरी कनारा

---

245 गणेश पुराण, 2 90 8-10

246 हरिवश पुराण, 116 6

शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति युगक्षये।

247 नदी, रमेन्द्रनाथ, प्राचीन भारत मे धर्म के सामाजिक आधार, ग्रथशिल्पी, नई दिल्ली, 1998, पृ॰ 26

248 वही, पृ॰ 39

249 ई॰ आई XXII, स॰ 22, (द्रष्टव्य नदी, रमेन्द्रनाथ, पृ॰ 39)।

250 सी॰ आई॰ IV ,स॰ 16, उद्धृत-नदी रमेन्द्रनाथ, वही, पृ॰ 39

जिले के बनवासी नामक सुदूरवर्ती स्थान से चलकर पहले नवसारिका (नौसरी) मे रहने लगा और फिर वहॉ से भी निकलकर चार मील दूर के गॉव मे जा बसा।[251] आठवी शताब्दी के कलचुरी दानपत्र मे पद्मनाथ नाम के एक बाह्मण का उल्लेख मिलता है जो कन्नौज नगर के समीपवर्ती श्रवणभद्र से आकर कलचुरी राजाओ की राजधानी रत्नपुर मे रहने लगा था। उसके ज्योतिष सबधी ज्ञान से प्रभावित और प्रसन्न होकर कलचुरी राजा ने उसे छिछोली गॉव दान मे दिया।[252] गुजरात के भरूच जिले से प्राप्त सातवी शताब्दी के एक शिलालेख मे दो ब्राह्मण दलो का उल्लेख मिलता है। एक पैतीस ब्राह्मण परिवारो के मुखियो का था जो ऋग्वेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी सप्रदायो मे दीक्षित थे और जेबुसरस से आकर शिरीषपद्रक गॉव मे बस गये थे। यह गॉव उन्हे और भरुकच्छ (आधुनिक भरूच) से आकर वहॉ बसे पॉच अथर्ववेदी ब्राह्मण परिवारो को सयुक्त रूप से दान मे प्राप्त हुआ था।[253] स्पष्ट है कि बडे पैमाने पर दिये जाने वाले धार्मिक भूमिदानो के माध्यम से कबायली लोगो को ब्राह्मणीय व्यवस्था मे शामिल किया गया। भारतीय आर्यो तथा कबायली लोगो के बीच व्यापक सास्कृतिक सम्पर्क तथा आदान-प्रदान हुआ। परिणामत मध्य देश के बाहर भी ब्राह्मणीय धर्म का प्रसार हुआ।[254] सातवी शताब्दी मे आध्र, असम, बगाल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु आदि क्षेत्रीय सास्कृतिक इकाइयो का रूप कुछ-कुछ उभरने लगा। देश के अन्य भागो मे भी पृथक क्षेत्रीय एव सास्कृतिक पहचान ने स्वरूप ग्रहण करना प्रारभ कर दिया था।[255] पूर्व मध्यकालीन भारत मे सामाजिक परिवर्तनो की पृष्ठभूमि इस काल की कतिपय नयी प्रवृत्तियो ने तैयार किया। इनमे से सबसे महत्वपूर्ण भूमिदान की प्रवृत्ति थी। राजा और सामत धर्म-कर्म से सम्बन्धित व्यक्तियो, समूहो और सस्थाओ तथा सरकारी अमलो को बडे पैमाने पर भूमि और राजस्व के अधिकार दान करने लगे।[256] इन दानो ने ब्राह्मणो के नगर से बाहर जाकर बसने व उन स्थलो पर ब्राह्मणीय सस्कृति के प्रसार मे महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। गणेश पुराण मे ब्राह्मणो को दान देने, उन्हे पूजनीय व महत्वपूर्ण मानने तथा उनके शाप से भयभीत होने के विभिन्न उदाहरण प्राप्त होते है, जिसके आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि गणेश पुराण का रचना काल अस्थिरता व परिवर्तन का काल था, जिसके परिणामस्वरूप

---

251 सी० आई० IV ,स० 30, उद्धृत- नदी रमेन्द्रनाथ, प्राचीन भारत मे धर्म के सामाजिक आधार, पृ० 39

252 वही, खण्ड II,स० 83, उद्धृत-वही

253 वही, स० 16, सातवी शताब्दी मे जारी किया गया।

254 शर्मा, आर० एस०, पूर्वमध्यकालीन भारत का सामती समाज और सस्कृति, पृ०30

255 शर्मा, आर०एस०, पूर्व मध्यकालीन भारत का सामती समाज और सस्कृति, पृ०-32

256 शर्मा, आर०एस०, इडियन फ्यूडलिज्म, पृ०-154

परिधीय क्षेत्रो मे ब्राह्मण सस्कृति का प्रसार हो रहा था। उन क्षेत्रो मे ब्राह्मण अपनी स्थिति को दृढ़ बनाने के लिए स्वय को धर्म के माध्यम से महिमामडित कर रहे थे।[257] स्वर्णदान व भूमिदान करने के लिए लोगो को अभिप्रेरित करते थे। इन सभी तत्वो का निरूपण गणेश पुराण मे प्राप्त होता है, जिससे उसकी ऐतिहासिक महत्ता स्थापित होती है।

उपासना पद्धति के अन्तर्गत गणेशपुराण मे यज्ञो आदि का उल्लेख नही है अपितु जप, तप, ध्यान, योग आदि पर बल दिया गया है, जो पूर्व मध्यकालीन धार्मिक तत्वो का ही निरूपण करता है।[258] वस्तुत ईस्वी सन् की आरभिक सदियो के दौरान और उसके पश्चात् भी, धार्मिक कर्मकाण्डो तथा आचार-व्यवहार मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।[259] लगभग पॉचवी शताब्दी से छोटी-छोटी निजी गृहस्थियो की स्थापना, सुरक्षित पारिवारिक भूसपत्ति के उदय तथा मुद्रा के प्रयोग के साथ घरेलू पूजा-अर्चना और महायज्ञो का जो चलन आरभ हुआ था, दूसरी शताब्दी के बाद लोकप्रिय नही रह गया था। यद्यपि सातवाहन शासक इन यज्ञो मे दक्षिणा देने के लिए हजारो कार्षापण व्यय करते थे किन्तु परवर्ती काल मे बहुत कम राजा इस तरह के यज्ञ करते थे। सामान्य लोगो के बीच तो इस प्रथा का अस्तित्व ही मिट गया था।[260] गुप्तोत्तर काल के पुराणो मे तीर्थयात्रा तथा दान की महिमा का बखान किया गया है। यज्ञो का स्थान इन पौराणिक धर्माचरणो ने ले लिया। दूसरी ओर, अपनी सेवाएँ अपने सामती प्रभु को समर्पित करके उसके प्रसाद या कृपा के रूप मे इससे राजस्विक अधिकार, भूमि तथा सुरक्षा प्राप्त करने के बढ़ते रिवाज के अनुरूप धार्मिक क्षेत्र मे भी पूजा की प्रथा तेजी से विकसित हुई। पूजा के साथ भक्ति का सिद्धात भी जुडा।[261] इन तत्वो का निरूपण गणेश पुराण मे विस्तार से है।

स्त्री-दशा के सदर्भ मे गणेश पुराण मे दो तथ्य स्पष्ट रूप से उभरकर दिखायी देते हैं। 1 स्त्रियो का नैतिक पतन, 2 स्त्रियो को पुरुषो की अपेक्षा निम्न स्थान मिलना।

इसकी पृष्ठभूमि मे पूर्णतया तत्कालीन सामाजिक व राजनैतिक स्थितियॉ कार्य करती है। सामंती युग मे लड़ाई-भिड़ाई का काम चलता रहता था जिसमे स्वभावत पुरुष ही भाग लेते थे। इसलिए उस काल मे स्त्रियो को उत्तरोत्तर निम्न स्थान देने और उन्हे सम्पत्ति

---

257 नदी, रमेन्द्रनाथ, वही, पृ० 78

258 पाठक, पी० एन०, डेवलपमेट ऑफ द रिचुअल ऑफ श्राद्ध इन अर्ली स्मृतीज एण्ड पुराणाज, 1978 मे हैदराबाद मे हिस्ट्री काग्रेस मे प्रस्तुत पत्र

259 नदी, रमेन्द्रनाथ, वही, पृ० 48

260 शर्मा, इडियन फ्यूडलिज्म, पृ० 155

261 शर्मा, आर० एस०, पूर्वमध्यकालीन भारत का सामती समाज और सस्कृति, पृ० 95

मानने की बढती प्रवृत्ति दिखायी देती है। सामती दौर मे पुरुषो के प्रभुत्व मे अपूर्व वृद्धि हुई और उनकी सम्पूर्ण श्रेष्ठता के परिणामस्वरूप स्त्रियो पर तरह-तरह की बदिशे लगायी गयी। यहाँ तक कि सती होना उनके लिए धर्म बना दिया गया। सामाजिक परिवर्तन के इस काल मे स्वभावत पुत्र का महत्व बढ़ गया। गणेश पुराण मे भी बलशाली और सामर्थ्यवान पुत्र की प्राप्ति हेतु अनेक व्रत व जप-तप का विधान बताया गया है।

प्रस्तुत पुराण मे बहुतायत से गणेश-तीर्थो का उल्लेख है। जिन स्थानो को तीर्थ घोषित किया गया है उनमे नदियो के घाट, नदी तट, जगलो मे स्थित ऋषि-मुनियो के आश्रम, पर्वत-घाटियाँ, महत्वपूर्ण नगर आदि सभी सम्मिलित है। किसी स्थान विशेष को कभी किसी देवता ने तीर्थ घोषित किया है तो कभी किसी देवभक्त ने। पुराणो मे तीर्थो की उद्घोषणा को भी [262] हाजरा एव रमेन्द्र [263] ने सामाजिक व आर्थिक सदर्भो मे व्याखापित किया है। 'तीर्थ' (धार्मिक स्थल) शब्द की अवधारणा धर्मनिष्ठा के रूप मे है। आम जनता द्वारा तीर्थयात्रा करने का सर्वप्रथम उल्लेख विष्णु स्मृति (तीसरी शताब्दी) मे हुआ है।[264] इसके बाद के लगभग सभी पुराणकारो ने इसका उल्लेख किया है। तीर्थ स्थलो की सख्या भी लगातार बढती गयी। एक नयी पुराण विद्या या मिथक शास्त्र की रचना हुई। तीर्थो के साथ धार्मिक भावनाएँ जुड़ती गयी। तीर्थ स्थल पर दान-पुण्य करने का विधान किया गया।[265] बाद के अन्य पुराणो मे जिन स्थानो को तीर्थस्थलो की सूची मे रखा गया है उनमे से कई महत्वपूर्ण प्राचीन नगर है जो पुरातात्विक साक्ष्यो के आधार पर आरभिक मध्यकाल के दौरान ही अवसानोन्मुख हो चुके थे। इन्ही मे से कई ध्वस्त नगरो को पुराणकारो ने बडे चातुर्य से गुणगान करते हुए उन्हे तीर्थ घोषित कर दिया। पुराणो मे तीर्थस्थानो से सम्बन्धित जो अध्याय सम्मिलित है, और जिन्हे हाजरा बहुत बाद के अर्थात् 700-1400 ई० के बीच के क्षेपक मानते है [266], उनमे भी उपर्युक्त प्रवृत्ति का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन मिलता है। पुराणो मे तीर्थ स्थानो की सख्या लगातार बढती गयी है। किसी-किसी पुराण मे तो किसी तीर्थ विशेष का माहात्म्य बताने के लिए कई अध्याय रचे गये। हाल मे हुए अनुसधान कार्यो से तीर्थ स्थानो की सख्या के बारे मे यह स्पष्ट हो गया है कि हर पुराण की रचना के साथ उसकी सख्या लगातार बढती ही गयी। अर्थात् तीर्थस्थलो की सूची मे प्राचीन ध्वस्त नगरो के नाम जुड़ते चले गये। कालान्तर मे ऐसे नगरो के नाम भी

---

262 हाजरा, आर० सी०, स्टडीज इन द पौराणिक रिकार्डस, अध्याय-V

263 नदी, रमेन्द्रनाथ, प्राचीन भारत मे धर्म के सामाजिक आधार, पृ० 96

264 वही, पृ० 44

265 वही, पृ० 44

266 हाजरा, आर० सी०, स्टडीज इन द पौराणिक रिकार्डस, दिल्ली, 1975, अध्याय-IV

सम्मिलित हो गये जो परम्परागत सस्कृत-आधारित ब्राह्मण सस्कृति की परिधि से बाहर के थे।[267] नगरो के क्षय और कालान्तर मे उनमे से बहुतो के तीर्थ घोषित हो जाने तथा दान-पुण्य के लिए उन्हे उपयुक्त स्थान मान लिये जाने की इन दोनो घटनाओ को अलग-अलग करके नही समझा जा सकता। 'नगर' और 'तीर्थ' शब्द दो भिन्न प्रकार की बस्तियो के वाचक हैं। इन दोनो का सामाजिक अर्थशास्त्र अलग-अलग तो है, किन्तु दोनो मे कार्य-कारण सम्बन्ध अवश्य दृष्टिगत होता है। तत्कालीन नगर उन्नतिशील बाजार-अर्थव्यवस्था के प्रतीक थे। वहॉ सस्कार आधारित उपहार-विनिमय व्यवस्था प्रचलित थी। इन दोनो व्यवस्थाओ के पनपने का मुख्य आधार नगरवासी गृहस्थो का सुसम्पन्न होना था। इसलिए जब इन नगरो का क्षय हुआ तो नगर आधारित यजमानो की समृद्धि भी प्रभावित हुए बिना नही रही। यजमानो का वैभव कम होना ही नगरो मे सस्कार प्रधान धार्मिकता के क्षय का कारण बना।[268] तीर्थ स्थापना के मूल मे जो अवधारणा काम कर रही थी, वह यह थी कि सामान्यत सभी बस्तियो मे और विशेषत क्षतिग्रस्त नगरो मे उपहार-विनिमय की सभावनाओ को पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न किया जाये। तीर्थो के स्थापित हो जाने पर मध्यकालीन दानोन्मुखी और कृषि आधारित उपहार-विनिमय व्यवस्था के साचे मे ढली इन तीर्थ यात्राओ से पूर्व प्रचलित सस्कार-प्रधान उपहार-विनिमय व्यवस्था अपने सीमित उद्देश्य की प्राप्ति मे सफल सिद्ध हुई, क्योकि इसने उन यजमानी ब्राह्मणो को जीवकोपार्जन का वैकल्पिक कर्मकाण्ड विषयक आधार प्रदान किया, जो क्षयग्रस्त नगरो मे रह रहे थे और वशगत सरक्षण प्राप्त किये हुए थे। तीर्थो के महत्व तथा वहाँ ब्राह्मणो के सरक्षण का उल्लेख अनेक पुराणो जैसे, वराह [269] कूर्म [270] मत्स्य [271] आदि मे प्राप्त होता है। नदी महोदय के अनुसार जिन अधिकाश नगरो को पुरातत्वविदो ने तीसरी और चौथी शताब्दी मे पूरी तरह से उजडे, या काफी बिगड़ी स्थिति वाले, नगर कहा है, वे वही नगर थे जहॉ से ब्राह्मण परिवार पॉचवीं-ग्यारहवी शताब्दी के बीच पलायन कर गये थे। इस कालखण्ड के उपलब्ध पुरालेखो मे इन प्रवास घटनाओ का

---

267 पी०एन० पाठक, डेवलपमेट ऑफ द रिचुवल ऑफ श्राद्ध इन अर्ली स्मृतीज एड द पुराणाज, हैदराबाद मे 1978 मे सम्पन्न भारतीय इतिहास काग्रेस के 39वे अधिवेशन मे प्रस्तुत प्रपत्र

268 नदी, रमेन्द्रनाथ, प्राचीन भारत मे धर्म के सामाजिक आधार, पृ० 45

269 वराह पुराण, 163 51,
ब्राह्मणान् स्थापयित्वा तु मया तुल्यान् महौजस ।
षड्विंशति सहस्त्राणि वेद वेदागपारगान् ।।

270 कूर्म पुराण, II 36 26

271 मत्स्य पुराण, 183 72

उल्लेख मिलता है। वे वही नगर है जिन्हे स्मृतियो और पुराणो मे तीर्थ कहा गया है। कुछ नगरो मे क्षय, प्रवास और पवित्रीकरण ये तीनो प्रक्रियाएँ साथ-साथ दृष्टिगोचर होती है।[272] गणेश पुराण मे भी यह प्रवृत्ति स्पष्टत देखी जा सकती है। पुराणो मे तीर्थयात्रा से सबधित अशो का अतिम कालानुक्रम हाजरा ने प्रस्तावित किया है। उनका मानना है कि क्षयमाण नगरो को तीर्थ घोषित करने का विचार आठवी शताब्दी से पहले का नही है।[273] गणेश पुराण मे बहुतायत से उल्लिखित तीर्थस्थलो की पृष्ठभूमि मे भी सभवत यही मानसिकता सक्रिय रही होगी। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य गणेश पुराण मे दिखायी देता है और वह है दान-दक्षिणा के बढते प्रचलन का। स्थान-स्थान पर ब्राह्मणो को दान-दक्षिणा देने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया गया है। इतिहास को सामाजार्थिक दृष्टिकोण से व्याख्यायित करने वाले इतिहासकारो ने पुराणो मे उपलब्ध इस विवरण की सामाजार्थिक व्याख्या की । इस सदर्भ ने विद्वानो का मत है कि पूर्व मध्यकाल मे तथा मध्यकाल मे, यजमानी सम्बन्धो के बदलते सामाजिक सदर्भ को समझने के लिए हमे इसे नगरो के क्षय और उसके परिणामस्वरूप नगरवासी यजमानो की पूरी पीढी के समाप्त हो जाने से जोडकर देखना होगा। नगरो के नष्ट हो जाने पर जब आरभिक मध्यकाल मे ग्राम आधारित सामाजिक अर्थव्यवस्था का विकास हुआ तो ब्राह्मणो के लिए यह भी आवश्यक हो गया कि वे इस नयी व्यवस्था के अनुरूप अपने लिए दान ग्रहण करने जैसे रोजगार के नये साधनो की तलाश करे। इस तरह से तत्कालीन हिन्दू शास्त्रो और धर्मग्रथो मे, विशेषकर पुराणो मे, इससे सम्बन्धित जो विधि-विधान आये है वे एक तरह से परम्परागत यजमानी ब्राह्मणो के हितो का ध्यान रखते हुए ही बनाये गये हैं। इनमे दान सम्बन्धी कई नये-नये अनुष्ठानो का विधान हुआ है।[274] ब्राह्मणो-पुरोहितो मे जो नयी जागरूकता पैदा हुई, उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति मत्स्यपुराण करता है। इसमे कुल 291 अध्यायो मे से 135 अध्यायो का सम्बन्ध अनुष्ठानो की विशिष्ट कोटियो से हैं, जिनका केन्द्रीय विषय या तो कोई दान-कर्म रहा है या जो किसी अन्य अनुष्ठान का अनिवार्य अग बनकर उभरा है। पूर्व मध्यकाल मे 'पुण्य' की प्राप्ति एक सामाजिक बाध्यता बनती जा रही थी, क्योकि ऐसा माना जाता था कि इससे यजमान को अपने लिये विधिसम्मत अधिकारो को प्राप्त करने और सामाजिक वस्तुओ का उपभोग करने के निमित्त 'अपवित्र' स्थिति से बचने मे सहायता मिलेगी। बड़े नगरो मे उपहार-विनिमय अर्थव्यवस्था समाप्ति की ओर अग्रसर थी और उसके स्थान पर क्रमश 'वाणिज्यगत निर्वैयक्तिक बाजार-अर्थव्यवस्था' से सन्निकटता बढ़ती जा रही

---

272 नदी, रमेन्द्रनाथ, वही, पृ० 50

273 हाजरा, वही

274 नदी, रमेन्द्रनाथ, वही, पृ० 57

थी।[275] 'दान करो और पुण्य कमाओ' इस उपदेश को उपर्युक्त क्षतिपूर्ति के एक साधन के रूप मे ग्रहण किया गया। दान और पुण्य के बीच का यह आदान-प्रदान तीसरी और चौथी शताब्दी से ही यजमानी सबधो पर छाना शुरू हो गया था। ठीक उसी समय वाणिज्यगत निर्वैयक्तिक बाजार-अर्थव्यवस्था अवनति की ओर अग्रसर हो चुकी थी। इस रूप मे उपहार-विनिमय के मूल्यो के पुनर्जन्म की जो बात कही गयी है, उसे बाजार व्यवस्था के मूल्यो के 'क्रम-विपर्यय' का कारण मानकर केवल कार्य-कारण सम्बन्धो की कसौटी पर कार्य के रूप मे ही ग्रहण करना चाहिए।[276] इस पुनर्जन्म का सीधा सम्बन्ध नगरो के क्षय और वहॉ प्रचलित सस्कार आधारित उपहार-विनिमय अर्थव्यवस्था के क्रमश क्षरण से है। पूर्व मध्यकालीन स्मृति ग्रथो और पुराणो के ग्राम और कृषि आधारित तथा दानोन्मुखी यजमानी सम्बन्धो को विशेष महत्व प्राप्त हुआ। यजमानी सम्बन्धो मे अनुष्ठानपरक पूर्वग्रह मे भी अनुकूल परिवर्तन दिखते है।[277] पहले जो यज्ञपरक धार्मिकता प्रचलित थी, वह एक आम नागरिक गृहस्थ की समझ से परे का कर्मकाण्ड था। उसमे परिवर्तन हुआ और अब अधिक नियमित और अनिवार्य सस्कारो ने उसका स्थान ग्रहण किया। गृह सूत्रो मे ऐसे चालीस सस्कारो का उल्लेख मिलता है।

एक अन्य बात और ध्यान देने योग्य है कि पूर्व मध्यकाल मे जो सस्कार-कर्म किये जाते थे या कि उन्हे सम्पन्न हो जाने पर जो धर्मार्थ दान दिया जाता था, उसके पीछे यह भावना निहित थी कि उनके या उसके बदले मे यजमान का शरीर और आत्मा दोनो ही पवित्र हो जायेगे। यही नही, यह भी पूरी तरह से प्रचारित किया गया कि सस्कार-कर्म के निर्वाह और उसके बाद दान देने से यजमान अपनी मृत्यु के बाद आवागमन के चक्र से मुक्त हो जायेगा और उसकी आत्मा परमात्मा मे जा मिलेगी।[278] ब्राह्मणो के हित की दृष्टि से विचार करे तो स्पष्ट होता है कि इन नये दान सम्बन्धी अनुष्ठानो से उन्हे जीविकोपार्जन का एक विश्वसनीय साधन तथा सामाजिक प्राधिकार का एक प्रभावी स्रोत मिल गया। यजमानो के हित की दृष्टि से विचार करे तो पायेगे कि इन अनुष्ठानो का पालन करते रहने से वे अशुद्धि स्थितियो से बचे रह सके अन्यथा उन्हे अपनी शुद्ध स्थिति से और

---

275 थापर, रोमिला, दान एड दक्षिणा एज फार्म्स ऑफ एक्सचेज', एनशिएट इडियन सोशल हिस्ट्री, दिल्ली, 1978, पृ० 116-17

276 दान नामक सस्था पर बल दिये जाने का अभिप्राय है, बाजार-व्यवस्था के मूल्यो को उलटने का प्रयत्न करना तथा उपहार-विनिमय के मूल्यो को जन्म देना।

थापर, रोमिला, वही पृ०117

277 नदी, रमेन्द्रनाथ, वही, पृ० 53

278 ताबिया, एस० जे०, फ्राम वर्ण टू कास्ट थ्रू मिक्स्ड यूनियस, कैंब्रीज, 1973, पृष्ठ 89

परिणामस्वरूप अपने वर्ण[279] जाति से हाथ धोना पडता। वर्ण-जाति च्युत होने का, और विशेष रूप से उन लोगो के वर्ण-जाति च्युत होने का, जो पहले से ही बहुत अधिक 'शुद्ध' स्थिति को प्राप्त किये हुए है,[280] मतलब था उनका उन सभी हित-लाभो और विशेषाधिकारो से वचित हो जाना जो सबधित वर्ण के लोगो को सामान्यत उपलब्ध थे।[281] शुद्धता का यही समष्टि चरित्र दो अन्य बातो का भी आधार बना। पहला उन वर्गो को रिझाना जो अपने से कम शुद्ध होने के बावजूद अधिक शक्तिशाली थे और जिनके हाथ मे सामाजिक वस्तुओ के वितरण का नियत्रण था। दूसरा, उन तिरस्कृत और अशुद्ध वर्गो को प्रभावी रूप से अपने अधीन करना जो उनसे अधिक शुद्ध वर्णो के हित-लाभ के लिए समाजोपयोगी वस्तुओ का उत्पादन करते थे। उच्च कुलोत्पन्न मध्यकालीन यजमानो को एक अन्य लालच यह भी दिया गया कि यदि वे दान-पुण्य करते रहेगे तो उनकी वर्तमान सामाजिक स्थिति के निर्धारण मे पूर्वजन्म के कर्मो का कोई प्रभाव नही पडेगा।[282] उन्हे यह बताया गया कि महादान और तीर्थयात्रा करने से उनकी वर्तमान निम्न स्थिति मे गुणात्मक परिवर्तन आ सकता है। जैसे, यदि वे क्षत्रिय नही है तो क्षत्रिय के स्तर को प्राप्त कर सकते है तथा कोई क्षत्रिय ब्राह्मण का स्तर भी प्राप्त कर सकता है। सामान्यत इस प्रकार का स्तरारोहण केवल पुनर्जन्म से ही प्राप्त किया जा सकता था और वह भी पूर्वजन्म मे शास्त्रीय तरीके से आचरण करने के आधार पर ही।

स्पष्ट है कि 'दान' को विभिन्न सामाजिक और आर्थिक कारणो से महिमामडित किया गया। दान को एक ऐसा शस्त्र बताया गया जिसके प्रयोग से यजमान के सभी पाप कट जाते है।[283] पूर्व मध्यकालीन पुराणो मे विभिन्न महादानो से सम्बन्धित अनुष्ठानो वाले प्रकरण मे पुण्य कमाने, पाप नष्ट करने और पवित्रता प्राप्त करने के साधन के रूप मे दान की विस्तृत महिमा बखानी गयी है। इस सन्दर्भ मे प्रिचर्ड महोदय का मत उल्लेखनीय है।[284] दान सम्बन्धी

---

279 ताबिया, एस० जे०, फ्राम वर्ण टू कास्ट थ्रू मिक्स्ड यूनियस, कैंब्रीज, 1973, पृ० 91

280 नदी, रमेन्द्रनाथ, वही, पृ० 84

281 श्रीवास्तव, एम० एन०, ए नोट आन सस्क्रिटाइजेशन एड वेस्टर्नाइजेशन, कास्ट इन मार्डन इडिया एड अदर एसेज, मुम्बई, 1962, पृ० 27

282 वही, पृ० 38

283 मत्स्य पुराण, 275 14 'दानशस्त्राहतपातकानाम्'

284 प्रिचर्ड, ई० ई० एवास, न्यूर रिलीजन, आक्सफोर्ड, 1956, अध्याय VII।

आदिवासी न्यूर समाज मे बलिदान का वही महत्व था जो पूर्व मध्यकालीन ब्राह्मण समाज मे दान का था। पापो और उसके दुष्प्रभावो के बारे मे ब्राह्मणो और न्यूरो, दोनो की अवधारणाओ और मान्यताओ मे आश्चर्यजनक समानता दृष्टिगोचर होती है। एवास प्रिचर्ड के अनुसार, न्यूरो की मान्यता थी कि पाप, पापकर्ता का पीछा कभी नही छोड़ते, उसे नष्ट करके ही दम लेते है। पाप फैलता भी है और उसके दुष्प्रभाव को 'बलिदान' से नष्ट भी किया जा सकता है। मन को या आध्यात्मिक अपवित्रता को केवल बलिदान से ही बदला जा सकता है।

अनुष्ठानो या कर्मकाण्डो के प्रत्यक्षत तीन चरण पुराणो मे स्पष्ट होते हैं। पहला पापनाशन, दूसरा पुण्य प्राप्ति और तीसरा पवित्र हो जाना। किन्तु इनके पीछे जो प्रच्छन्न कारण दिखायी पडता है वह था, सामाजिक असतुलन को मिटने न देना तथा जो वर्ग पवित्र माना जाता था उसकी शक्ति को बढाते जाना। पुराणो मे वर्णित है कि अपवित्रता का मूल पाप है और इस पाप को 'पवित्र' के साथ शारीरिक स्पर्श से धोया जा सकता है। अर्थात् तीर्थयात्रा करके [285] या पवित्र जल मे स्नान करके या [286] पुण्यतोया नदी की मिट्टी से शरीर को रगडकर [287] या पुण्यवान पुरुषो के दर्शन लाभ से पाप नष्ट हो जाते है।[288] पहले तीन प्रकारो मे शरीर स्पर्श प्रधान है किन्तु चौथे प्रकार मे अर्थात् पुण्यवान पुरुषो के दर्शन लाभ वाले प्रसग मे शारीरिक स्पर्श अनिवार्य नही माना गया। कहा गया है कि इन पुण्य पुरुषो के शरीर से पवित्रता वायु मे प्रवाहित होकर अपवित्र लोगो को पवित्र कर देती है। इसका उल्लेख गणेश पुराण मे भी प्राप्त होता है कि मुद्गल ऋषि के वायुस्पर्श से दक्ष स्वस्थ हो गये।[289] ऐसे पवित्र सरोवरो का भी उल्लेख मिलता है जिनमे स्नान करने से व्यक्ति रोग व पाप से मुक्त हो सकता है।[290] तीर्थ यात्रा करने से भी कुष्ठरोग से ग्रस्त शूद्र दिव्यदेहधारी हो गया।[291] पुराणकार यह भी मानते है कि योग्य व्यक्तियो को दान देकर पापी पाप से मुक्त हो सकता है।[292] इस प्रसग मे पाप मुक्ति का माध्यम वे वस्तुएँ बनती है जो दान मे दी जा रही है। इन प्रसगो से स्पष्ट हो जाता है कि पवित्रता और अपवित्रता दोनो को ही ससर्गजनित माना गया है किन्तु पवित्रता का ससर्ग अपेक्षाकृत प्रबल है, क्योकि वह पापी के शरीर से पाप का नाश करने मे सक्षम है।[293] ताबिया महोदय का निष्कर्ष ध्यान देने योग्य है कि किसी भी शुद्ध पदार्थ से निकलने वाली वस्तु विशेषत शुद्धिकारक ही होती है। उदाहरण के लिए 'पचगव्य'। पवित्रता और अपवित्रता वाले इन प्रसगो मे प्रस्तुत तर्क-वितर्क का यही निष्कर्ष निकलता है कि वर्ण-व्यवस्था वाले समाज मे व्यक्ति की पवित्रता और उसकी शक्ति, दोनो ही तत्व एक दूसरे से जुडे हुए थे।

---

285 मत्स्य पुराण, 103 25

286 वही, 102 1

287 वही, 102 11

288 वही, 103 17

289 गणेश पुराण, 1 20 10-12

290 वही, 1 29 12-13,1 35 11-12, 1 35 16, 1 35 22-23

291 वही, 29 11

292 मत्स्य पुराण, 82 17
गणेश पुराण, 1 29 17

293 ताबिया, एस० जे०, फ्राम वर्ण टू कास्ट थ्रू मिक्स्ड यूनियस, कैम्ब्रिज, 1973

गणेश पुराण मे वर्णित दान सम्बन्धी अनुष्ठानो के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ब्राह्मणो मे यह जागरूकता बढ़ती जा रही थी कि कृषि अधिशेष ही उनकी जीविका का प्रधान साधन है। इसीलिए वे अनुष्ठान कर्म के बाद यजमानो से अधिकाधिक खाद्यसामग्री प्राप्त करने को लालायित रहते थे। इन विवरणो मे यजमानो के लिए यह सुझाव आया है कि वे ब्राह्मणो को भूमि और गॉव दान मे दे। गणेश पुराण मे ऐसा कोई अनुष्ठान नही मिलेगा जिसके पूरा होने पर दान के रूप मे खाद्य सामग्री देने का विधान न हो। इसमे उल्लिखित दान सबधी अनुष्ठानो को तीन कोटियो मे वर्गीकृत किया जा सकता है। पहली कोटि मे धान, शर्करा, घी, तिल, दही, मधु और खीर आदि का दान कराने का विधान है।[294] दूसरी कोटि मे स्वर्ण, रजत, रत्न और घरेलू उपयोग की कई अन्य वस्तुऍ जैसे, सूती वस्त्र, अच्छे किस्म के ऊनी वस्त्र तथा गोदान आदि सम्मिलित है।[295] तीसरी कोटि अचल सम्पत्ति की बनायी जा सकती है जिसमे भूदान व ग्रामदान सम्मिलित है।[296] मत्स्य पुराण मे तो ब्राह्मणो को दिये जाने वाले दानो मे भूमिदान को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। यदि अन्य सभी प्रकार के दानो को एक साथ रखकर उनका मूल्य निर्धारित किया जाये तो वह ब्राह्मण को दिये गये भूमिदान के धार्मिक महत्व के सोलहवे भाग के बराबर भी नही होगा।[297] स्पष्ट है कि गणेश पुराण मे तीर्थ, व्रत, त्यौहार, दान, विप्र पूजन आदि के वो सभी तत्व विद्यमान है जो तत्कालीन समाज की महत्वपूर्ण विशेषताऍ थी।

राजनीतिक स्थिति

किसी भी काल की राजनीतिक व्यवस्था तत्कालीन समाज की धुरी होती है। राजशासन मे राजा की स्थिति, उसकी भूमिका, मत्रिमण्डल का सहयोग, सेनापति-गुप्तचर व्यवस्था, ये सब शासन के अग है। समय-समय पर इनमे परिवर्तन होता रहता है। राजा के कर्तव्य, उसके धर्म आदि के विषय मे जगह-जगह उल्लेख होता रहा है।

इस दृष्टि से कौटिल्य कृत 'अर्थशास्त्र' का उल्लेख आवश्यक हो जाता है जिसमे राजशासन के सभी पक्षो का तर्कपूर्ण विश्लेषण किया गया है तथा जो आगे की शासन व्यवस्था मे भी आधार स्वरूप माना गया है। अर्थशास्त्र मे चार आधारो की चर्चा की गयी है जिसके अन्तर्गत धर्म, व्यवहार, चरित और राजशासन आते है। धर्म से तात्पर्य शास्त्रो के

---

294 गणेश पुराण, 1 23 10, 1 40 23, 1 29 42, 1 26 22

295 वही, 1 26 8, 1 26 22, 1 49 17, 1 50 29, 1 51 40

296 वही, 1 41 25, 1 26 22

297 मत्स्य पुराण, 283 13-14

विधान या सत्य से है, व्यवहार मे क्रय-विक्रय, ऋण-धरोहर, वेतन, मजदूरी आदि से सम्बन्धित सौदो के समादेश है। चरित का अर्थ है देशकाल, परिवार श्रेणी आदि से जुडे पारम्परिक नियम तथा राजशासन से राजा के आदेश तथा शाही सनद का अर्थ लिया जाता है। अर्थशास्त्र मे यह भी उल्लिखित है कि यदि इन चारो मे परस्पर असगति हो तो व्यवहार, धर्म, चरित तथा राजशासन-तीनो को निरस्त कर देता है।[298] पूर्व मध्यकालीन रचनाओ– नारदस्मृति, कात्यायन स्मृति, हरित स्मृति तथा अग्निपुराण[299] मे भी ऐसे कथन है।

गणेश पुराण के रचनाकाल मे भारतीय राजनीति, सामतवाद तथा उससे उत्पन्न विशिष्टताओ और समस्याओ से पूर्णतया घिर चुकी थी। सामतवादी राजनीति का प्रमुख तत्व था देश का छोटे राज्यो मे विघटन, सत्ता व शक्ति का विकेन्द्रीकरण तथा शक्तिशाली केन्द्रीय शक्ति का अभाव। इसका परिणाम विदेशी शक्तियो के भारत पर सफल आक्रमण के रूप मे सामने आया।[300] इन सबके मूल मे 'भूमिदान' की परम्परा को आरोपित कर सकते हैं, क्योकि भूमिदान की प्रवृत्ति ने ही सामतवाद को जन्म दिया। गुप्तकाल से ही ब्राह्मणो व अधिकारियो को भूमिदान देने की प्रवृत्ति उभरने लगी थी। जो भूमि ब्राह्मणो को दान मे दी जाती थी उसे 'ब्रह्मदेय' कहा गया।[301] भूमिदान सम्बन्धी सर्वप्रथम उल्लेख शक-सातवाहन के लेखो मे मिलता है।[302] गुप्तकाल से दान मे दी गयी भूमि मे स्थित चरागाहो, खानो, निधियो, विष्टि (बेगार) आदि राजस्व के समस्त साधनो को दानग्राही को सौंप देने की प्रथा आरभ हुई।[303] वाकाटक नरेश प्रवरसेन (5 वी शताब्दी) की चमक प्रशस्ति से इसकी सूचना मिलती है।[304] प्रो शर्मा का विचार है कि भारत मे सामतवाद का उदय, राजाओ द्वारा ब्राह्मणो और प्रशासनिक तथा सैनिक अधिकारियो को भूमि तथा ग्राम दान मे दिये जाने के कारण हुआ।[305] गणेश पुराण मे उल्लिखित तथ्यो पर गौर करे तो स्पष्ट होता है कि उसमे भूमिदान व ग्राम दान के प्रसग बहुतायत से है।[306] किसी गणतात्रिक शासन व्यवस्था का उल्लेख तो नही है लेकिन

---

298 अर्थशास्त्र,III 1 38

299 अग्नि पुराण, 253 3-4

300 यादव, बी० एन०एस०, वही, पृ० 132

301 शर्मा आर० एस०, इडियन फ्यूडलिज्म, पृ० 35

302 मजूमदार, बी० पी०, सोशियो इकोनॉमी हिस्ट्री ऑफ नार्दन इडिया, पृ० 211

303 दासगुप्ता, टी० सी० प्रासपेक्टस ऑफ बगाल सोसाइटी, पृ० 249-50

304 सिलेक्ट इसिक्रप्शस, जिल्द 1 भाग-III , न० 61, पक्ति 19,

305 शर्मा, आर० एस०, पूर्वमध्यकालीन भारत का सामती समाज और सस्कृति, पृ० 4

306 गणेश पुराण, 1 6 5, 'दुर्गमत्व गतो दैवात् पुत्रे राज्य निवेश्य स ।'

-1 3 48, -'कारथित्वा मत्र घोषैरभिषेक सुतस्य स ।'

शासन की विशिष्टता मे राजतत्रात्मक प्रणाली के साक्ष्य प्राप्त होते हैं।[307] राजा, मत्री[308] शासन की आनुवाशिक परम्परा [309] आदि राजतत्रीय शासन व्यवस्था को ही सिद्ध करते हैं। गणेश पुराण मे सोमकान्त के पुत्र हेमकण के सदर्भ मे उल्लेख मिलता है कि वह धर्म मे सलग्न, यज्ञ करने वाला, दान देने वाला तथा त्यागी राजा था।[310] इसके अतिरिक्त राजा के गुणो का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[311] एक स्थल पर कहा गया है कि कुशा का आसन व रुद्राक्ष की माला धारण करना राजधर्म नही है। राजा को अपने शत्रु पर कभी दया नही करनी चाहिए। जैसे रोग का विनाश अनिवार्य है, उसी प्रकार शत्रु पर भी निर्दयता दिखानी चाहिए।[312] एक अन्य स्थल पर नदी कहते है कि सभा मे आने वाले हर व्यक्ति का, चाहे वह साधु हो या असाधु, सुन्दर हो या असुन्दर, बलवान हो या दुर्बल सम्मान करना चाहिए। यही सनातन नीति है। जिस सभा मे ऐसा नही है, वह सभा व्यर्थ है। यह राजा का धर्म ही नही है, अपितु सभासदो का भी धर्म है।[313] राजा के रूप मे स्वय के सदर्भ मे सोमकान्त कहता है कि उसने साधुओ को, दीनो को, श्रुतियो को पुत्रवत पाला। राज्य की प्रजा को पुत्रवत रखा और इस तरह सारी पृथ्वी को वश मे कर लिया।[314]

इसी प्रसग मे आगे कहा गया है कि जैसे तेल के बिना दीपक और प्राण के बिना शरीर मृत होता है, धर्म का पालन करने वाले राजा के बिना राज्य की भी वही अवस्था होती है[315] अन्यत्र उल्लिखित है कि जिससे कभी बैर हो गया हो, उस पर विश्वास न करे। तभी राष्ट्र की वृद्धि होती है। शत्रु अगर आपद्ग्रस्त है तो उस पर आक्रमण करना अधर्म है। गुप्तचर राजा

---

307 गणेश पुराण, 1 1 37 गजायुत बलो धीमान विक्रमी शत्रुतापन ।

308 वही, 1 3 38 एवमासीत्सोमकात पृथिव्या राजसत्तम ।।

309 वही, 2 119 12

310 वही, 1 4 25, 1 26 22, 1 51 40-41 आदि
इत्युक्त्वा पूजयामास त कलाधर मादरात् ।
ददौतस्मै दश ग्रामान् गोवस्त्र भूषणानि च ।।

311 वही, 1 1 23
सौराष्ट्रे देवनगरे सोमकातोऽभवन्नृप ।
वेदशास्त्रार्थ तत्वज्ञो धर्मशास्त्रार्थ तत्पर ।।

312 वही, 1 1 27,
राजा पुत्र प्रोवान्न धर्मत , अमात्याना सुधर्माया पुत्रस्य वचनामृतम् ।

313 वही, 2 111 8-10

314 वही, 1 2 8

315 वही, 1 2 13

की ऑख होते है, दूत मुख होता है। गणेश पुराण मे उल्लेख प्राप्त होता है कि शासक का दण्ड सदैव तैयार रहना चाहिए। दण्ड के भय से ही लोग अपने कर्तव्य मे स्थिर रहते हैं। इसके बिना अपने-पराये का निर्णय नही हो सकता।[316] इस तथ्य से अनुमान किया जा सकता है कि राजा ही प्रमुख न्यायाधीश रहा होगा तथा राज्य कार्य मे दण्ड विधान की महत्वपूर्ण भूमिका रही होगी। अधार्मिक व्यक्ति की निन्दा-प्रशसा का कोई अर्थ नही है।[317] यदि किसी से अपराध हो गया तो और वह शरण मे आये तो उसकी रक्षा करनी चाहिए।[318] गणेश पुराण मे 'मत्रगुप्ति' शब्द का उल्लेख हुआ है। राजा को सदैव मत्रगुप्ति करनी चाहिए, क्योकि राजा व शासन उसी से दीर्घकाल तक चलता है।[319] मत्रगुप्ति से तात्पर्य–किसी निर्णय के सदर्भ मे मत्रियो से की जाने वाली मत्रणा या मशविरे से है। राजा के लिए काम के अतिरिक्त अन्य पॉच शत्रुओ पर विजय प्राप्त करना अनिवार्य बताया गया है।[320] राजा के गुणो का वर्णन करते हुए गणेश पुराण मे उसे किसी के वृत्तिच्छेद, प्रजाच्छेद, देवच्छेद, आराम चैत्यच्छेद से रोका गया है।[321] ब्राह्मण को ऋण से तथा गाय को कीचड़ से मुक्त करना राजा का धर्म बताया गया है।[322] राजा को यह भी निर्देश दिया गया है कि उसे अपने व्यवहार से मत्रियो, प्रजा तथा द्वारसेवको का मन प्रसन्न रखना चाहिए।[323] राजा के महत्व का प्रतिपादन भी हुआ है। 'प्रजावत्सल' राजा के बिना नगर वैसे ही शोभाविहीन रहता है जैसे तारो के रहने पर भी चन्द्रमा के बिना आकाश अधकार मे रहता है।[324] राजा के चुनाव के सदर्भ मे गणेश पुराण मे एक उल्लेख प्राप्त होता है कि कौण्डिन्यनगर के शासक चन्द्रसेन की मृत्यु होने पर उसके नि सतान होने के कारण उसके विशिष्ट हाथी द्वारा रत्नो की माला जिसके गले मे डाली गयी

---

316 गणेश पुराण, 1 3 32, 1 3 34
दडस्यैव मया लोका स्वे-स्वे धर्मे व्यवस्थिता।
अन्यथा नियमो नस्या त्पारक्य स्वीय मित्यद ।।

317 वही, 1 3 35

318 वही, 1 3 36

319 वही, 1 3 37
मत्रगुप्ति सदा कार्यातन्मूल राज्यमुच्यते।

320 वही, 1 3 37
कामादि षड्रिपून् हित्वा ततोऽन्यान् विजयीत च ।

321 वही, 1 3 37
वृन्तिच्छेद प्रजोच्छेद देवोच्छेदमेव च ।
आराम चैत्योच्छेद न कुर्या त्रृपसत्तम ।।

322 वही, 1 3 40

323 वही, 1 3 41

324 वही, 1 2 17

वही राजा बनाया गया।[325] उपर्युक्त विवरण का ऐतिहासिक अनुशीलन दो दृष्टियो से किया जा सकता है। प्रथमत यह विवरण तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था का यथार्थ चित्रण माना जा सकता है, द्वितीयत यह पारम्परिक विवरण अर्थात् पुरातन परम्पराओ की पौराणिक पुनरावृत्ति मात्र हो सकती है। हाथी द्वारा माल्यार्पण की पद्धति से राजा के चुनाव की कथा लोक विश्वास एव लोक मान्यताओ को प्रतिबिम्बित करती है, न कि वास्तविक राजनीतिक यथार्थ को। राजनीतिक दृष्टि से यह नितात अव्यवहारिक लगता है।

राज्याभिषेक के अवसर पर भव्य आयोजन किया जाता था। पताका तथा ध्वज लगाये जाते थे। नगर को सजाया जाता था। राजा के रथ के आगे मत्री चलते थे तथा नगरवासी व अप्सराये नृत्य करते हुए मत्रियो के आगे चलते थे।[326]

वशपरम्परा का उल्लेख भी गणेश पुराण मे है जो कि पुराणो व उपपुराणो के पचलक्ष्यो मे प्रमुख है। इसमे राजा दक्ष की वश परम्परा का आशिक उल्लेख है। दक्ष के वृहद्भानु नामक पुत्र हुआ। वृहद्भानु से खड्गधर तथा सुलभ दो पुत्र हुए। सुलभ से पद्माकर, पद्माकर से वपुर्दीप्ति तथा उससे चित्रसेन, चित्रसेन से भीम उत्पन्न हुए।[327] भीम को राजा के रूप मे पाकर प्रजा वैसे ही प्रसन्न हुई जैसे पति पाकर पत्नी या दृष्टि प्राप्त कर दृष्टिहीन प्रसन्न होता है।[328]

गणेश पुराण मे विभिन्न स्थलो पर 'अमात्य' शब्द का उल्लेख आता है। साथ ही मत्रियो व श्रेणी मुख्यो के सहयोग से राज्य चलाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[329] इसमे मात्र ब्राह्मण ही नही अपितु मत्रियो को भी भूमि दान देने की परम्परा का उल्लेख है जो निश्चयत पूर्व मध्यकालीन प्रवृत्ति की ओर इगित करता है।[330] ब्राह्मणो को भूमिदान देने की प्रथा का बहुतायत मे उल्लेख प्राप्त होता है।[331] इस भूमिदान की प्रथा ने पूर्व मध्यकाल के सामाजिक,

---

325 गणेश पुराण, 1 26 1-2
योगे चारूफले जने च नगरे नानाविधे मेलिते ।
माला रत्नमयी ददौ नरपते राज्ञी करेणो ।।
सप्रार्थ्य द्विरद कुरूष्व नृपति लोकेषु यस्ते मत ।

326 वही, 1 26 10-11

327 वही, 1 26 27-28

328 वही, 1 27 6-7

329 वही, 1 2 29
अमात्ययुक्त शाधित्व पुत्रवत्याखिला प्रजा ।

330 वही, 1 4 4
अमात्येभ्यो ददा वन्यान्ग्रामान्बहु धनान्यपि ।

331 वही, 1 41 25

आर्थिक व राजनैतिक स्थिति को महत्वपूर्ण स्तर पर प्रभावित किया। क्योकि कालान्तर मे यही दानग्राही सामत स्वतत्र शासक बन गये। फलत केन्द्रीय शक्ति कमजोर हो गयी व बाह्य आक्रमणकारियो ने इसका लाभ उठाते हुए भारत पर आक्रमण किया। पूर्व मध्यकाल मे राजनैतिक दशा बहुत कुछ राज्यो के आपसी सम्बन्ध पर निर्भर थी। राजाओ मे परस्पर युद्ध तो होते ही थे, विदेशी जातियो से भी उन्हे युद्ध करना पडता था। राजनैतिक दृष्टि से यह सक्रमण का काल था। विदेशी जातियो के शासन की स्थापना के फलस्वरूप देश के सामाजिक तथा राजनैतिक स्वरूप मे बदलाव आया। राज्यो की सुरक्षा की नीव युद्धो पर ही टिक गयी थी। राजाओ के बीच आतरिक युद्ध से देश की स्थिति प्रभावित थी। गणेश पुराण युद्धो तथा हथियारो से सम्बद्ध अनेक विवरणो का उल्लेख करता है।

यहॉ वर्णित है कि दैत्य ने चतुरगिणी सेना को युद्ध के लिए आज्ञा दी।[332] इस सेना का जैसा उल्लेख है उससे ऐसा अनुमानित होता है कि उस समय सेना के अन्तर्गत रथ, हाथी, अश्व तथा पैदल सैनिक–ये चार अग थे।[333]

युद्ध का भी इमसे जीवन्त चित्रण किया गया है। जैसे कि जब दोनो सेनाएॅ मिली तो पृथ्वी पर धूल का अधड़ छा गया। अपने-पराये का ज्ञान नही रहा। सैनिक एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। योद्धा, हाथी-घोडे आदि की नदी बहने लगी। उनके केश शैवाल की भॉति थे। खड्ग मछली जैसे लगते थे। योद्धाओ के सिर कमल की तरह कॉप रहे थे। छत्र आवर्त जैसे बन गये थे तथा कबन्ध टूटे हुए वृक्षो के समान बह रहे थे।[334] एक अन्य वर्णन मे कहा गया है कि रथारूढ़ रथियो के साथ, गजारूढ़ गजारूढ़ो के साथ, अश्वारोही अपने सदस्यो के साथ व पदाति पदातियो के साथ उस घोर सग्राम मे रत हो गये।[335]

एक स्थल पर वर्णित है कि युद्ध के समय कामधेनु के शरीर पर प्रहार होने से सैनिक उत्पन्न होने लगे। उसके केशो से शक जातियो तथा कुछ यवन जातियो के वीर उत्पन्न हुए। ज्ञातव्य है कि कल्पना पर आधारित प्रसग होने के बावजूद शक तथा यवन जातियो का

---

332 गणेश पुराण, 1 42 16

आजान्पयच्च युद्धाय स्वसेना चतुरगिणीम् ।

333 वही, 1 42 28,1 43 6

334 वही, 1 42 31-32

335 वही, 1 43 6

उल्लेख विदेशी जातियो के रूप मे हुआ है।[336] गणेश पुराण मे अन्यत्र युद्ध का वर्णन करते हुए चतुरगिणी सेना के विस्तार का अत्यत सजीव चित्र खीचा गया है तथा हथियारो में खड्ग, कवच, पाषाण, पाश, मुसल, परशु, गदा, चक्र का वर्णन किया गया है।[337]

शत्रु विजय के वर्णन से पता चलता है कि राजा को जीत लेने पर सेना को जीता जा सकता है। दुर्ग को जीतने पर नगर स्वय विजित हो जाता है।[338] युद्ध के अन्तर्गत चक्रव्यूह रचना का भी वर्णन मिलता है जिसे गणेश की आठ सिद्धियो ने बनाया था।[339] युद्ध के ही अन्तर्गत देवातक द्वारा प्रयुक्त दो बाणो का उल्लेख मिलता है–निद्रास्त्र तथा गधर्वास्त्र। इनसे शत्रुपक्ष निद्रालीन हो जाता था तथा सगीत से मत्रमुग्ध हो जाता था।[340] इसी प्रकार घटास्त्र तथा खगास्त्र का भी उल्लेख मिलता है।[341]

युद्ध तथा हथियारो के सदर्भ मे कल्पना का मिश्रण होने के बावजूद उस काल मे व्याप्त राजनैतिक अस्थिरता तथा आतरिक सघर्ष का बोध होता है।

गणेश पुराण और तत्कालीन अर्थव्यवस्था

गुप्तकाल के पश्चात् राजनैतिक उथल-पुथल के कारण व्यापार-वाणिज्य का पतन हुआ। 600-1000 ई० के मध्य व्यापारिक सघो की मुहरे नही मिलती। सिक्के मिश्रित धातु के एव भद्दे आकार-प्रकार के मिलते है। स्पष्ट है कि इस समय तक वाणिज्य पर आधारित अर्थव्यवस्था का पतन हो गया था।[342] अहिछत्र तथा कौशाम्बी जैसे नगरो की खुदाई और ह्वेनसाग के विवरण से प्रमाणित होता है कि उत्तर भारत के अनेक नगर वीरान हो चुके थे।[343] नगरीय जीवन के ह्रास के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था मुख्यत भूमि और कृषि पर निर्भर हो

---

336 गणेश पुराण, 1 79.16-17

सन्नद्धा सर्व शस्त्राद्या नानावीरा विनि सृता ।
शकाश्च बर्बरा आसस्तस्या केशानमुद्रभवा ।।
पटच्चरा पाददेशा देव सर्वे प्रजज्ञिरे ।
नानायवन जातीया नावीरा स्तथाऽपरे ।।

337 वही, अध्याय, 56,79

338 वही, 2 57 46 जितेप्रजौ जिता सेना जिते दुर्गे जितपुरम्

339 वही, 2 63 11

340 वही, 2 68 1

341 वही, 2 68 63

342 शर्मा, आर० एस०, अर्बन डिके इन इडिया, नई दिल्ली, 1987, पृ० 37

343 नदी, रमेन्द्रनाथ, वही, पृ० 58

गयी। कृषि के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदलने लगा।[344] भूमि तथा कृषि के प्रति इस परिवर्तित दृष्टिकोण के फलस्वरूप विभिन्न वर्गो के लोगो ने अधिकाधिक भूमि प्राप्त करने का प्रयास किया। फलत समाज मे भूसम्पन्न कुलीन वर्ग का उदय हुआ। इस अर्थव्यवस्था का विवरण हमे गणेश पुराण मे स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है। इसमे मत्रियो, [345] ब्राह्मणो [346] व आचार्यो [347] को भूमिदान करने के लिए प्रोत्साहित किया गया है।

भूदान के कारण भूस्वामियो को अपने खेतो पर कार्य करने के लिए श्रमिको की आवश्यकता हुई तथा बहुसख्यक शूद्र तथा श्रमिक जीविका हेतु उनकी ओर उन्मुख हुए। इस प्रकार शूद्रो का खेती से सम्बन्ध जुडा। आर्थिक क्षेत्र मे इन भूमि अनुदानो के कारण पनपे सामतवाद ने अन्य प्रभाव भी डाला। विभिन्न सामती इकाइयॉ आत्मनिर्भर आर्थिक इकाइयो मे परिवर्तित हो गयीं। जिससे स्थानीयता की प्रबल भावना ने जन्म लिया।[348] इस कारण व्यापार-वाणिज्य का ह्रास हुआ। किन्तु 1000-1200 ई० के कालखण्ड मे नगरीकरण दिखायी देता है। व्यापार तथा वाणिज्य का प्रचलन पुन बढ़ गया। सर्वप्रथम भू स्वामित्व व सामतवाद पर आधारित तत्वो का गणेश पुराण मे कहॉ-कहॉ निदर्शन प्राप्त होता है, यह द्रष्टव्य है। राजा तथा सामत सरदार धर्म-कर्म से सबधित व्यक्तियो, समूहो, सस्थाओ तथा सरकारी अमलो को बडे पैमाने पर भूमि तथा राजस्व के अधिकार दान करने लगे थे तथा उनके प्रशासनिक अधिकार भी दानभोगियो को ही सौप देते थे। दानभोगियो को राजस्विक तथा प्रशासनिक अधिकार देने का परिणाम यह हुआ कि उन पर केन्द्रीय सत्ता का दबाव नाममात्र ही रहा।[349] भूमिदान तथा उपसामतीकरण के फलस्वरूप व्यापक स्तर पर भूमि तथा सत्ता का असमान वितरण हुआ तथा ऐसे सामाजिक समूहो तथा स्तरो का जन्म हुआ जो तदयुगीन व्यवस्था से अलग थे।[350] गणेश पुराण मे भूमिदानो [351] व ग्रामदानो [352] के बहुतायत मे

---

344 गोपाल, लल्लनजी, वही, पृ० 32

345 गणेश पुराण, 1 4 4

346 वही, 1 26 22

347 वही, 1 51 40-41

348 शर्मा, आर० एस०, अर्बन डिके इन इडिया, पृ० 38

349 शर्मा, आर० एस०, इण्डियन क्यूडलिज्म, (लगभग 300-1200 ई०), अध्याय- V

350 गोपाल, लल्लनजी, वही, पृ० 35

351 गणेश पुराण, 1 26 22

352 वही, 1 50 40-41, 1 73 22

प्रवालगणपश्चेति तस्य नाम दधुद्विजा ।

ददौ ग्रामान् ब्राह्मणेभ्य पूजायै स्थापिताश्च ये ।।

श्रेणियो की महत्वपूर्ण भूमिका थी। पूर्व मध्यकाल तक आते-आते जब व्यापार-वाणिज्य का ह्रास हुआ तथा गतिहीन अर्थव्यवस्था का स्वरूप उभरा तो ऐसे मे श्रेणियो की स्थिति भी कमजोर हुयी।[358] किन्तु ग्राम आत्मनिर्भर थे, वहाँ उत्पादन स्थानीय आवश्यकताो के लिये ही होता था। फलत अभी भी श्रेणियो का महत्व कम नही हुआ होगा। क्योकि शिल्प और उद्योग अब भी उन्नत थे। किन्तु मात्र स्थानीय स्तर पर श्रेणियाँ एक ही व्यवसाय करने वाले लोगो का सगठन होती थी।[359]

10वी शताब्दी के कमन शिला अभिलेख मे काम्यक मे रहने वाले कुभकार, मालाकार तथा शिल्पियो की पृथक-पृथक श्रेणियो का उल्लेख है।[360] गाहरवाल नरेश गोविंदचन्द्र के वेल्का अभिलेख मे पान उगाने वालो के गॉव का उल्लेख है।[361] कलचुरी सोढदेव के काहला अभिलेख से पता चलता है कि विभिन्न व्यवसाय करने वाले लोगो की बस्तियॉ नगर के विभिन्न भागो मे थी।[362] श्रेणियो के मुखिया को अभिलेखो मे 'महत्तक' या 'माहर' कहा गया है।[363] जातको मे उन्हे 'श्रेणीमुख' या प्रमुख कहा गया है। ग्वालियर के वैटलभट्ट स्वामिन् अभिलेख मे तीन तेलिक श्रेणियो का उल्लेख है। उसमे मुख्यो की सख्या चार, दो और पॉच है।[364] ये मुख्य ही इन श्रेणियो मे कार्य चितक थे, जो श्रेणी के सदस्यो का समय-समय पर मार्ग निर्देशन करते रहते थे।

माना जाता है कि पूर्व मध्यकाल मे श्रेणियो का देश की आर्थिक व्यवस्था मे उतना महत्व नही था जितना कि पूर्व काल मे था। अब उनके पास स्थायी पूँजी धार्मिक कार्यो के लिये जमा नही की जाती थी, क्योकि उन्हे स्थायी सस्था नही समझा जाता था।[365] इसके कई कारण माने जा सकते है। सामतीय युद्धो से उत्पन्न उपद्रवो के कारण श्रेणियो के स्थिर होने या स्थायी सस्था बनने हेतु कोई प्रोत्साहन नही मिला। दानियो द्वारा स्थायी पूँजी के लिये मदिर प्रतिद्वन्द्वी सस्था के रूप मे आ गये। मदिर सस्थाओ को अधिक विश्वासजनक माना गया। सामती पद्धति की वृद्धि के कारण आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का भी विपरीत

---

358 मजूमदार, बी० पी०, सोशियो, इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इडिया, दिल्ली, 1962, पृ० 132

359 झा, द्विजेन्द्रनाथ, श्रीमाली, कृष्णमोहन स, प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय, पुनर्मुद्रित 1995, पृ० 391

360 एपिग्राफिया इडिका, कलकत्ता और दिल्ली, ××, न० 14, बी प्लेट, पक्ति- 19

361 वही, II, न० 29, प्लेट II, पक्ति 15-16

362 साउथ इडियन इस्क्रिप्शस, III, भाग-2, पृ० 227

363 झा एव श्रीमाली, वही, पृ० 391

364 एपिग्राफिया इडिका, न० 29, प्लेट II, पक्ति- 20-21

365 झा एव श्रीमाली, वही, पृ० 392

असर पड़ा। सभव है, सामत प्रथा की वृद्धि के कारण श्रेणियो की अर्थव्यवस्था पर कुछ प्रभाव पड़ा हो।[366]

गणेश पुराण मे विभिन्न स्थलो पर श्रेणी प्रमुख का उल्लेख आता है।[367] श्रेणी प्रमुखो को राजा द्वारा पुत्र के अभिषेक के आयोजन मे बुलाया गया है। उस समारोह मे वेदविज्ञ ब्राह्मण, दूसरे राजा व उनकी पत्नी व मित्रो को भी बुलाया गया है। निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि श्रेणी प्रमुख सामाजिक स्तर पर अच्छी स्थिति मे होगे।[368] जबकि एक अन्य स्थल पर श्रेणी प्रमुख द्वारा लोगो के साथ राज्य का शासन चलाने का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[369] सभवत व्यापार और वाणिज्य की दृष्टि से भी यह काल परिपुष्ट होने लगा रहा होगा, तभी श्रेणियो का महत्व भी बढा होगा।

आर्थिक पक्ष के अन्तर्गत ही उत्पादन तथा व्यापार-वाणिज्य का भी उल्लेख आवश्यक है। गणेश पुराण मे अनेक ऐसी वस्तुओ का उल्लेख है जिन्हे शुभ अवसरो पर प्रयोग किया जाता था। ताम्बूल तथा शर्करा बॉटने का उल्लेख कई जगह मिलता है।[370] इस तथ्य से अनुमान लगाया जा सकता है कि इस समय ताम्बूल (पान) तथा गन्ने का उत्पादन प्रचुर मात्रा मे होता रहा होगा। सर्वसहज उपलब्धता के कारण जनता मे इनका प्रयोग बहुतायत मे होता था।

गणेश पुराण मे एक अन्य स्थल पर उल्लिखित है कि गणेश की पूजा के समय किन-किन वस्तुओ का प्रसाद चढाना चाहिए। कहा गया है कि सुपारी का चूर्ण, कत्था, इलायची, लौग तथा केसर से मिला ताम्बूल (पान), आम, कटहल, दाख (किशमिश), केला आदि लाना चाहिए।[371] गन्ने (इच्छुदण्ड) से उत्पन्न शर्करा, गुड़ समर्पित करना चाहिए।[372]

---

366 जैन, वी० के०, ट्रेंड्स एण्ड ट्रेडर्स इन वेस्टर्न इडिया, दिल्ली, 1981

367 गणेश पुराण, 2 153 11
रूरूदु सुस्वर सर्वे पतिता भुवि केचन ।
श्रेणी मुख्यास्तत प्रोचु सोमकान्त कृपानिधानम् ।।

368 वही, 1 30 50
आव्ह्यामास नृपति श्रेणी मुख्याश्चनागरान् ।

369 वही, 1 3 45
ममानु शासन यद्कृत नीति विशारदै ।
तथाऽस्य शासन कार्य श्रेणी मुख्य समन्वितै ।।

370 वही, 1 26 8, 1 72 29

371 वही, 1 49 16

372 वही, 1 49.34-35

अनार, नीबू, जामुन, आम, किशमिश, केला, खजूर (छुहारा), नारियल, नारगी आदि फल समर्पित है।[373] हाथ साफ करने के लिए चदन का चूर्ण समर्पित है।[374]

इन वस्तुओ के उल्लेख से यह ज्ञात होता है कि उस क्षेत्र विशेष मे इनकी उपलब्धता रही होगी। क्षेत्र विशेष मे उत्पादन की दृष्टि से इन सभी फसलो की प्रचुरता रही होगी। गणेश पुराण मे उल्लिखित वस्तुओ की उपलब्धि से यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन आर्थिक अवस्था मे कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

एक अन्य तथ्य पर विचार करना अनिवार्य है और वह है, मुद्रा से सन्दर्भित प्रसग। गणेश पुराण मे कही भी दान, दक्षिणा, व्यापार या अनुष्ठान के प्रसग मे किसी भी प्रकार की मुद्रा का उल्लेख नही प्राप्त होता। यद्यपि स्वर्ण दान, भूदान, गोदान, अन्न दान आदि का उल्लेख मिलता है। डॉ० राम शरण शर्मा तथा अन्य विद्वानो ने 600-1000 ई० तक का काल व्यापार-वाणिज्य के ह्रास का काल माना है [375] जिसमे मुद्रा का अभाव था। गणेश पुराण मे मात्र एक स्थान पर मुद्रा का उल्लेख प्राप्त होना [376] उपर्युक्त विचारधारा को पुष्ट करता होता है। किन्तु हाजरा महोदय ने गणेश पुराण की तिथि 1100-1400 ई० के मध्य स्वीकार की है।[377] डॉ०शर्मा आदि विद्वानो ने माना है कि 1000-1300 ई० के मध्य व्यापार-वाणिज्य का विकास हुआ, नगरीकरण की प्रक्रिया प्रबल हुयी तथा सामन्तवादी प्रवृत्तियो मे शैथिल्य आया।[378] इन तथ्यो के आलोक मे गणेश पुराण मे मुद्राओ का उल्लेख न मिलना, इसकी तिथि निर्धारण मे कुछ सहायक हो सकता है। जे० एन० फर्क्युहर ने गणेश पुराण की तिथि 900-1350 ई० बतायी थी।[379]

किंतु तिथि निर्धारण के लिये एकागी पक्ष को आधार नही बनाया जा सकता। निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि गणेश पुराण मे मिश्रित अर्थव्यवस्था का स्वरूप प्राप्त होता है जिसमे कृषि, उद्योग, व्यापार, श्रेणी आदि का प्रसगत उल्लेख है।

---

373 गणेश पुराण, 1 49 54-55

दाडिम मधुर निम्बु जबूवाम्रपनसादिकम् ।

द्राक्षारभा फल पक्व कर्कन्धू खार्जुर फलम् ।।

नारिकेल च नारिंग माजिर जम्बिर तथा ।

374 वही, 1 49 60

375 शर्मा, आर एस , पूर्व मध्यकालीन भारत का सामती समाज और सस्कृति, पृ० 48

376 गणेश पुराण, 1 87 7

377 हाजरा, आर0 सी0, द गणेश पुराण, वही, पृ० 97

378 शर्मा, आर एस , वही, पृ० 52

379 हाजरा, आर. सी , वही, पृ० 97

पौराणिक देव समुदाय मे गणपति का बढ़ता हुआ प्रभाव उस कालखण्ड मे दिखायी पडता है, जिसे ऐतिहासिक विवेचनो मे विनगरीकरण, सामतवाद तथा व्यापार-वाणिज्य मे अध पतन के साथ जोडा जाता है। यह उल्लेखनीय है कि ब्राह्मणवादी परम्परा मे गणेश की गणना शिव के परिवार देवता के रूप मे सीमित रही। इसके विपरीत वणिक समुदाय मे गणपति प्रधान देवता के रूप मे प्रतिष्ठित हुये। यह परम्परा केवल तथाकथित ब्राह्मण धर्मो को मानने वाले वणिक समुदाय तक सीमित नही रही अपितु जैन समुदाय मे भी गणेश की पूजा का प्रचलन प्रधान परम्परा के रूप मे दिखायी देता है।[380] जैन धर्म का प्रभाव पूर्व मध्यकाल मे गुजरात, राजस्थान तथा समीपवर्ती क्षेत्रो मे व्याप्त था। पूर्व मध्यकाल मे गणेश का जो विकास हो रहा था वह वस्तुत कुबेर व मणिभद्र की ही परम्परा की निरतरता है।[381] विद्वानो के अनुसार 1000 ई० के बाद उत्तर भारत मे व्यापार वाणिज्य का विकास, श्रेणियो तथा निगमो की महत्ता, सिक्को का बाहुल्य आदि अनेक नवीन आर्थिक तत्व दिखायी देते है। दक्षिण भारत मे चोलो के नेतृत्व मे व्यापार-वाणिज्य का बहुत विकास हुआ। इस पृष्ठभूमि मे यदि गणेश पुराण मे सपादित गाणपत्य सम्प्रदाय की विवेचना की जाये तो यह स्पष्ट होता है कि व्यापार एव वाणिज्य के सरक्षक देवता के रूप मे गणपति की प्रतिष्ठा 1000-1300 ई० के बीच हुयी। इस बात की पुष्टि गाणपत्य सम्प्रदाय के क्षेत्रीय विस्तार से भी होती है। महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, चोलो के अधीन दक्षिण भारत के क्षेत्र, गगा की घाटी मे काशी गाणपत्य सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्रो के रूप मे सामने आये। इन क्षेत्रो का घनिष्ठ सम्बन्ध व्यापार-वाणिज्य से है।[382]

गणेश पुराण मे एक प्रसग ऐसा है जिससे गणेश के व्यापार से सम्बद्ध होने की परम्परा का साक्ष्य मिलता है। राजा सोमकात कुष्ठ रोग से ग्रस्त था। भृगु ऋषि ने उसे बताया कि इस रोग का कारण उसके पूर्व जन्म का कर्म है, जिसमे वह वैश्य था तथा कालान्तर मे वह लुटेरा बन गया था। विभिन्न प्रकार के पापो के अतिरिक्त वह ब्राह्मणो की हत्या भी कर देता था। वृद्धावस्था मे, जब वह बीमार और अकेला रह गया तब उसने अपना धन ब्राह्मणो को देना चाहा, जिसे लेने से ब्राह्मणो ने इनकार कर दिया। तब ब्राह्मणो के ही मशविरे पर उसने अपने धन का उपयोग एक पुराने गणपति मदिर के जीर्णोद्धार मे किया। तत्पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी।[383] इस आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सम्पन्न वणिक

380 नदी, आर एस , सोशल रूट्स एण्ड रिलिजन इन इडिया,पृ० 24

381 थापन, अनिता रैना, अण्डरस्टैंडिंग गणपति, पृ० 170

382 अब्राहम मीरा, द मेडिवल गिल्ड्स आफ साउथ इडिया, नई दिल्ली, पृ० 29

383 गणेश पुराण, 1 8 21

गणेश मदिरो के जीर्णोद्धार मे धन का उपयोग करते रहे होगे, जिससे गणेश का वैश्य वर्ग व अपरोक्षत व्यापार से सम्बन्ध बना होगा।[384]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गणेश पुराण मे पूर्व मध्यकालीन आर्थिक व्यवस्था की विशिष्टताओ का सकेत स्थान-स्थान पर प्रस्तुत किया गया है।

❑❑

384 थापन, अनिता रैना, वही, पृ० 155

चतुर्थ अध्याय

गणेश पुराण में धार्मिक एवं दार्शनिक तत्व

धार्मिक-तत्व ▫ दर्शन-तत्व ▫ कर्मयोग ▫ ज्ञानयोग ▫ भक्ति ▫ तप ▫ दान ▫ ज्ञान ▫ कर्म ▫ भगवद्गीता और गणेश गीता तुलनात्मक विवेचना ▫ गणेश पुराण मे तत्रोपासना

चतुर्थ अध्याय

गणेश पुराण में धार्मिक एवं दार्शनिक तत्व

धार्मिक-तत्व

भारतीय सस्कृति मे धर्म अतिव्यापक एव महत्वपूर्ण विषय है। किसी वस्तु की विधायिका आन्तरिक वृत्ति को ही उसका धर्म कहते है। प्रत्येक पदार्थ का अस्तित्व जिस वृत्ति पर निर्भर है, वही उस पदार्थ का धर्म है। धर्म की कमी से उस पदार्थ का क्षरण होता है तथा वृद्धि से विकास [1] धर्म ही समाज को सयमित तथा अनुशासित कर विकास के मार्ग पर अग्रसर करता है। देश तथा समाज धर्म के विशाल आयाम मे क्रियाशील रहते है। धर्म का व्यावहारिक महत्व कर्त्तव्य के समुचित पालन मे है, जिसके माध्यम से व्यक्ति लौकिक उत्कर्ष के साथ-साथ आध्यात्मिक उत्कर्ष भी प्राप्त करता है।

भारत की विशिष्टता यह रही है कि धर्म के मौलिक स्वरूप एक होने पर भी उसमे वाह्य स्तर पर परिवर्तन होते रहे हैं।[2] वैदिक देवता पुराण काल तक आते-आते अपने मौलिक स्वरूप को यथावत न रख सके। कुछ के मूल स्वरूप का लोप हो गया तथा कुछ अपने उदात्त स्वरूप से च्युत होकर सामान्य रूप मे आ गये।

यह इतिहास का तथ्य है कि सामाजिक परिवर्तन धर्म को भी प्रभावित करता है। मध्यकालीन धार्मिक व्यवस्था भी सामाजिक परिवर्तनो से प्रभावित थी। सामती व्यवस्था सम्पूर्ण क्षेत्र मे फैली हुई थी जिसके फलस्वरूप धार्मिक रीति-रिवाजो मे भी परिवर्तन दिखते है। भूमि के प्रत्यर्पण तथा सामती भाव के उदय ने पूजा तथा भक्ति को नवीन दिशा दी। पूजा तथा भक्ति ही धर्म के अभिन्न तत्व बन गये। [3] पूर्वमध्यकालीन एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता थी- पुरोहितो तथा मदिरो को बड़े पैमाने पर भूमिदान देना। नये क्षेत्रो मे कृषि तथा बस्तियाँ आबाद करने के लिए धार्मिक प्रयोजनो से दिये गये भूमिदान महत्वपूर्ण थे। भूमिदान से मध्य देश की ब्राह्मण सस्कृति के विस्तार मे नया आयाम जुड़ गया।[4] राजनैतिक सत्ता को प्रतिष्ठित करने के लिये धार्मिक तथा वैचारिक समर्थन की

---

1 मैक्सवेवर, रिलिजन्स ऑफ इण्डिया, पृ० 52-54

2 शर्मा, आर० एस०, पूर्वमध्यकालीन सामती समाज एव सस्कृति, राजकमल प्रकाशन, 1998, पृ० 78

3 नदी, रमेन्द्र नाथ, प्राचीन भारत मे धर्म के सामाजिक आधार, पृ० 11

4 शर्मा, आर०एस०,पूर्वमध्यकालीन सामती समाज तथा सस्कृति, राजकमल प्रकाशन, 1998, पृ० 191

आवश्यकता थी। यह समर्थन मुख्य रूप से ब्राह्मणो से मिल सकता था।[5] जो भौगोलिक सर्वेक्षण उपलब्ध है उनसे धार्मिक रूप से भी प्रभुत्व स्थापित करने का यह सुगम तरीका हो सकता था। ब्राह्मणो को दिये भूमिदानो के सदर्भ मे जो भौगोलिक सर्वेक्षण उपलब्ध है उनसे स्पष्ट होता है कि सुदूर दक्षिण के अतिरिक्त देश के अन्य भागो जैसे, असम, बगाल, उडीसा, मध्य भारत, दक्षिण भारत मे भी बडे पैमाने पर भूमिदान किये गये। इस कारण समाज मे ब्राह्मणो का प्रभुत्व स्थापित हुआ। ऐसे समय मे ही ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्मो का नयी दिशा मे विस्तार हुआ।[6] उसमे नवीन सिद्धान्तो तथा धार्मिक क्रियाओ का समावेश हुआ। इन धर्मो के स्वरूप मे परिवर्तन आया।[7] धार्मिक विचारो मे परिवर्तन का एक प्रबल कारण तात्रिक पूजा तथा उपासना का वेग था, जिसने बौद्ध धर्म के मूल रूप को ही बदल दिया। इन तात्रिक विचारो ने ब्राह्मण धर्म के भी विभिन्न सप्रदायो मे प्रवेश किया। उनके आधारभूत विचारो मे महत्वपूर्ण परिवर्तन किया।[8] विभिन्न धार्मिक सप्रदाय इससे एक-दूसरे से प्रभावित होने लगे। लगभग पॉचवी शताब्दी से पूजा-अर्चना तथा महायज्ञो का प्रचलन बढा। पौराणिक धर्माचरण इसी समय से प्रचलित हुए। इसके साथ ही अपनी सेवाएँ सामती प्रभु को समर्पित कर उनके प्रसाद और कृपा के रूप मे राजस्विक अधिकार, भूमि तथा सुरक्षा, प्राप्त करने के बढ़ते रिवाज के अनुरूप धार्मिक क्षेत्र मे पूजा की प्रथा विकसित हुई।[9] पूजा के साथ ही भक्ति का सिद्धात भी सबधित था। प्रारभिक काल की भक्ति ऐसे स्वरूप मे विकसित थी जिसमे राजा नही था। इस स्थिति मे अधिकारियो का स्थान अत्यत महत्वपूर्ण था। देवताओ की सख्या कम थी। तत्कालीन भक्ति का अर्थ था अपने आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पण। यह एक तरह से मध्यकालीन धर्म की विशेषता बन गयी थी। पूर्व मध्यकालीन भक्ति भूस्वामियो पर रैयतो की सपूर्ण निर्भरता की प्रतिच्छाया थी।[10]

धीरे-धीरे पूजा तथा भक्ति,तत्र सम्प्रदाय के अभिन्न अग बन गये।[11] इस नये सप्रदाय का जन्म मध्य देश के बाहर आदिवासी तथा सीमावर्ती क्षेत्रो मे हुआ था, जिसके मूल मे ब्राह्मणो तथा कबायली लोगो के बीच होने वाला वह सपर्क तथा आदान-प्रदान था जो इन प्रदशो मे बड़े पैमाने पर दिये गये धार्मिक भूमिदानो के फलस्वरूप हुआ। नये क्षेत्रो

---

5 मजूमदार, बी पी ,सोशियो-इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, कलकत्ता 1960, पृ० 28

6 नदी, रमेन्द्र नाथ, वही, पृ० 32

7 शर्मा, आर० एस०, वही, पृ० 99

8 यादव, बी०एन०एस०, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दर्न इडिया, पृ० 32

9 वही, पृ०38

10 शर्मा, हरिश्चन्द्र, मध्यकालीन भारत, 1, दिल्ली विश्वविद्यालय 1987, पृ० 45

11 झा, श्रीमाल, प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1997 पृ० 394

मे ब्राह्मणीय प्रभुत्व को कायम रखने का उपाय यही था कि कबायली कर्मकाण्डो तथा देवी-देवताओ, विशेष रूप से मातृदेवी की, पूजा को अपना लिया जाय। इस समय नेपाल, असम, बगाल, उडीसा, मध्य भारत आदि मे बहुत से ब्राह्मणो को भूमिदान किये गये। इसके साथ ही इन क्षेत्रो मे तात्रिक ग्रथो, मदिरो तथा रीति-रिवाजो का भी उदय हुआ।[12] तत्र सप्रदाय के धार्मिक तत्वो का समावेश जैन तथा बौद्ध धर्मो, शैव और वैष्णव सम्प्रदायो मे हुआ। सातवी शताब्दी से लेकर मध्यकाल के पूरे दौर मे इसका प्रभुत्व रहा।[13]

भौतिक आकाक्षाओ की पूर्ति, सामान्य रोगो के उपचार, मनुष्य, पशु एव सासारिक सपदाओ पर आने वाले सकट के निवारण हेतु जादू-टोने से सबधित कर्मकाण्डो का प्रयोग अथर्ववेद मे मिलता है। किन्तु शिक्षित ब्राह्मणो तथा यजमानो द्वारा अब उनका विधिवत आयोजन किया जाने लगा। इसके फलस्वरूप कर्मकाण्ड को बढावा मिला। उसका रूप विकृत हुआ।[14] वस्तुत पूर्वमध्यकालीन धार्मिक स्थिति सक्रमण की स्थिति थी, जहॉ पर अनेक विचारधाराओ का मिला-जुला रूप दिखाई देता है।[15] अनेक सप्रदायो का उदय भी धीरे-धीरे हुआ, जिनमे अवतारवाद का विशेष स्थान है। इसका मूल प्रयोजन धर्मस्थापन तथा अधर्म का विनाश था। विभिन्न सप्रदायो के अतर्गत वैष्णव, शैव, कापालिक, शाक्त, नाथ, गाणपत्य आदि का अभ्युदय हुआ।

गाणपत्य सम्प्रदाय के अतर्गत गणेश की पूजा का विधान प्रचलित था। इसकी छह शाखाऍ थी

1 महागणपति के आराधक, जो गणपति को आदि व सृष्टिकर्त्ता मानते है।

2 हरिद्रगणपति के उपासक, जो गणपति के मुख और दत की मुद्रा अपनी बॉहो पर तपाये हुए लोहे से अकित कराते थे। इस शाखा मे पीतवस्त्रधारी, यज्ञोपवीत पहने, चतुर्भुज, त्रिनेत्र, हाथ मे पाश, कुश तथा दडधारी गणेश की पूजा करते है।

3 उच्छिष्ट गणपति के आराधक, तामसी और असत् कार्य करने वाले होते है। जो मदिरा, मास आदि का सेवन करते हैं तथा अपने ललाट पर लाल मुद्रा अकित करते है।

4 नवनीत गणपति।

---

12 शर्मा, रामशरण, मॅटेरियल मिलेयू ऑफ तात्रिसिज्म तथा विवेकानन्द झा द्वारा सपादित इडियन सोसाइटी हिस्टॉरिकल प्रोविंस, द्वि०स०, नई दिल्ली, 1977, पृ० 175-89

13 बैनर्जी, जे०एन०, पुराणिक एण्ड तात्रिक रिलिजन, कलकत्ता, 1966, पृ० 7-9

14 वही, पृ०16

15 शर्मा, आर० एस०, पूर्वमध्यकालीन भारत का सामती समाज एव सस्कृति, राजकमल प्रकाशन, 1998, पृ० 124

5 स्वर्ण गणपति।

6 सन्तान गणपति। अन्तिम तीन शाखाओ मे आराधक गणपति की मूर्ति की प्रतिष्ठा कर, पूजन करते है।[16]

गणेशोपासना का उल्लेख तत्कालीन ग्रन्थो मे मिलता है। तैत्तरीय सहिता [17] मे गणेश की उपासना-विधि का वर्णन है। किसी कार्य आरभ से पहले गणेश का आवाहन तथा स्तुतियो का उल्लेख शुक्ल यजुर्वेद, मध्यन्दिन सहिता,[18] कृष्ण यजुर्वेद-मैत्रायणी सहिता,[19] अथर्ववेद, गणेश पूर्वतापिनी उपनिषद् , [20] मानवगृह-सूत्र [21] आदि मे मिलता है। गणेश के आह्वान के लिए शुक्ल यजुर्वेद [22] मे कुछ मत्रो का वर्णन है जिसमे विद्याविशारदो को सर्वोत्तम बताया गया है। इसमे गणेश के अग्रपूजक स्वरूप का उल्लेख किया गया है। इसमे वर्णित है कि उनकी आराधना के बिना कोई भी कार्य प्रारभ नही किया जाता। श्रीमद्भागवत पुराण मे कृष्ण उद्धव को क्रियायोग का परिचय देते हुए कहते है कि मेरी पूजा के समय दुर्गा, विनायक, व्यास, विश्वक्सेन, गुरुदेव तथा अन्यान्य देवताओ की पूजा करनी चाहिए।[23]

गणेश पुराण मे गणेश से सम्बद्ध विभिन्न मान्यताओ, तत्रोपासना, विभिन्न सप्रदायो का प्रभाव, गणेश की उपासना विधि, व्रत, पूजा/ तीर्थो आदि का विस्तृत विवेचन हुआ है। इसमे गणेश के अग्रपूजक स्वरूप को स्थापित किया गया है। हर कार्य आरभ करने से

---

16 थापन, अनिता रैना, वही, पृ०193

17 तैत्तरीय सहिता, 2 34 3

18 शुक्ल यजुर्वेद माध्यदिन सहिता, 23 9

19. कृष्ण यजुर्वेद मैत्रायणी सहिता, 23 9

20 अथर्ववेद- गणेशपूर्वतापिनी उपनिषद् ,1 5

21 मानव गृहसूत्र, 2 14

22 शुक्ल यजुर्वेद, 23 19

23 श्रीमद्भागवत, 11 27 29

दुर्गा विनायक व्यास, विष्वक्सेन गुरुन् सुरा।
स्वे स्वे स्थाने त्वभि मुखान् पूज्ये प्रोक्षणादिभि।।

पूर्व गणेश की पूजा की जाती है।[24] उन्हे विघ्नकर्त्ता तथा विघ्नहर्त्ता दोनो ही रूपो मे देखा जाता है। [25]

गणेशोपासना मे मत्रो की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रस्तुत पुराण मे वर्णित है कि आगम मे गणेश के सात करोड मत्र है जिनमे षडाक्षर तथा एकाक्षर मत्र सर्वश्रेष्ठ हैं। इनके स्मरण मात्र से सम्पूर्ण सिद्धियॉ प्राप्त होती है।[26]

गणेशपूजन से पूर्व उपासक को स्नान करना चाहिए, धुले हुए दो वस्त्र पहनना चाहिए। पहले कुशा, फिर मृगचर्म, उसके बाद धुले हुए वस्त्र को रखकर आसन बनाना चाहिए। इस पर बैठ कर सर्वप्रथम भूमि शुद्धि, उसके बाद प्राणायाम करना चाहिए। बाहर-भीतर षोडश मातृकाओ का सावधानीपूर्वक न्यास करना चाहिए। फिर मत्र की उपासना करनी चाहिए। स्थिर चित्त से आपादमस्तक देवताओ का ध्यान करना चाहिए। हर भॉति के मानसिक उपचारो से समाहित होकर गणेश की पूजा का विधान है। [27] गणेश के एकाक्षर मत्र को महामत्रो मे सर्वोच्च बताया गया है। षडाक्षर मत्र भी यद्यपि कम महत्व के नही है। [28] सिद्धारि चक्र के योग से सिद्ध करने पर वह सभी प्रकार की सिद्धियॉ प्रदान करता है। [29] इस मत्र को सिद्ध करने की विधि का गणेश पुराण मे यह वर्णन मिलता है कि सर्वप्रथम बाणाग्र से दिगबन्ध करना चाहिए, फिर भूशुद्धि और प्राणियो की शुद्धि करनी चाहिए। तत्पश्चात् प्राणो की शुद्धि (प्राणायाम) करना चाहिए। [30] षोडश मातृकाओ

---

24 गणेश पुराण, 1,12,6

ॐकाररूपी भगवानुक्तऽसे गणनायक।

यथा सर्वेषु कार्येषु पूज्यते ऽसौ विनायक ।।

25 वही, 1,44,14

युद्धाय गन्तु कामेन गर्वितो गणपत्यस्त्वया।

अत पराभव प्राप्तो वह्नि नेत्रपिवाक् घृक् ।।

26 वही, 1 11 3-4

27 वही, 1 11 15 वही,1 14 39-41

28, वही, 1, 44, 21

षडाक्षरैकाक्षरौ सर्वसकट हारकौ।

29 वही, 1,17, 34, 41

30 वही, 1 18 4

का न्यास और मस्तिकादि का न्यास [31] करने के उपरात गजानन का ध्यान करना चाहिए। मन मे आवाहन कर मुद्राओ का विधान करना चाहिए [32] और नाना प्रकार के द्रव्यो से षोडशोपचार सम्पन्न हो। [33] उपरोक्त पुराण मे प्राप्त वर्णन के आधार पर कह सकते हैं कि तत्कालीन समाज मे जप, तप व देवपूजा के अतिरिक्त मत्रो द्वारा रोग निषेध का प्रचलन भी रहा होगा। देव-यात्रा (तीर्थ यात्रा) का भी प्रचलन था। [34] जप-तप की भी कठोर विधियो का उल्लेख गणेश पूजा के प्रसग मे मिलता है। [35] जैसे दक्ष व उनकी माता कमला के सदर्भ मे उल्लिखित है कि दोनो ने एक अगूठे पर खडे होकर गणेश की आराधना की। ओकार का पल्लव लगा और चतुर्थ छन्द लगाकर अष्टाक्षर मत्र का भक्ति तत्पर जप किया। [36] वे निराहार रहते थे। उनका शरीर सूख गया। [37] अत्यत कठोर तप से गजानन प्रसन्न हुए। सुवर्णो व रत्नो से बनी चार भुजाओ व तीन नेत्रो वाली अनेक अलकारो से शोभायमान गणेश की मूर्ति की षोडशोपचारो से पूजा करने [38] के विधान का भी उल्लेख है।

---

31 गणेश पुराण, 1 18 5
कृत्वातर्मातृका न्यासमाधारादि क्रमेण तु।
बहिश्च मातृका न्यास मस्तकादि क्रमेण च।।

32 वही, 1 18 6

33 वही, 1 18 7
दैव्यै नाना विधैश्चैव षोडशेश्चौपचारकै।

34 गणेश पुराण, 1 19 4 9
वय च प्रयतिष्यामो मणि मत्र महौषधौ।
तपोभिश्च जपै देवैर्पूजा यात्रा विधानत ।।

35 वही, 1 20 27
तत सा कमला दक्षो निर्वाण परमास्थितौ ।
एकागुलेन तपरता गणेशाराधाने रतौ ।।

36 वही, 1 20 29
देवनाम् चतुर्थ्यन्त मोकार पल्वान्तितम् ।
अष्टाक्षर पर मत्र जपन्तौ भक्तितत्परौ।।

37 वही, 1 20 30
वायु भक्षौ शुष्कतनू निरिक्ष्य भगवास्तदा ।
आविरासीत्तयोरग्रे करूणाब्धि विनायक ।।

38 वही, 1 21 10-11
वैनायकी महामूर्ति रत्न काचन निर्मिताम् ।
चतुर्भुजा त्रिनयना नानालकार शोमिनीम्।
उपचारै षोडशभि पूजयत विधानत।।

तत्कालीन समाज मे सभवत नगर या ग्राम के बाहर गणेश की पूजा व मदिर आदि बनाने का विधान भी रहा होगा।[39] देवभक्ति मे तल्लीन हो, देवस्तुति, नृत्य व गायन का भी प्रचलन था।[40] लकडी एव पत्तो से मडप तथा दीवार से घेरा बनाकर, गणेश मदिर के निर्माण का उल्लेख है।[41] गणेश पूजन मे मानस पूजा के अतिरिक्त पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, ताबूल, दक्षिणा [42] आदि से उनके पूजन का विधान है। इस उपासना मे कठोर तप का अनेक स्थलो पर वर्णन मिलता है। पैर के अगूठे मात्र पर खड़ा होकर, नासिकाग्र पर दृष्टि टिकाकर, इद्रियो पर विजय प्राप्त कर, प्राणायाम परायण वायु मात्र का भक्षण [43] करना पूजन विधि का अग था। वृक्ष से गिरे एक पत्ते मात्र का भक्षण करते हुए गृत्समद ने गणेश की उपासना की।[44] इस पुराण मे यह भी उल्लिखित है कि गणेश के वैदिक मत्र 'गजानात्वा' के तप से न केवल सिद्धि व वरदान प्राप्त होता है, बल्कि मनुष्य का वर्ण परिवर्तन भी सभव है।[45] यह उल्लेख्य है कि गृत्समद क्षत्रिय पुत्र थे किन्तु इस मत्र

---

39 गणेश पुराण, 1 22 13

स च कालेन महता वयश्पैश्च समन्वित ।
देवपूजा रतो नित्य ग्रामाद् बहिरयान्मद ।।

40 वही, 1 22 16

केचिच्च ननृतुस्तत्र यथेष्ट देवभक्तित ।
केचिच्य गानकुशला जगुर्देवस्य तुष्टये ।।

41 वही, 1 22 17

केचित्काष्टै पल्लवैश्च मडप चक्ररोजसा ।
केचिद्भिन्ति परीवेष केचित्प्रासाद मुत्तमम् ।।

42 वही, 1 22 19

निवेद्य पुपुजस्तमै मुद्रा परम युत ।
केचिच्च पडिता भूत्वा पुराणान्य ब्रूयस्तथा ।।

43 वही, 1 37 3-4

तत्र स्नात्वा जप चक्रे पादागुष्टाग्राधिष्ठित।
स्थिरेण मनसा ध्यायन्देव विघ्नेश्वर विभूम् ।
नासाग्र न्यस्तदृष्टि सन्निरीक्षन्न दिशोदिशा।
जितेन्द्रियो जितश्वासो जितात्मा मारुताशन ।।

44 वही, 1 37 7

अपर गलित भक्षन्नैकमेव च।
यत्न मास्याय परम स्थाणु भुक्तेऽपि निश्चल ।।

45 वही, 1 37 37

त्वया यत्प्रार्थित विप्र तन्ते सर्व भविष्यति।
विप्रत्व दुर्लभतर प्रसन्नेन मयार्पितम् ।।

'गणानात्वा' के जप से गणेश ने प्रसन्न होकर उन्हे ब्राह्मणत्व प्रदान किया। वर प्राप्त करके गृत्समद ऋषि कहलाये। उनकी ब्रह्मादि देवताओ व वशिष्ठ आदि मुनियो मे ख्याति हुयी।[46] इसी प्रकार केवट तुन्तुवान का भी उल्लेख प्राप्त होता है, जो गणेश मत्र के जप से और गणेश की तपस्या से पूजनीय हो गया। देवताओ व गधर्वो द्वारा वदनीय पद प्राप्त किया।[47] गणेश उपासना से तत्कालीन समाज मे वर्णस्थिति पर प्रभाव पड़ सकता है, ऐसा यह पुराण सिद्ध करने का प्रयास करता है। गणेश के एकाक्षर व षडाक्षर मत्रो के अतिरिक्त उनका दशाक्षर मत्र भी महत्वपूर्ण माना गया है। इसे सिद्धिदायक भी कहा गया है।[48]

विवेच्य पुराण यज्ञादि के विधि-विधान और उस युग मे धर्म के अतर्गत यज्ञ की महत्वपूर्ण स्थिति को भी प्रतिबिम्बित करता है। कथा है कि सर्वप्रथम यज्ञकुण्ड बनाये गये। भूमि शोधन [49] के बाद देवी मण्डप बनाया गया। अभ्युदय व स्वस्तिवाचन के अनतर षोड्श मातृकाओ का पूजन किया गया।[50] यज्ञ आरभ होने पर वेद व कल्पग्रन्थो के

---

46 गणेश पुराण, 1 37 38

ब्रम्हादिसु च देवेषु वसिष्ठादि मुनिस्वापि।
ख्याति यास्यसि सर्वत्रा पर श्रेष्ठमुपागत ।।

47 वही, 1 57 45

वरानस्मै ददौ पश्चाद्भ त्व मुनिसत्तम ।
इन्द्रादि देवगधर्वै सिद्धैर्चोर्यतमो भव।।

1 57 50

त्वमेव गणनाथोऽसि पूजनीयोऽसि नोमुने।
स तु सपूज्य वान्सर्वान् प्रणम्य च विसृज्य च।।

48 वही, 2 28 12

दशाक्षरेण मत्रेण ध्यायता बहु वासरम्।
दत्वा तस्मै वरान् देवो विधते वाछितानपि।।

49 वही, 2 30 11

यज्ञ महासमारम्भ सर्वानन्दकर परम् ।
सर्वे ते यज्ञ कुण्डानि प्राची साधन पूर्वकम् ।।

वही, 2 30 12

चक्रुश्च कारयामासूर्यज्ञ सम्भारकम् ।
वेदिकामण्डपादिश्च भूमिशोधनपूर्वकम् ।।

50 वही, 2 30 13

कृत्वाऽभ्युदयिक श्राद्ध स्वस्ति वाचनपूर्वकम् ।
मातृणा पूजन कृत्वा स्थापयामासरादरात् ।
मत्रैर्नानाविधै विप्रा सर्वा मण्डपदेवता ।

अनुसार पशुओ का आलोघन (बलि) दी गयी। भिन्न-भिन्न मत्रो से देवताओ की आहुति दी गयी।[51] यज्ञस्थल के चार द्वार थे।[52]एक ओर विद्वतगण परस्पर शास्त्रो पर विवाद करते थे। कही अप्सराये नृत्य करती थी। वेदपाठी वेदपाठ करते थे। ब्राह्मणो का भोजन होता था। पौराणिक लोग पुराणो की कथा कहते थे।[53] वसोधरा अग्नि मे डाली गयी।[54] यज्ञ कराने वाले दम्पत्ति और अन्य सभी औवृत्त इसके बाद स्नान हेतु गये। उस समय तरह-तरह के बाजे बज रहे थे, स्तुतिगान हो रहा था। बलि स्थान से यज्ञ स्थान पर सभी आये और ब्राह्मणो को रथ, वस्त्र, गो, गज आदि का दान देकर सम्मानित किया।[55] इस प्रसग से स्पष्ट है कि यज्ञ मे बलि, स्नान, षोडशमातृका, षोडशोपचार आदि का विधान रहा होगा।

इस पुराण मे मदार के मूल से गणेश मूर्ति बनाकर उसकी स्तुति करने और षोडशोपचारपूर्वक पूजा करने का विधान है।[56] ऐसा कहा गया है कि मदार के मूल मे गणेश का बास है। गणेश ने स्वय ही कहा है कि मदार के मूल से जो मेरी मूर्ति बनाकर पूजा करेगा तथा शमी पत्र व दूर्वा चढायेगा, वह किसी विघ्न-बाधा एव दरिद्रता से ग्रसित

---

51 गणेश पुराण, 2 30 16

आलभन्त पशु वेदकल्प वाक्यानुसारत ।
ततदेवायम् तन्मत्रैर्जुहुति स्म विधानत ।।

52 वही, 2 30 17

यज्ञवाटे चतुर्द्वार सर्वोषामनिवारिते।

53 वही, 2 30 18-19

विवदन्ते महावादैरेकतो विदुषा जना ।
नृत्यत्यप्सरोऽन्यत्र पठन्ते वैदिका कृत ।।
गायति वैष्णवा शैवा मृदगतालबादनै ।
भुजते ब्राह्मण स्वेच्छा भोजन पड्रसै क्वचित् ।

54 वही, 2 30 20

वसोर्धारा सुमहती पातयामासुरग्निषु।

55 वही, 2 30 24

अनेकरत्ननिचयैधनैर्वस्त्रैरनेकश।
गोभिरश्वैर्गजैर्गन्धैरिक्षाविषयपूरणै ।।

56 वही, 2 32 30-35 34

उपासना क्लेशहन्त्री सर्वकामफलप्रदाम् ।
सा तदैव प्रपद्याशु मूर्ति मन्दार निर्मिताम्।।

नही होगा।[57] अनेक यज्ञो, तीर्थो, व्रतो, दान तथा नियमो से भी वह पुण्य नही प्राप्त होता, जो शमी के पत्र पूजन से होता है। यही पुण्य मदार के पूजन से भी मिलता है।[58] शमी के सदर्भ मे एक अन्य प्रसग है कि अग्निहोत्री लोग अग्नि प्राप्त करने के लिये शमी काष्ठ का मथन करते है।[59] गणेश के ही स्वरूप ढुढि के सदर्भ मे मान्यता है कि मदार की जड़ से ढुढि [60] की मूर्ति बनाकर कठ मे पहनना चाहिए। शमी व दूर्वा के बिना कभी पूजा नही करनी चाहिए।[61] गणेश को प्रसन्न करने हेतु पूजा की एक अन्य सहज विधि भी दी गयी है वह यह कि पचामृत, सुगधित मालाये, शमी तथा दूर्वा के पत्ते, वन मे उत्पन्न हुये फल, [62] उत्तम मिट्टी जिसमे ककडी न हो, उसे लेकर गडकी नदी के पास बहुत बडा मण्डप बनाया [63] केले के खभो व लताओ से उसे छायादार बनाया। नदी मे स्नान करके सुदर

---

57 गणेश पुराण, 2 35 18

अद्यप्रभृति मन्दारमूल स्थास्यायि निश्चल ।
मृत्युर्लोके स्वर्गलोके मान्योऽय च भविष्यति ।।
- वही, 2 35 19
मन्दार मूलैर्मे मूर्ति कृत्वा य पूजयेन्नर ।
समीपत्रैश्च दूर्वाभिसितय दुर्लभ भुवि ।।

58 वही, 2 35 22

उभयो सा फलदद्यान्नात्र कार्या विचारणा ।
नानायज्ञैर्न तत्पुण्य नानातीर्थव्रतरपि ।।

- वही, 2 35 23

दानैश्च नियमश्चैव पुण्य तत्प्राप्नुयान्नर ।
यत्सान्मम शमीपत्रै पूजनेन द्विजोत्तमो ।।

59 वही, 2 35 27

इदमेव फल प्रोक्त मन्दारैरपि पूजने ।
मन्दार मूर्तिपूजाभिरह गृहगतोऽभवम् ।।

60 वही, 2 35 33
अत एव शमी काण्ठ मध्यन्ती हाग्निहोत्रिण ।

61 वही, 2 49 16

मन्दार मूर्ति दुण्ढै स कृत्वा कठे दधार ह ।
शमी दूर्वा बिना पूजा न करोति कदाचन।।

62 वही, 2 78 16

पञ्चामृत गन्धमल्य शमीदूर्वाश्च पल्लवान्।
फलान्यरण्यजातानि विविधानि च मृत्तिव ।।

63 वही, 2 78 17

अशर्करा समादाय गण्डकी ता नदी ययौ ।
मण्डप विपुल कृत्वा भक्त्वा वृक्षाननेकश ।।

मूर्ति वहॉ बनायी।[64] मूर्ति मे गणेश सिह पर आरूढ़ दसभुजाधारी व शस्त्र धारण किये हुये थे। सिद्धि-बुद्धि साथ थीं। पीले वस्त्र धारी [65] सर्पयज्ञोपवीत से सुशोभित उनकी मूर्ति उस मण्डप के मध्य स्थापित किया। भक्तिपूर्वक षोडशोपचार से उनकी पूजा की।[66] पचामृत, शुद्ध जल, नैवेद्य, दीपक गध व आरतियो से उनकी आराधना की।[67] पूजा के बाद सूर्य की सतुष्टि हेतु जप किया।[68] इस विधि से पूजन करने पर गणेश प्रसन्न हो सभी कामनाये पूरी करते है। यह पूजा अर्चना माघ मास के कृष्णपक्ष के मगलवार की चतुर्थी को सम्पन्न करनी चाहिए। क्योकि यह गणेश की प्रिय तिथि है।[69] इसी प्रकार की एक अन्य तिथि का भी उल्लेख मिलता है –भाद्रपद की शुक्ल चतुर्थी का। इस तिथि को महोत्सव करना चाहिए।[70] मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा करनी चाहिए। मण्डप बनाकर मोदक, अपूप आदि पकवानो से गणेश की पूजा व उपवास करना चाहिए।[71] रात्रि

---

64 गणेश पुराण, 2 78 18

लतादि कदलीस्तम्भै सुच्छाय च सुशीतलम्।
स्नात्वा नित्यक्रिया कृत्वा मूर्तिश्चक्रु सुशोमना ।।

65 वही, 2 78 19-20

सिहारूढ़ा दशभुजा दशायुध विराजिता ।
सिद्धिबुद्धियुत पार्श्वे किरीटकुण्डलोज्ज्वला ।।

66 वही, 2 78 20

तस्मिन्मण्डपमध्ये ता स्थापयित्वा यथाविधि।
पुपूजु परया भक्त्या षोडशैरुपचारकै ।।

67 वही, 2 78 21

पञ्चामृतै शुद्ध जलैर्वस्त्रगन्ध दीपकै ।
नैवेद्यै विविधैश्चैव फलैर्रादिकै शुभै ।।

68 वही, 2 78 22

एव सपूज्य ते मत्र जेपु सवित्रतृष्टये।
अस्त याते सवितरि सन्ध्या कृत्वाऽस्तुवान्विभुम् ।।

69 वही, 2 78 11-12

माघस्य कृष्णपक्षोऽय सप्रवृत्तो ऽधुना सुरा ।।
चतुर्थी भौमयुक्ताऽस्य प्रिया विघ्न हरस्य ह।
स एव प्रकटीभूय दास्यते स्वपदानि व ।।

70 वही, 2 82 28

देवी पुपुजे देवता स्वयम्।
तदादि सा तिथि ख्याता गुणेशस्य वरप्रदा ।।

71 वही, 2 82 29

तस्या महोत्सव कार्यश्चतुर्थ्यां स्वशुभाप्ते।
मृन्मयी प्रतिमा कृत्वा पूजयेच्च यथाविधि ।।

जागरण करना चाहिए।[72] दूसरे दिन 21 ब्राह्मणो को भोजन कराना चाहिए। यथाशक्ति दान देकर [73] उन्हे विदा देने के बाद स्वय भोजन करना चाहिए। जो व्यक्ति चतुर्थी को गणेश की मूर्ति बनाकर पूजा नही करता [74] उसे अनेक विघ्नो का सामना करना पडता है। अनेक रोगो से वह पीड़ित भी होता है। ऐसे व्यक्ति का दर्शन भी नही करना चाहिए। [75] यदि दर्शन हो जाये तो गणेश का नाम नही लेना चाहिए।[76]

इस पुराण मे 'गणेश कवच' की चर्चा की गयी है। इसके अतर्गत वर्णित है कि जो भोजपत्र पर इसे लिखकर गले मे पहनेगा, वह जादू-टोने व पिशाच के भय से मुक्त हो जायेगा।[77] सभवत तत्कालीन समाज मे जादू-टोने व भूतप्रेत सबधी विचारधारा विकसित स्थिति मे रही होगी। दिन मे तीन बार इस स्त्रोत का पाठ करने वाला निर्विघ्न यात्रा करेगा, युद्ध मे विजय का भागी होगा।[78] मारण, उच्चारण, सम्मोहन आदि अभिचारी कर्मो

---

72 गणेश पुराण, 2 82 30

कृत्वा मण्डपिका चारूमुपोष्य जागृयान्निशि।
मोदकापूपलड्डुकै पायसै पूज्येद्वियुम् ।।

73 वही 2 82 31

अपरस्मिन्दिने विप्रान्भोजयेच्च यथाविधि।
एकविशति सख्याकान्यथाशक्ति च दक्षिणाम् ।।

74 वही, 2 82 3 2

दत्वातेथ्यो नमस्कृत्य पश्चाद् भोजनमाचरेत्।
यो न पूजयते चास्पा गणेश मृन्मय नर ।।

75 वही, 2 82 33

स विघ्नैरभिभूत सन्नानारोगै प्रपीडयते ।
न तस्य दर्शन कुर्यात्पतितस्येव कर्हिचित् ।।

76 वही, 2 82 34

जाते तु दर्शने तस्य गणेश नाम सस्मरेत् ।
चतुर्थ्यां महिमान नो न शक्य सुनिरुपितुम् ।।

77 वही, 2 85 34

भूर्जपत्रे लिखित्वेय य कण्ठे धारयेत्सुधीय ।
न भय जायते तस्य यक्षरक्ष पिशाचत ।।

78 वही, 2 85 35-36

त्रिसन्ध्य जपते यस्तु वज्ररसारतनुर्भवेत् ।
यात्राकाले पठेद्यस्तु निर्विघ्नेन फल लभेत् ।।
युद्धकाले पठेद्यस्तु विजय प्राप्नुयाद् ध्रुवम् ।

मे सात बार इसके पाठ से वाछित फल मिलता है।[79] इक्कीस दिन तक जो इसका पाठ करेगा वह कारागार से मुक्त हो जायेगा।[80] तीन बार जो इसका वाचन करेगा, राजा उसके वश मे होगा, वह राजा का सभासद हो जायेगा।[81]

इसी प्रकार के विभिन्न व्रत-उपवासो पूजा-पद्धतियो का इस पुराण मे उल्लेख है। जो तत्कालीन धार्मिक अवस्था को विशद रूप मे व्याख्यापित करते है।

पूर्वमध्यकाल की यह विशिष्टिता मानी जा सकती है कि इस काल मे व्रत-उत्सवो की सख्या मे अभूतपूर्व वृद्धि हुयी। ऋग्वेद मे 'व्रत' शब्द का बार-बार उल्लेख किया गया है। वहॉ यह शब्द जन-जातीय रीति-रिवाजो के सदर्भ मे प्रयोग किया गया है।[82] किन्तु उत्तर वैदिक काल मे 'व्रत' का अर्थ हो गया, धार्मिक शपथ या प्रतिज्ञा जो या तो अनिवार्यता के रूप मे थी अथवा प्रायश्चित के रूप मे हुई। ईसा की आरभिक शताब्दियो से व्रत और प्रायश्चित के बीच की सीमारेखा इतनी पतली हो गई कि एक का दूसरे मे विलय हो गया। गुप्त-पूर्व ग्रथो मे व्रतो की सख्या सीमित थी। गुप्त और गुप्तोत्तर काल मे स्थिति बदल गयी। तीर्थ व व्रतो का वर्णन तत्कालीन पुराणो मे अत्यत प्रभावी और व्यापक स्तर पर किया गया।[83] अनुमानत पुराणो मे व्रतो से सदर्भित लगभग पच्चीस हजार पद्य होगे।[84] ईसा की छठी शताब्दी से धर्म की सरचना तथा कर्मकाण्ड मे महत्वपूर्ण बदलाव आया। इस समय अनेक रूपो मे जातियो तथा गोत्रो के साथ ही तीर्थो तथा व्रतो की सख्या मे वृद्धि हुई। उनका अतिरजनापूर्ण वर्णन किया गया। ऋग्वेद मे 'व्रत' शब्द का विशिष्ट अर्थ है,जो लोग युद्ध, शिकार, पशुपालन, खेती द्वारा भोजन जुटाने के लिए एकत्र

---

79 गणेश पुराण, 2 85 36-37

मारणोच्चाटनाकर्ष स्तम्भ मोहनकर्मणि ।
सप्तवार पठेद्यस्तु दिननामेकविंशतिम् ।।
तत्तत्फलमाप्नोति साधको नात्रसशय ।।

80 वही, 2 85 38

एकविंशतिवार च पठेत्तावद्दिनानि य ।
कारागृहगत सद्यो राज्ञा वध्य च मोच्चयेत् ।।

81 वही, 2 85 39

राजदर्शनेवे लाभ्या पठेदेतत् त्रिवारत ।
स राजान वश नीत्वा प्रकृति च सभा जयेत् ।।

82 शर्मा, आर०एस०, प्रारभिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, द्वि स० 1996, पृ० 273

83 पी०वी०काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, खण्ड V, भाग 1, पूना, 1974, पृ० 27

84 वही, पृ० 57

होते थे, 'व्रा' कहलाते थे। उत्तरवैदिक काल मे 'व्रा' का अर्थ भारी मात्रा मे खाद्य सग्रह जुटाना दिया गया।[85] आगे चलकर 'व्रत' का प्रयोग धार्मिक शपथ तथा प्रतिज्ञा के लिए होने लगा जो अनिवार्यता तथा प्रायश्चित दोनो रूपो मे होते थे।व्रतो का वर्णन पुराणो मे प्रभावी शैली मे किया गया है।[86] गोपीनाथ कविराज द्वारा सपादित 'व्रत कोश' मे 1622 व्रतो का उल्लेख है। [87] किन्तु पी0वी0काणे ने काट-छॉटकर इनकी सख्या 1000 तक मानी है।[88]

स्मृतिकार देवल के अनुसार स्त्रियॉ तथा सभी वर्णो के लोग इन व्रतो को रख कर अपने पापकर्मो से मुक्ति पा सकते थे।[89] पुराणो और धर्मशास्त्र सबधी ग्रथो मे अनेक व्रतो का विधान केवल स्त्रियो के लिए किया गया था।[90] बढते हुए ब्राह्मणीय प्रभाव तथा सपत्ति के अधिकार पुरुषो के हाथ मे होने के कारण पितृतत्र हावी था। मदिरो तथा ब्राह्मणो को आदिवासी क्षेत्र दिये जाने के कारण इस प्रक्रिया मे तीव्रता आयी। जन-जातियो के बीच स्त्री की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण थी। आदिम जनजातियो तथा ब्राह्मणीय सामती समाज मे सामजस्य बैठाने के लिये मातृदेवी को मान्यता दी गयी तथा ब्राह्मणीय ग्रथो एव मूर्तिकला मे उसे सम्मान का स्थान प्रदान किया गया। पूर्वमध्यकाल मे सामाजिक तथा आर्थिक धरातल पर मातृतत्र का व्यापक रूप से निग्रह किया गया। धर्म मे कर्मकाण्ड का आधिक्य हो रहा था, जिसमे व्रतो की महत्ता बढ़ रही थी। इनमे से बहुत सारे व्रत स्त्रियो को रखने होते थे।

गणेश पुराण मे गणेश से सम्बद्ध विभिन्न व्रतो का विवरण है, जिसमे सकट चतुर्थी तथा अगारक चतुर्थी के व्रत मुख्य है। यह माघ मास के कृष्ण पक्ष मे मगलवार की चतुर्थी को रखे जाते थे। विभिन्न व्रत उपवासो मे रात्रि जागरण तथा गाजे-बाजे के साथ उत्सव का विशेष विधान माना गया है। इस पुराण मे वर्णित है कि कर्नाट देश के राजा वल्लभ की पत्नी कमला तथा उनके पुत्र दक्ष ने एक अगूठे पर खड़े होकर गणेश की आराधना की।[91] मालव देश के राजा की पत्नी इन्दुमती अपने पति की मृत्यु के पश्चात् नारद मुनि के आदेश पर गणेश को प्रसन्न करने के लिए श्रावण मास की शुक्ल चतुर्थी को व्रत रखकर

---

85 गणेश पुराण, पृ० 57

86 वही, पृ० 57

87 वही, पृ० 57

88 काणे द्वारा प्रस्तुत व्रतो की सूची वही, पृ० 255-462

89 काणे, पी० वी०, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र पृ० 51

90 काणे, पी० वी०, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, पृ० 51

91 गणेश पुराण, 1 20 22

पूजा का विधान करती है।[92] प्रस्तुत ग्रथ मे धार्मिक कर्मकाण्डो मे स्त्रियो की महत्वपूर्ण भूमिका दिखाई देती है। समाज के हर वर्ग के व्रतो, अनुष्ठानो आदि मे उनकी भागीदारी रहती थी। इस कारण उनकी स्थिति मे बदलाव दिखता है।[93] यहॉ तक कि तत्रवाद के प्रभाव के कारण मातृदेवी का भी पूजन होने लगा, जिससे मातृसत्तात्मक समाज की ओर झुकाव बढा। अपनी मातृसत्तात्मक परम्पराओ तथा पारिवारिक रीति-रिवाजो के साथ कबायली लोग बड़े पैमाने पर ब्राह्मणीय समाज मे शामिल हुए जिससे धर्मशास्त्रो मे विवाह सबधी नियमो मे नई व्यवस्थाओ का समावेश करना पड़ा। पूर्वमध्यकालीन धर्मशास्त्रो मे कुछ विशेष परिस्थितियो मे विधवा विवाह की अनुमति दी गई। स्त्रीधन के दायरे को बढाया गया। स्त्रियो की अवस्था मे ये अनेक परिवर्तन, ब्राह्मणीय समाज व्यवस्था मे कबायली लोगो के बड़ी सख्या मे सम्मिलित होने के परिणाम जान पडते है।[94]

कालान्तर मे इन व्रतो की सख्या मे तेजी से वृद्धि हुयी। स्मृतिकार देवल (600-900 ई0) के अनुसार स्त्रियॉ और सभी वर्णो के सदस्य इन व्रतो को रख सकते थे और इस प्रकार अपने पापो से मुक्ति पा सकते थे।[95] पुराणो और धर्मशास्त्र सबधी निबधो मे अनेक व्रतो का केवल स्त्रियो के लिये ही विधान किया गया।[96] चूँकि शूद्र, कुमारियॉ, विवाहित स्त्रियॉ, विधवाएॅ और वेश्याये तक व्रतो का पालन कर सकती थी अतएव इन धार्मिक अुनष्ठानो का सामाजिक आधार वैदिक यज्ञो के सामाजिक आधार की तुलना मे काफी व्यापक था।[97] भौतिक वस्तुओ की प्राप्ति के लिये व्रत रखे जाते थे। अधिकाश वैदिक यज्ञो मे स्वर्ग की प्राप्ति का आश्वासन दिया जाता था, किंतु व्रत उसके कर्ता को इसी ससार मे मूर्त लाभ देने वाले माने गये।[98] व्रतो के सर्वजनीन अधिकार होने के साथ-साथ उसके जो गुण प्रचारित किये गये उसकी वजह से इनकी सख्या बढती गई होगी।[99] पूर्वमध्यकालीन भारतीय जीवन उथल-पुथल तथा रूपातरण की अवस्था से गुजर रहा था। समाज, अर्थव्यवस्था, राज्य सरचना, भाषा, लिपि, धर्म तथा बौद्धिक जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। मध्यकाल के उद्‌भव-बिदुओ का निरूपण राजनीतिक तथा

---

92 गणेश पुराण, 1 55 25-30

93 नदी, रमेन्द्र नाथ, वही, पृ० 32

94 शर्मा, आर०एस०, पूर्वमध्यकालीन भरत का समती समाज एव सस्कृति, राजकमल प्रकाशन, 1998, पृ०12

95 पी०वी०, काणे, वही पृ० 51

96 वही, पृ० 51

97 शर्मा, आर०एस०, वही पृ०273

98 काणे, वही, पृ०45

99 नदी, रमेन्द्र नाथ, वही, पृ० 35

राजवशीय सर्वेक्षण से नही, बल्कि भारतीय जीवन के सभी पहलुओ के समग्र अध्ययन द्वारा ही किया जा सकता है। इस सदर्भ मे धर्म का बदलता स्वरूप भी उल्लेखनीय है। धर्म के अन्तर्गत बढता हुआ कर्मकाण्ड तथा पाखण्ड पुजारियो की अतिलोलुपता का परिणाम है जिसके कारण व्रतो, अनुष्ठानो की वृद्धि हुई।[100] अनेक धार्मिक कृत्यो तथा सकल्पो को पूरा करने के लिए उनका हस्तक्षेप आवश्यक था। ब्राह्मणो तथा पुरोहितो द्वारा बसाये गये क्षेत्र तथा नये क्षेत्रो मे आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक सामजस्य की समस्याएँ उठ खडी हुई। ब्राह्मण दानभोगियो के कृषि विषयक ज्ञान से मूल निवासियो को आर्थिक लाभ हुआ। इसके साथ ही जहाँ इनकी नई बस्तियाँ बसी थी, वहाँ उन्हे भूमि के निजी अधिकार प्राप्त थे। जिसके फलस्वरूप नये क्षेत्रो के लोग इनके काश्तकार बन गये।[101] धार्मिक परिवर्तन के पीछे सामाजिक तथा आर्थिक कारण भी क्रियाशील थे। इसी से पूर्वमध्यकालीन धर्मशास्त्र से सबधित रचनाओ मे कठोर श्रेणी विन्यास के स्थान पर भूसपत्ति, सैनिक स्थिति पर आधारित सामाजिक सगठन को प्रधानता दी गई। इसके साथ ही धर्म के अनुष्ठानो मे ब्राह्मणो का उच्च स्थान था। अधिकाश व्रतो, अनुष्ठानो मे ब्राह्मणो को भोजन कराया जाता था। इनमे से कई अनुष्ठान ऐसे है जिनमे वस्त्र, धन, दान, भोजन कराने की विधि अनिवार्य मानी गई है।[102]

गणेश पुराण पूर्वमध्यकालीन रचना है। अत उसमे गणेश से सम्बधित विभिन्न व्रतो के विधान की विस्तृत विवेचना मिलती है। गणेश की उपासना मे उपासक की स्वय शुद्धि की भी अनिवार्यता पर अति बल दिया गया है। प्रात काल उठकर नैरेत दिशा मे जाना चाहिए।[103] शौच आदि आचरण का विस्तारपूर्वक विधि-विधान वर्णित है। तत्पश्चात् स्नान व तिलक करके[104] धुले हुये दो वस्त्र (अधोवस्त्र व उत्तरीय) पहनना चाहिए। फिर अच्छी मिट्टी जो चिकनी व ककड़ी रहित हो, वाल्मीकि न हो, उसे जल से सिक्त कर गणेश

---

100 वाइजर एच०एच०, द हिन्दू यजमानी सिस्टम, लखनऊ, 1936, पृ० 103

101 वही, पृ० 135

102 नदी, रमेन्द्र नाथ, वही, पृ० 48

103 गणेशपुराण,1 49 4
प्रत्युषकाल उत्थाय नैऋती दिशमाव्रजेत् ।
आच्छाद्य धरणी पूर्व तृणकाष्ठ दलैरपि ।।

104 गणेश पुराण, 1 49 7-8
कृत्वा पूर्ण मलस्नान ततश्चरेत मृदा वा चन्दनेनापि तिलक कुकमेन वा ।।

की सुन्दर मूर्ति बनानी चाहिए।[105] मूर्ति चतुर्भुज हो व हाथो मे शस्त्र धारण किये हो। उस मूर्ति का षोडशोपचार से पूजन करना चाहिए, जिसमे अगर, अक्षत, लाल पुष्प, गोकुल, तीन या सात पत्तो से युक्त दूब, पुष्प, घी का दीपक, नैवेद्य, मोदक, पुआ और खाड डाले हुये दूध, 108 सुपारी, कत्था, इलाइची, लौग, केसरयुक्त ताम्बूल, आम, कटहल, किशमिश, केला और ऋतु के अन्य फल आदि विविध वस्तुओ से षोडशोपचार [106] युक्त पूजा करनी चाहिए। तत्पश्चात् आगमानुसार मातृकाओ का न्यास, मत्र-न्यास व खड्ग-न्यास आदि मत्रो से पूजा करनी चाहिए।[107] फिर गणेश का ध्यान व स्तुति करनी चाहिए। सारे तीर्थो से लाये हुये पाद प्रक्षालन हेतु जल, प्रवाल, मुक्ताफल, ताम्बूल, सुवर्ण, पुष्प, अक्षतो से युक्त पूजा अर्पित करनी चाहिए।[108] गगा आदि तीर्थो के उत्तम जल को अर्पित कर कपूर, लौग, केला आदि की सुगधी भी उनसे ग्रहण करने के लिये निवेदन करना चाहिए।[109] चपा, अशोक, बकुल, मालती, मोगरा आदि से वासित तेल स्निग्धता के लिये अर्पित है। इसे ग्रहण करे।[110] कामधेनु से उत्पन्न सभी को जीवन देने वाला पवित्र दुग्ध स्नान हेतु

---

105 गणेश पुराण, 1 49 9-10

मृत्तिका सुन्दरा स्निग्धा क्षुद्रपाषाण वर्जिताम् ।
सुविशुद्धामवल्मीका जलसिक्ता विमर्दयेत् ।।
कृत्वा चारुतरा मूर्ति गणशस्य शुभा स्वपम् ।
सर्वावयव सपूर्णौ चतुर्भुज विराजिताम् ।।

106 इपिग्राफिया इण्डिका-9, पृ०117-119, सस्कार रत्नमाला, पृ० 27

देवपूजा के सोलह या अट्ठारह उपचारो का विवेचन पुराणो एव निबधो मे भी किया गया है किन्तु यह भी उल्लिखित है कि वस्त्र तथा अलकारादि सभव न हो तो केवल पाद्य से नैवेद्य तक दस उपचारो को ही सम्पादित करना चाहिए। यदि यह भी सभव न हो तो गध से लेकर नैवेद्य तक की मत्रोपचार पूजा करनी चाहिए। इसके भी सभव न होने पर पुष्प मात्र से ही पूजा करनी चाहिए। द्रष्टव्य-नित्याचारपद्धति, पृ०549 जयवर्मन ॥ के मन्धाता अभिलेख मे भी पचोपचार पूजा का विधान उल्लिखित है।

107 वही, 1 11 12

108 गणेश पुराण, 1 49 26-27

देवदेवेश सर्वेश सर्वतीर्थान्कृत जलम् पाद्य ।
गृहाण गन्ध पुष्पाक्षतैर्युतम् ।।
प्रवाल मुक्ताफल पत्र रत्न, ताबूल जाबूनदमष्टगधम् ।
पुष्पाक्षतायुक्त ममोधशक्ते, दत्त मयाऽर्ध्यसफली कुरुष्व ।।

109 वही, 1 49 28

गगादि सर्वतीर्थेभ्य प्रार्थिततोयमुत्मम् ।
कर्पूरैला लवगादि वासित स्वीकरु प्रभो ।।

110 वही, 1 49 29

चम्पकाशोक बकुल मालती मोगरादिभि ।
वासित स्निग्धता हेतु तैल चारु प्रगृह्यताम् ।।

तथा घृत, पुष्पो के सार से उत्पन्न मधु, गन्ने से उत्पन्न शर्करा, पुष्टिकारक गुड, कासे के पात्र से ढँका दधि, मधु व घृत से युक्त मधुपर्क आदि सभी कुछ गजानन को समर्पित करना चाहिए।[111] सारे तीर्थो का जल स्नान हेतु अर्पित है तथा दो लाल वस्त्र लोक-लज्जा के निवारण हेतु है, ये सूक्ष्म है, इन्हे ग्रहण करे। रजत वर्ण का यह ब्रह्म सूत्र जो रत्नो से युक्त है,ग्रहण करे। अनेक रत्नो से युक्त आभूषण भी अर्पित करना चाहिए। अष्टगध से युक्त रक्त चदन उनके बारहों अगो मे प्रलेपित करना चाहिए[112] माथे पर तदुल तिलक लगाना चाहिए। तत्पश्चात् विभिन्न पुष्पो व बिल्व पत्रो से युक्त माला अर्पित करनी चाहिए। दीपक अर्पित कर अनेक पकवानो को भी समर्पित करना चाहिए।[113] अत मे कपूर, सुपारी, कत्थे से मिला इलाइची व लौग, केसरयुक्त ताम्बूल अर्पित कर स्वर्ण की दक्षिणा देनी चाहिए तथा 21 बार देव प्रदक्षिणा कर लकडी, चादी, कॉसा या सुवर्ण, जैसा सभव हो वैसा, दीप समर्पित कर अपने समस्त पातको को नष्ट होने की भिक्षा मॉगे।[114] गणेश सहस्त्रनाम की स्तुति करे व मत्र का जाप करे।[115] यह व्रत पूरे एक मास तक चलता है। जो श्रावण मास के शुक्ल चतुर्थी से आरभ [116]होकर भाद्रपद मास की चतुर्थी को समाप्त होता है।[117]

इस व्रत मे विभिन्न सख्या मे मूर्तियो की पूजा से विभिन्न फल प्राप्ति का विधान बताया गया है।वैसे मिट्टी की अकेली मूर्ति की पूजा भी पर्याप्त बतायी गयी है। यह सभी कामनाओ की पूर्ति करने वाली है।[118] त्रिमूर्ति की पूजा राज्य, रत्न और सब प्रकार की

---

111 गणेश पुराण, 1 49 30-36

112 वही, 1 49 8

113 वही, 1 49 14-15

114 वही, 1 49 17

115 वही, 1 49 67

116 वही, 1 50 7-8

नभ शुक्ल चतुर्थ्या त्वमारभ्य कुरु सुव्रते ।
अनुष्ठान मासमात्र कुरु कार्य सिद्धि भविष्यति ।

117 वही, 1 50 23

'यावद्रभाद्रपदे मासे चतुर्थी परिलभ्यते'

118 वही, 1 50 9

'एका ददाति सा काम्य धनपुत्रपशूनपि'

सम्पत्ति देती है।[119] चतुर्मूर्ति की पूजा करने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारो पदार्थ मिलते है। पचमूर्ति के पूजन से सार्वभौम राजा का पद प्राप्त होता है।[120] षडमूर्ति की पूजा से सृष्टि, स्थिति और लय का कारक बन जाता है। सात-आठ और नौ मूर्तियो के पूजन से व्यक्ति सर्वज्ञ बन जाता है। भूत, भविष्य व वर्तमान सब जान लेता है।[121] दस मूर्तियो की पूजा करने वाले की देवता, इन्द्र, विष्णु, शिव, सनक आदि पूजा भी करने लगते हैं। ग्यारह मूर्तियो की सेवा करने से व्यक्ति दस रुद्रो का स्वामी बन जाता है।[122] बारह मूर्तियो की पूजा करने से द्वादश राज्य मिलता है। अत्यधिक सकट के समय अधिक मूर्तियो की पूजा करनी चाहिए।[123] पच मूर्तियो की पूजा कारागार से मुक्ति दिलाती है।[124] प्रतिदिन पॉच वर्ष तक सप्तमूर्ति की पूजा करने से मनुष्य महापापो से भी मुक्त हो जाता है।[125]

इस व्रत का समापन वेदी पर दशाश के हवन व फिर पूर्णाहुति द्वारा करनी चाहिए।[126] रात्रि जागरण, उत्सव, दान, भोजन, दक्षिणा आदि का भी समुचित प्रबध

---

119 गणेश पुराण, 1 50 10
असाध्य साधयेन्मर्त्यो मूर्ति द्रव्य प्रपूजनात् ।
स्त्रीमूर्ति पूजनाद्राज्य रत्नानि सर्व सम्पदा ।।

120 वही, 1 50 11
चतुर्मूर्ति पूजयेद्यो धर्मार्थ काम मोक्षभाक् ।
सार्वभौमो भवेद्राजा पचमूर्ति प्रपूजनात् ।

121 वही, 1 50 12-13
षण्मूर्ति पूजया सृष्टि स्थिति प्रलय कृद भवेत् ।
सप्ताष्ट नव मूर्तिना पूजया सर्वविद् भवेत् ।।
भूत भविष्य च वेत्ति प्रसादत ।

122 वही, 1 50 13-14
त्रयस्त्रिशत्कोटि देवा वन्हीन्द्र शिवविष्णव ।
सनकाद्या मुनिगणा सेवन्ते दशपूजनात्
एकादशार्चना देव दशरुद्राधिपो भवेत् ।।

123 वही, 1 50 15
द्वादशादित्य राज्य च लभेच्च द्वादशार्चनात् ।
अतिसकट वेलासु कुर्याद् वृध्या प्रपूजनम् ।।

124 वही, 1 50 17
कारागृहान्मुक्ति काम कारयेन्मूर्ति पचकम् ।

125 वही, 1 50 18
सप्तमूर्ति प्रकुर्वीत् प्रत्यह पच्वत्सरम्।
महापापाप्रमुच्यते गणेशे भक्तिमान्नर ।।

126 वही, 1 50 26
कुडे साग स्थडिले वा हुयाज्जप दशाशत ।
पूर्णाहुति तत कुर्याद् बलिदान पुर सरम् ।।

करना चाहिए।[127] अत मे मूर्ति को पालकी मे बिठाकर छत्र, ध्वज, पताका व चमर के साथ जलाशय तक ले जाकर विसर्जित करना चाहिए।[128]

प्रस्तुत ग्रथ मे गणेश से सम्बधित विभिन्न व्रतो का विवरण है, किन्तु सकट चतुर्थी व अगारक चतुर्थी के व्रत विशिष्ट है। सकट चतुर्थी का गणेश के विभिन्न व्रतो मे विशेष महत्व है। माघ मास के कृष्ण पक्ष मे यदि भौमवार (मगलवार) को चतुर्थी हो तो उस दिन व्रत का आरभ करना चाहिए।[129] इस व्रत मे पूरे विधि-विधान से गणेश की पूजा की जाती है किन्तु एक विशिष्टिता यह है कि इसमे 21 वस्तुओ का विशेष महत्व है, 21 दीपक व 21 दूर्वा चढ़ाने का विधान है। 21 ब्राह्मणो को भोजन, 21 परिक्रमा, 21 मुद्रा की दक्षिणा, 21 फल, 21 नाम आदि का प्रावधान है।[130] इस व्रत को एक वर्ष तक करने का विधान मिलता है।[131] इसमे मत्र जाप शमी वृक्ष के मूल मे बैठकर करना चाहिए।[132] पूरे वर्ष अलग-अलग महीनो मे कौन सा खाद्य ग्रहण करना है व उससे कौन सी सिद्धि प्राप्त होगी, इसका विवरण भी इसमे प्राप्त होता है। जैसे, श्रावण मास मे सात लड्डू, भादो मे दही,[133] अश्विन मास मे उपवास, कार्तिक मास मे दुग्धपान, मार्गशीर्ष मे निराहार, पौष

---

127 गणेश पुराण 3 10 50 27-31

128 वही, 1 50 32-33

छत्रध्वज पताकाभि श्चामरै रुपशोभिताम् ।
किशोरै र्दण्डयुद्धेन युद्धभिश्च पुर सरम् ।।
महाजलाशय गत्वा विसृज्य निनयेज्जले ।

129 वही, 1 59 21

चतुर्थी भौमवारे तु माघे कृष्णे भवेद्यदि ।

130 वही, 1 59 29
फलैर्नाना विधै पूग ताबूलैर्दक्षिणादिभि ।
एकविंशति दूर्वाभि दीपैश्च कुसुमैरपि ।।
- वही, 30 'ब्राहम्णान्भोजये भुदक्त्वा शक्त्या वा चैकविंशतिम् ।'
- वही, 32 'देश द्वादश वाऽशक्तो दक्षिणाभि सुतोषयेत्'
- वही, 1 49 63

दूर्वाकुश मयादत्त एकविंशति समिता ।
एकविंशति सख्याका कुर्यादि्व प्रदक्षिणा ।।

131 वही, 1 59 33-34

एव व्रत चैकवर्ष कृत चेधत्नतो नृप।
सर्व पाप क्षमात्तस्य भविता पुत्र उत्तम ।।

132 वही, 59 35 शमीमूले जपस्तिष्टन्तुपवास परायण

133 वही, 1 59 38

भक्षेय वर्ष पर्यन्त तस्य सिद्धिस्तुत्तमा।
श्रावणे सप्त लड्डूका दधिभक्षणम्।।

मास मे गोमूत्र का पान,[134] माघ मे तिल भक्षण, फाल्गुन मे घृत और शर्करा, चैत्य मे पचगव्य और वैशाख मे शत पत्रिका,[135] ज्येष्ठ मास मे घृत व आषाढ मे मधु का भक्षण करना चाहिए।[136]

गणेश के विभिन्न व्रतों-उपवासो व उपासना प्रसगो मे रात्रि जागरण और गाजे-बाजे के साथ उत्सव करने का विशेष विधान माना गया है। कई स्थलो पर इसका विस्तार से कथन है।[137]

स्पष्ट है कि पूर्वमध्यकालीन समाज मे व्याप्त धार्मिक जीवन के सभी तत्वो को गणेश पूजा व गाणपत्य सम्प्रदाय ने अपनाया। जिसका स्पष्ट उल्लेख गणेश पुराण मे है।

वर्तमान काल मे गणेश पूजा से सम्बधित गणेश-उत्सव तथा अनुष्ठान एव व्रत भारत के विभिन्न भूभागो विशेषत महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा दक्षिण क्षेत्रो मे आज भी सामूहिक व सामुदायिक व्यवस्था के रूप मे मनाये जाते है। उत्तर भारत के अधिकाश क्षेत्रो मे सौभाग्यवती व पुत्रवती स्त्रियॉ गणेश पुराण मे वर्णित अनेक व्रतो और अनुष्ठान का अनुपालन व्यक्तिगत स्तर पर करती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस ग्रथ मे गणेश से सबधित उपासना पद्धतियो व अनुष्ठानो का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है, जो तत्कालीन समाज की धार्मिक भावनाओ व प्रवृत्तियो का परिचायक है।

दर्शन-तत्व

धर्म मानव जीवन का महत्वपूर्ण अग है। इसमे नैतिक मूल्यो, आचरणगत अभिव्यक्तियो तथा परमात्मा के प्रति भक्ति भावना का सन्निवेश रहता है। धर्म से जिन

---

134 गणेश पुराण, 1 59 39
आश्विने चोपवास च कार्तिके दुग्धपानकम् ।
मार्गशीर्षे निराहार पौषे गोमूत्र पानकम् ।।

135 वही, 40
तिलाच भक्षयेन्माघे फाल्गुने घृतशर्करम् ।
चैत्रमासे पचगव्य वैशाखे शतपत्रिकाम् ।।

136 वही, 1 59 41 'घृतस्य भोजन ज्येष्ठ आषाढ़े मधु भक्षणम् '

137 वही, 1 50 24
तस्या महोत्सव कार्यो यथाविभवमादरात् ।
रात्रौ जागरण कार्य तत्कथा वाद्यगायनै ।।
- वही, 7 59 32
गीत वादित्र घोषेण शेषा रात्रि ततो नयेत् ।
एत व्रत चैकवर्ष कृत चेधत्नतो नृप ।।

मूल्यो, मान्यताओ, धारणाओ और स्थापनाओ का ज्ञान होता है, उन्ही के अनुरूप मानव कर्म मे प्रवृत्त होता है। धर्म से ही दार्शनिक चेतना का उदय होता रहा है, जो मानव के आध्यात्मिक जीवन को उन्नत करने मे मार्गदर्शक बनता है ।[138] दार्शनिक चितन का प्रारभ ऋग्वेद काल से ही हो गया था।[139] यद्यपि इसका यथेष्ठ विकास उत्तर वैदिक काल मे तब हुआ जब उपनिषदो की रचना होने लगी। परवर्ती काल मे आकर जीवन का आध्यात्मिक उत्कर्ष भी हुआ तथा 'न्याय' जैसी तर्कपूर्ण दार्शनिक विचाराधारा का भी विकास हुआ।[140] वेदो का चितन जगत और जीवन के वैविध्य और दुर्गम्यता से सदर्भित है। ऋग्वेद मे बहुदेववासी चितन का स्वरूप प्राप्त होता है,[141] जबकि उपनिषदो मे एकेश्वरवादी विचारधारा का प्रचलन हुआ। इसने विभिन्न देवो तथा विचारधाराओ को एक मे समाहित कर लिया।[142] 'एक सद्विप्रा बहुधा वदति' के साय अद्वैतवाद की कल्पना हुई।[143] वैदिक विचारो और धारणाओ की पुराणो मे स्पष्ट झलक मिलती है। इनमे वैदिक आख्यानो एव मान्यताओ को नवीन रूप मे विवृत किया गया है। वैदिक दर्शन और चितन का आकलन भी इनमे है। वेद के अव्यय, अक्षर और क्षर पुरुष ब्रह्मा, विष्णु और शिव बन गये। 'त्रिधाम विद्या' अथवा 'सप्तधाम विद्या' विष्णु के वामनावतार के आकार मे परिवर्तित हो गयी।[144] उपनिषदो के ज्ञानतत्व को भी पुराणो ने नये परिवर्तनो और नये परिप्रेक्ष्य मे ग्रहण किया। उपनिषदो मे ज्ञान तत्व तथा ब्रह्म की व्याख्या करते हुए उल्लिखित है-सद् ही सर्वोच्च है, वह एकमेवोद्वितीय परब्रह्म है।[145] उपनिषदो की इसी परम्परा को कालान्तर मे पुराणो ने अपने इष्टदेवो के साथ सम्बद्ध किया।

भारतीय सस्कृति मे जहॉ आचार साधना, पथ-समुदाय आदि का बाहुल्य है, वही देवी-देवताओ के अनत स्वरूप भी प्राप्त होते है। मनुष्य अपनी आस्था तथा श्रद्धा के अनुसार सम्प्रदाय विशिष्ट से जुड़ता है। वैष्णव, शैव, शक्ति, सौर, गाणपत्य आदि विभिन्न सम्प्रदाय तथा विचारधाराऍ हैं। गाणपत्य सम्प्रदाय ने गणेश को ही परमतत्व तथा सर्वोपरि देव माना। भारतीय चितको ने इस जगत को अपनी-अपनी दृष्टि से समझने का प्रयास

---

138 बेबर मैक्स, रिलिजन ऑफ इडिया, न्यूयार्क, 1967, पृ० 52-64

139 ऋग्वेद , 1 164, 10 129, 10 121

140 बेवर मैक्स, वही पृ० 161

141 हॉपकिन्स, ई०डब्लू०, द रिलिजन्स ऑफ इडिया, नयी दिल्ली, 1972, पृ० 6,12

142 वही, पृ० 11, 13, 67, 70 आदि

143 वही, 396

144 मिश्रा, जे०एस०, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ० 686

145 छान्दोग्य उपनिषद, 6 2 1

किया तथा अपने दृष्टिकोण से विश्लेषण किया है। भारतीय चितन के इतिहास मे दर्शन की छह धाराएँ न्याय, वैशेषिक, साख्य, योग, मीमासा और वेदान्त विकसित हुई, जिनसे मिलकर भारतीय दर्शन की रूपरेखा निर्धारित होती है।[146] कालान्तर मे विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायो ने दर्शन की इन धाराओ को अपने तरीके से ग्रहण कर अपने आराध्य के माध्यम से लोगो तक पहुँचाया। कई बार ऐसा भी हुआ कि सम्प्रदायो ने सभी दार्शनिक धाराओ के समेकित स्वरूप को अपनी धार्मिक विचारधारा मे ग्रहण किया। जैसे, गणेश, शिव या विष्णु क्रमश गाणपत्य, शैव व वैष्णव सम्प्रदाय के इष्टदेव है, किन्तु इन सम्प्रदायो का अपना कोई दर्शन नही है। अत इन्होने वेदान्त, साख्य, न्याय या तत्र (पाचरात्र) आदि से ही तत्व ग्रहण कर उसे साम्प्रदायिक स्वरूप प्रदान किया है।[147]

पूर्व मध्यकाल मे गाणपत्य सम्प्रदाय विभिन्न धर्म, दर्शन व सम्प्रदायो से प्रभावित हुआ, जिनका स्पष्ट दिग्दर्शन उनके साहित्य मे है। साख्य, योग, न्याय, शैव, वैष्णव, शाक्त व तात्रिक दर्शन के प्रभाव से गाणपत्य सम्प्रदाय एव गणेश की लोकप्रियता मे पर्याप्त वृद्धि हुई।

उपनिषदो की 'एकोऽह बहुस्या प्रजायेय' विचारधारा से गाणपत्यो ने गणेश को सम्बद्ध करते हुए परब्रह्म के रूप मे उन्हे स्थापित कर दिया। वे ही परब्रह्म के रूप मे अभिव्यक्त हुए।[148] स्पष्ट है कि गाणपत्यो पर औपनिषदिक विचारधारा का सम्यक प्रभाव पड़ा है। गणेश को गाणपत्य साहित्य मे निर्गुण, निराकार[149] निर्विकल्प, निरहकार, आनदरूप, अनिवर्चनीय आदि कहा गया है।[150] मुद्‌गल पुराण मे भी गणेश के इसी स्वरूप को व्याख्यायित करते हुए कहा है -गणेश शब्द मे आया 'गकार' जगत रूप और 'णकार' ब्रह्मवाचक है।[151] गणेश पुराण मे गणेश के सगुण व निर्गुण दोनो स्वरूपो मे एकता का प्रतिपादन किया गया है। उनके स्वरूप की व्याख्या करते हुए कहा गया है-वह सत्य स्वरूप, चराचर सृष्टि के कारण, नियता, इन्द्रियो के अधिष्ठाता, भूतमय सृष्टि के

---

146 दत्ता एव चटर्जी, भारतीय दर्शन, पटना, 1982, पृ० 12

147 पाठक, वी०एस०, हिस्ट्री ऑफ शैव कल्ट इन नार्दर्न इण्डिया, वाराणसी, 1960, पृ० 35

148 गणेशोत्तरतापिनी उपनिषद्, 4 2
गणेशो वैसदजायत तद वै पर ब्रह्म

149 वही, 4 1 (तप) 'तच्चित्स्वरूप निर्वकार अद्वैत च'

150 गणेशपूर्वतापिनी उपनिषद्, 5 1

151 मुद्‌गल पुराण, गणेशस्त्रोत्र, 4
जगद्रूपो गकारश्च णकारो ब्रह्मवाचक ।
तयोर्योगे गणेशाय नाम तुभ्य नमो नम ।।

रचयिता, उसकी स्थिति व लय रूप, सभी कारणो के परम कारण है।[152] मण्डूकोपनिषद् मै भी गणेश के इसी स्वरूप का विस्तृत विवेचन एव व्याख्या की गयी है। 'गकार' सगुण प्रतिपादक है और 'णकार' निर्गुणवाचक। सगुण रूपी गकार के साथ निर्गुण का बोध हो, इसलिए 'णकार' का योग 'गकार' के साथ किया गया है जिससे 'गण' शब्द की निष्पत्ति हुई है। इससे निर्गुण, सगुणात्मक 'ब्रह्म' गणेश का बोध हुआ। इस प्रकार और 'णकार' से ही अनेक ब्रह्मा और सृष्टि की उत्पत्ति हुई है।[153] गीता दर्शन के अवतारवाद व अद्वैतवाद का स्पष्ट प्रभाव गणेश पुराण मे वर्णित दर्शन पर परिलक्षित होता है। गणेश स्वय कहते है कि जब अधर्म की वृद्धि और धर्म का क्षय होने लगता है तब साधुओ की रक्षा व दुष्टो के नाश हेतु मै जन्म लेता हूँ। मै ही अधर्म के समूहो को नष्ट करके धर्म की स्थापना करता हूँ। [154] गणेश पुराण के 'गणेश गीता' खण्ड मे 'योग' पर विशेष बल दिया गया है। गणेश गीता मे मनुष्य के कर्तव्यो का विभाजन किया गया है। जिससे उसकी भौतिक व आध्यात्मिक उन्नति हो सके। गणेश गीता मे 'योग विचार' अत्यत महत्वपूर्ण है। आत्मा और परमात्मा, जीव और शिव के सबध का सिद्धात ही योग कहलाता है। जीव और ईश्वर मे सम्बन्ध के तीन साधन बताये गये है, कर्म, भक्ति और ज्ञान।[155] गीता मे 'योग' शब्द सम्बध वाचक है। 'युज्' धातु से 'योग' शब्द बनता है, जिसका अर्थ 'मिलना' या 'सम्बन्ध स्थापित' करना है। गीता का यह योग, पातजल योग से भिन्न है।

पातजल योग मे 'योग' शब्द समाधि वाचक है। वहॉ चित्रवृत्ति निरोध को ही योग माना गया है। 'गणेश गीता' मे योग समाधि नही वरन् सोपान है। साध्य नही, साधन है।

---

152 गणेश पुराण, 1 40 42-44

153 मुण्डकोपनिषद्, 2 2 11

मनोवाणीमय सर्व दृश्यादृश्यस्वरूकम् ।
गकारात्मकमेव तत्तत्र ब्रह्म गवाचक ।।
मनोवाणी विहीन च सयोगायोग सस्थितम् ।
णकारात्मकरूप तण्णकारस्तत्र सस्थित ।।
विविधानि णकाराणि प्रसूतानि महामते ।
ब्रह्माणि तानि कथ्यन्ते तत्वरूपाणि योगिभि ।।
निरोधात्मकरूपाणि कथितानि समन्तत ।
गकारस्य गकारस्य नाम्नि गणपते स्थितौ।।
तदा जानिहि भो योगिन् ब्रह्माकारौ श्रुतेर्मुखात् ।
तयो स्वामी गणेशश्च योगरूपेण सस्थित ।।
त भजस्व विद्यानेन शातिमार्गेण पुत्रक ।।

154 गणेश पुराण, 2 140 6-18

155 वही, 2 138 7

लक्ष्य नही, मार्ग है। कर्म, भक्ति और ज्ञान ये तीन योग के प्रकार माने गये हैं। इन तीनो से ईश्वर की प्राप्ति सभव है। तीनो समानत महत्वपूर्ण हैं।

गणेश स्वय ही व्याख्यायित करते हुए बताते है कि योग क्या है? सामान्य रूप से जिसे योग कहते है, वह योग नही है। लक्ष्मी का योग, व्यक्ति का विषयो से योग, पिता-माता के साथ योग, बधु, पुत्र आदि के साथ योग, आठ विभूतियो के साथ योग, पत्नी के साथ योग, राज योग, इन्द्रपद से योग और सत्यलोक से जो योग है, उसे योग नही माना जा सकता।

शैव योग, वैष्णव योग, सूर्य के आराधना का योग, अनिल व अनल हो जाना अथवा अमर हो जाना, वरुण पद प्राप्त करना यह सब कुछ भी योग नही है। ससार मे जो लोग इच्छा (तृष्णा) को त्याग कर ब्रह्मचर्य धारण कर तीनो लोको को वश मे करके ससार को पवित्र करते हैं, उनका हृदय करुणा से पूर्ण होता है।[156] ऐसे लोग क्रोध व इन्द्रियो को जीत लेते है। लोष्ठ व काचन इनके लिए समान है। यही योगी होते है।[157] सर्वोत्तम योग के विषय मे बताया गया है कि इसे सुनकर प्राणी पाप व भवसागर से मुक्त हो जाता है। शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य व मेरे (गणेश) प्रति जो अभेद बुद्धि है, वही सच्चा योग है।[158]

प्रारभ मे मनुष्य का ज्ञान मे अधिकार नही होता। वह कर्म से जुड़ (मिल) जाता है। इससे उसका हृदय शुद्ध होता है। अत मे अभेद बुद्धि प्राप्त करता है। यही सच्चा योग बताया गया है। इससे व्यक्ति अमरत्व को प्राप्त करता है।[159] समत्व योग को गणेश पुराण मे व्याख्यायित करते हुए कहा गया है कि पशु, पुत्र, मित्र, शत्रु, बधु इन सबको समान दृष्टि से देखना, हर्ष, विषाद आने पर समान बने रहना, रोग हो या भोग, जय हो या विजय, लाभ हो या हानि इन सब के प्रति समान रहकर वस्तुजगत मे अवस्थित मुझे देखना ही समत्व योग है।[160] योग को और व्याख्यायित करते हुए आगे कहा गया है-सूर्य, चन्द्रमा, जल, अग्नि, शिव, शक्ति, ब्राह्मण, तीर्थ, विष्णु आदि देवता, गधर्व, मुनि, पशु इन सबमे मेरा दर्शन करने वाला ही योग को जानने वाला है।[161] विवेक द्वारा इन्द्रियो को

---

156 गणेश पुराण, 2 138 13-15

157 वही, 2 138 18-19

158 वही, 2 138 20-23

159 वही, 2 138 37-40

160 वही, 2 138 41-43

161 वही, 2 138 44 46

स्वार्थ से हटाकर सर्वत्र समता बुद्धि बना लेना योग है। विवेक से अपने धर्म मे लगकर जो बुद्धि प्राप्त होती है, वह योग है। जो धर्म व अधर्म का त्याग कर देता है वह योगी नही है। वैध धर्मो मे कुशलता पाना योग है।[162] योग की प्राप्ति किस प्रकार सभव है, इसके उत्तर मे गणेशगीता कहती है-वेदत्रयी के प्रति जब मनुष्य उदासीन बने व परम तत्व के प्रति बुद्धि अचल हो जाये, तब उसे योग की प्राप्ति होगी।[163] इस प्रकार गणेश पुराण मे योग व योगी की व्याख्या व विशिष्टता बतायी गयी है। गणेश पुराण मे वैष्णव धर्म और दर्शन का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। गणेश की सत्ता को विष्णु से भी उच्च स्थापित करने का प्रयास किया गया है। सदर्भित है-गणेश अनादिकाल से ही योगीश्वरो द्वारा पूज्य रहे है। योगेश्वर विष्णु द्वारा गणेश के प्राणायामपूर्वक ध्यान, मत्र, जप तथा आराधना किये जाने का विवरण है। पृथ्वी पर सिद्धि प्रदान करने वाले विष्णु ने सिद्धि क्षेत्र मे घोर तप किया। उन्होने षडाक्षर मत्र का जाप कर विधिपूर्वक गणेश की आराधना की।[164]

गणेश पुराण पर मात्र वैष्णव प्रभाव ही नही, अपितु शैव प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। शैव धर्म व दर्शन परम्परा मे भी गणेश को उच्च व शिव द्वारा पूजित माना गया है।[165] शिव- पार्वती के पुत्र होने की परम्परा का तो निर्वहन हुआ है किन्तु गणेश की सत्ता शिव से उच्च है, यह सिद्ध करने का प्रयास भी किया गया है।[166]

कर्मयोग

गणेश की वाणी मे सयोजित 'गणेश गीता' योग मार्ग प्रकाशिनी कही गयी है। इसमे कर्म, भक्ति और ज्ञान के तत्व का सम्यक विश्लेषण किया गया है।[167] गणेश ने

---

162 गणेश पुराण, 2 138 49

163 वही, 2 138 52-53

164 वही, 1 18 6-7

प्राणायामम्य मूलेन ध्यात्वा देव गजाननम् ।
आवाहनादि मुद्राभि पूजयित्वा मनोमयै ।।
द्रव्यैर्नानाविधैश्चैव षोडशैश्चोपचारके ।
जजाप पारक मत्र विष्णुर्योगेश्वरेश्वर ।।

165 वही, 2 82 5-8

166 वही, 1 5 3

167 वही, 2 137 4

अथ गीता प्रवक्ष्यामि योगमार्गप्रकाशिनीम् ।
नियुक्ता पृच्छते सूत राज्ञे गजमुखेन या ।।

राजा वरेण्य से स्वय ही कहा-मैं योगामृतमयी गीता का प्रवचन करता हूँ। मेरे अनुग्रह से आपकी बुद्धि अच्छी तरह सयत है।[168] इस चराचर जगत मे ब्रह्म (परमतत्व) की प्राप्ति की दो स्थितियाँ है। ज्ञानमार्गियो को बुद्धियोग से तथा कर्ममार्गियो को शास्त्रविहित कर्मयोग से सिद्धि प्राप्त होती है।[169] कर्मयोग को आगे विवेचित करते हुए कहा गया है कि इसके तीन स्तर है। अहकार रहित हो कर्म करना ही कर्मयोग है, अनासक्त कर्म ही कर्मयोग है, निष्काम कर्म ही कर्मयोग है।[170] कोई भी व्यक्ति एक क्षण के लिए भी बिना कर्म के नही रहता। वह पराधीन है। प्रकृतिजन्य गुणो से उसे कर्म करना ही पड़ता है।[171] जो व्यक्ति इन्द्रिय समुदाय का नियमन करके रहता है और विषयो का मन मे स्मरण करता रहता है, वह मिथ्याचार है। मनुष्य को चाहिए कि मन से इन्द्रिय समुदाय का नियमन करके जो कर्म करता है वह वितृष्ण अथवा तृष्णा त्यागी हो जाता है।[172] कर्म का त्याग करने की अपेक्षा इच्छारहित कर्म करना अधिक अच्छा है। कर्म को भगवत अर्पण किये बिना कर्ता उससे बद्ध हो जाता है। जो मेरे लिए कर्म किये जाते है उनसे व्यक्ति बद्ध नही होता। वासना सहित जो कर्म किया जाता है वही प्राणी का बधन बनता है।[173] जो व्यक्ति आत्मतृप्त है उसके लिए ससार मे कुछ भी अभिलाषनीय नही है। वह कार्य व अकार्य से शुभ या अशुभ नही प्राप्त करता। उसके लिए कुछ भी साध्य शेष नही रहता। इसलिए प्राणियो को अनासक्त भाव से कर्म करना चाहिए। जो विषयो मे आसक्त है, उसे अगति मिलती है। जो अनासक्त है, वह मुझे प्राप्त करता है।[174] कामी जन अज्ञान से इच्छापूर्वक जैसे कर्म करते है, विद्वान् को उसी प्रकार अनासक्त भाव से कर्म करना चाहिए। इसी से लोक सग्रह होगा। व्यक्ति योगयुक्त होकर कर्मो को मुझे अर्पित करे। जो व्यक्ति अविद्या के वश होकर अहकार से 'मै कर्ता हूँ' यह समझकर कर्म करता है, वह मदबुद्धि है। जो आत्म तत्व जानता है और गुणकर्मो का विभाग कर कर्म करता है वह कर्म मे लिप्त नही होता।[175] कर्म, अकर्म व विकर्म की मीमासा करते हुए बताया है कि जो कर्म मे अकर्म तथा अकर्म मे कर्म देख लेता है, वह इस ससार मे मुक्त होकर रहता है। जो कर्म के

---

168 गणेश पुराण, 2 137 5
169 वही, 2 139 2-3
170 वही, 2 139 8
171 वही, 2 139 4
172 वही, 2 139 5-6
173 वही, 2 139 8-9
174 वही, 2 139 17-19
175 वही, 2 139 24-26

अकुर से विहीन होकर कर्म करता है, उसका कर्म तत्व दर्शन से दग्ध हो जाता है। अत मनुष्य को पल की तृष्णा छोडकर तृप्त भाव से कर्म करना चाहिए। ऐसा व्यक्ति कर्म करता हुआ भी वास्तव मे कुछ नही करता। जो निरीह, सयमी, अपरिग्रही केवल जीवन के लिए आवश्यक कर्म करता है, उसे कोई पालक नही लगता। निर्द्वन्द्व, ईर्ष्यारहित, सिद्धि-असिद्धि मे समान और यथालाभ सतुष्ट होता है,ऐसा व्यक्ति कर्म करता हुआ भी उनमे बँधता नही है।[176] गणेश गीता मे कर्म के योग व कर्म के सन्यास दोनो को ही मोक्ष का साधन माना गया है लेकिन कर्म के योग को श्रेष्ठ माना गया है।[177] कर्म के सग्रह को जो योग समझता है, वही तत्वज्ञ है। कर्म का केवल त्याग करना सन्यास नही है। इच्छारहित होकर कर्म करने वाला योगी है और वह ब्रह्म बन जाता है।[178] जो निर्मल जितात्मा, जितेन्द्रिय व स्वय को सब प्राणियो मे देखने वाला कर्म करता है, वह उसमे लिप्त नही होता है। तत्ववेत्ता योगयुक्त होकर यह नही मानता कि वह कर्ता है।[179] हमारी ग्यारह इन्द्रियॉ कर्म करती है, उन सबको हमे ब्रह्म मे अर्पित कर देना चाहिए। जैसे सूर्य नाना पदार्थो से युक्त होकर भी उनके गुण-दोषो से निर्लिप्त होता है।[180] शारीरिक, वाचिक, बौद्धिक व मानसिक सब प्रकार की आशाओ को त्याग करके जो अपने चित्त की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं, वे योगी है।[181] योगहीन व्यक्ति फल की इच्छा से कर्म करता है। वह कर्मबीजो से बद्ध हो जाता है। वह दु ख प्राप्त करता है।[182] 'सुख' की विवेचनानुसार आत्मतृप्त व जितात्मा व्यक्ति जो सुख भोगता है, जिस आनद की अनुभूति करता है, वास्तव मे वही सुख है। क्योकि यही सुख अविनाशी है। विषय आदि मे वैसा नही है। जिन सुखो का उत्थान विषयो से होता है वे दु ख के कारण हैं। उनमे उत्पत्ति व नाश भी होता है। जो काम व क्रोध के कारण रहने पर भी उन्हे सह लेता है, उन पर विजय प्राप्त कर लेता है, वह चिरकाल तक सुख भोगता है।[183]

---

176 गणेश पुराण, 2 140, 23-35

177 वही, 2 141 2

क्रियायोगो वियोगश्चाप्युभौ मोक्षस्य साधने ।
तयोर्मध्ये क्रियायोगस्त्यागात्तस्य विशिष्यते ।।

178 वही, 2 141 5-7

179 वही, 2 141 7

180 वही, 2 141 8-9

181 वही, 2 141 12

182 वही, 2 141 39

183 वही, 2 141, 21-24

गाणपत्य धर्म को योगदर्शन ने भी पर्याप्त प्रभावित किया। योग साख्य के प्रमाणो और तत्वो को मानता है। जिसके अनुसार मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख साधन विवेक ज्ञान है। विवेक ज्ञान की प्राप्ति प्रधानत, योगाभ्यास से ही हो सकती है। योग चित्त की पॉच प्रकार की भूमियॉ मानता है-क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। एकाग्र और निरुद्ध योगाभ्यास मे सहायक होते है। योगाभ्यास के आठ अग है जो योगाग कहलाते है।[184] गणेश पुराण मे भी योगतत्वो को यथेष्ट महत्व दिया गया है। नियम [185], आसन [186], प्राणायाम [187], पान [188], अपान [189], पद्मासन, कुम्भक, रेचक, पूरक [190] आदि यौगिक तत्व यहॉ बहुतायत मे उल्लिखित है। जैसे, मनुष्य सीढियो पर चढता जाता है, उसी प्रकार योगी पान व अपान को अपने वश मे करे तथा पूरक, कुम्भ पूरक, कुभक व रेचक का अभ्यास करे। ऐसा करने से प्राणी अतीत व अनागत का ज्ञानी बन जायेगा। बारह प्राणायाम करने पर धारणा बनती है। दो धारणाओ से योग बनता है। इस प्रकार योगी

---

184 हिरयन्ना एम०, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, नई दिल्ली, 1983, पृ० 38

185 गणेश पुराण, 1 3 10-19
नियम इसके अतर्गत सदाचार के पालन को महत्व दिया गया है। शौच, सतोष, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान, ये प्रमुख तत्व हैं। द्रष्टव्य -दत्ता और चटर्जी, भारतीय दर्शन, पटना, पुनर्मुद्रित 1982, पृ० 227

186 वही, 2 141 26
आसन से तात्पर्य है शरीर को ऐसी स्थिति मे रखना, जिससे निश्चल होकर सुखपूर्वक देर तक रह सके। - द्रष्टव्य, दत्ता और चटर्जी, वही, पृ० 228

187 वही, 2 141 27,1 11 6
आसनेषु समासीनस्त्यक्तोमान्विष्यान्वहि ।
सस्तभ्य भृकुटीमास्ते प्राणायाम परायण ।।
प्राणायाम से तात्पर्य श्वास नियत्रण से है। द्रष्टव्य, वही, पृ० 193-194

188 वही, 2 141 27
प्राणायाम् तु सरोध प्राणापान समुद्भवम् ।
वदन्ति मुनयस्त च त्रिधाभूत विपश्चित ।।

189 वही, 2 70 2, 2 68 9
स्नात्वा पद्मासन चक्रे नाना प्रेतुषु सादरम् ।

190 वही, 2 141 33
पूरक कुम्भक चर्व रेचक च ततोभ्यसेत् ।
अतीतानागतज्ञानी तत स्याज्जगतीतले ।।
पूरक, कुम्भक व रेचक ये प्राणायाम के तीन अग है। पूरक का तात्पर्य है, पूरी श्वास भीतर खीचना, कुम्भक का अभिप्राय है श्वास को भीतर रोकना तथा रेचक का अभिप्राय श्वास को नियमित विधि से छोड़ने से है। दृष्टव्य, वही, पृष्ठ 228

को प्राणायाम का सदा अभ्यास करना चाहिए।[191] ऐसा करने वाला त्रिकालज्ञ हो जाता है।

ज्ञानयोग

ज्ञानयोग ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित करने का आध्यात्मिक मार्ग है। ज्ञानमार्ग के द्वारा भी आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध हो सकता है। ज्ञानयोगी आत्मरूप को परमात्मा का स्वरूप समझता है। वह परमात्मा से भिन्न नही, अभिन्न है। यही तादात्म्य भाव है।[192] ज्ञानयोगी के लिए सृष्टि ईश्वरमय है, ईश्वर ही है। ज्ञानी की दृष्टि मे समता होती है। आत्मगत समत्व, वस्तुगत समत्व और गुणातीत समत्व, योग के ये तीनो ही स्वरूप उसके भीतर विद्यमान होते है।

सारे विषयो से मुक्त होकर ही ज्ञान-विज्ञान का धनी जब यज्ञ के लिए कर्म करता है तब उसका कर्म लीन हो जाता है। मै ही अग्नि हूँ, मै ही सृष्टि हूँ और होता (हविष्ट अर्पित करने वाला) भी मै ही हूँ। अत मुझमे जला हुआ पदार्थ मुझे ही अर्पित हो जाता है।[193] ऐसा ब्रह्म मे निश्चित व्यक्ति ब्रह्म को पा जाता है। ब्रह्म को अग्नि अर्थात ज्ञान को ही यज्ञ समझते है। कुछ लोग सयम की अग्नि मे इन्द्रियो का दमन (हवन) करते हैं।[194] इन्द्रियो की अग्नि मे विषय का हवन करते है। कुछ ऐसे लोग भी है जो प्राण व इन्द्रियो के कर्मो को ज्ञान से प्रदीप्त आत्मा मे हवन करते हैं। कुछ लोग प्राण मे अपान व अपान मे प्राणो का हवन करते है। कुछ लोग दिव्य से, तप से, स्वाध्याय से[195] व ज्ञान से यज्ञ करते है। इन यज्ञो से उनका पातक नष्ट होता है। ज्ञान की अग्नि सारे कर्मो को दग्ध कर देती है।[196] जो भक्तिमान, जितेन्द्रिय व ईश्वर परायण है, वही ज्ञान को प्राप्त करता है।[197]

---

191 गणेश पुराण, 2 141 34
प्राणायामै ददिशभिरुत्तमैर्धारणा मत्य ।
योगस्तु धारणे द्वे स्याद्योगीशस्त सदाऽभ्यसेत् ।।
धारण से अभिप्राय चित्त को अभीष्ट विषयो पर केन्द्रित करने से है।द्रष्टव्य, दत्ता एव चटर्जी, पृ० 193-94

192 वही, 2 140 20

193 वही, 2 140 23-24

194 वही, 2 140 26-29

195 वही, 2 140 33-35

196 वही, 2 140 45
विविधान्यपि कर्माणि ज्ञानाग्निर्दहति क्षणात् ।
प्रसिद्धोऽग्निर्यथा सर्वभस्मता नयति क्षणात् ।।

197 वही, 2 140 47
भक्तिमानिन्द्रियजयी तत्परोज्ञानमाप्नुयात् ।
लब्ध्वा तत्परम मोक्ष स्वल्पकालेन यात्यसौ ।।

शारीरिक, वाचिक, बौद्धिक व मानसिक सब प्रकार की आशाओ को त्याग करके जो अपनी चित्त की शुद्धि के लिए कर्म करते है वे ही परमब्रह्म को प्राप्त करते है।[198] समत्व की भावना को उद्भासित करते हुए कहा गया है कि ज्ञान मार्ग पर चलने वाला योगी सुख-दुख, राग-द्वेष, भूख-प्यास मे समान दृष्टि रखता है। अपने समान ही अन्य प्राणियो को देखता है। जो मुझे सब जगह व्याप्त देखता है, वही मुझे जानता है। ऐसा व्यक्ति जीव मुक्त कहलाता है व मेरे प्रति आश्रित होता है।[199] इस प्रकार ज्ञान योग के द्वारा भी परमतत्व की प्राप्ति सभव है। तत्वज्ञानी का विषय भाव सर्वथा नष्ट हो जाता है। उसकी दृष्टि मे एक सच्चिदानद परमात्मा की ही सत्ता है।[200]जो ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न ब्राह्मण के प्रति, गऊ व हाथी के प्रति समान भाव रखते हैं, कुत्ता व कुत्ते को मारकर खाने वाले के प्रति जिनके मन मे समान भाव है, ऐसे लोग जीवनमुक्त हो जाते है। जो प्रिय व अप्रिय को पाकर हर्ष-द्वेष नही करते हैं वे ब्रह्मार्षित है, ब्रह्मज्ञ हैं, समबुद्धि है।[201] स्रोत व स्मार्ति कर्मो की इच्छा न रखते हुए जो व्यक्ति करे, ऐसा योगी जो कर्म का त्याग करने वाले हैं, उससे अच्छे है।[202] योग की प्राप्ति के लिए कर्म हेतु बनता है, लेकिन योग सिद्ध हो जाने पर श्रम और दम (दमन) हेतु बनते है।[203] इन्द्रियो के समुदाय को बुद्धि से नियमन करता हुआ धीरे-धीरे विरक्त बने। ये इन्द्रियॉ जहॉ-जहाँ जाती हैं, उधर से इन्हे रोके। मन चचल है, धैर्य से इसको अपने वश मे करे। ऐसा कर पाने वाला योगी शाति प्राप्त करता है। वह जगत मे स्वय को व स्वय मे जगत को देखता है।[204] योग से जो मेरे निकट आता है, मै आदर के साथ उसके निकट पहुँचता हूँ। उसे ससार के बधनो से मुक्त कर देता हूँ, और फिर न कभी वह मुझे छोड़ता है, न मैं उसे छोड़ता हूँ।[205] इस प्रकार गणेश गीता मे भक्ति,

---

198 गणेश पुराण, 2 141 10

कायिक वाचिक वौद्धमैन्द्रिय मानस तथा ।
त्यत्क्त्वाशा कर्म कुर्वन्ति योगज्ञाश्चिन्तशुद्धये ।।

199 वही, 2 142 15

200 वही, 2 142 23

201 वही, 2 141 17-19

202 वही, 2 142 1

श्रौतस्यातानि कर्माणि फल नेच्छन्समाचरेत् ।
शस्त स योगी राजेन्द्र अक्रियाद्योगमाश्रितात् ।।

203 वही, 2 142 2

योग प्राप्त्यै महाबाहो हेतु वभैव मे मतम् ।
सिद्धयोगस्य ससिध्ये हेतु शमदयौ गतौ ।।

204 वही, 2 142 12-14

205 वही, 2 142 15

ज्ञान व कर्म योग की मीमासा द्वारा परमब्रह्म की प्राप्ति बतायी गयी है और सभी मार्गो को फलदायी बताया गया है।

आत्मा के बारे मे कहा गया है कि ज्ञान व विज्ञान को समाप्त करने वाला पाप अपने मन से ही पैदा होता है। इन्द्रियॉ सबसे परे हैं अर्थात् औरो से सूक्ष्म है। उनसे भी परे मन है। मन से भी परे (सूक्ष्म व प्रबल) बुद्धि है। जो बुद्धि से परे है, वह आत्मा है।[206] इस सत् को आत्मसात करके व स्वय से अपने को अपने वश मे रखकर कामरूपी शत्रु को मारने वाला व्यक्ति परमपद को प्राप्त करता है।[207]

काम और क्रोध को महान पाप मानते हुये उसे रजस व तमस से उत्पन्न कहा गया है।[208] ये विश्व को अपने वश मे कर लेते है। ये इतने बलशाली हैं कि मनुष्य के शत्रु है। जैसे माया जगत को, वर्षा का मेघ आकाश को, सूर्य जगत को ढॅक लेता है, वैसे ही ये दोनो ज्ञानी व्यक्ति के ज्ञान को ढॅक लेते है। इच्छा का वेग बलवान होता है, उसकी कभी पूर्ति नही होती।[209] यह बुद्धि, मन व इन्द्रियो पर अधिकार करके बैठ जाता है। व्यक्ति की प्रज्ञा इनसे आच्छादित हो जाती है। ये ज्ञानी को मोहित कर लेते हैं। इसलिए व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह मन के साथ इन्हे भी अपने नियत्रण मे रखकर विजय प्राप्त करे।[210]

'गणेश गीता' के दर्शन मे साख्य दार्शनिक विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव दिखता है। साख्य दर्शन प्रकृति और पुरुष-इन दो तत्वो के सहारे जगत का उपपादन करता है। एक ओर प्रकृति है, जो भौतिक ससार (विषय, इद्रिय, शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार इन सब का समूह) का मूल कारण है। प्रकृति ससार का उपादान कारण भी है और निमित्त कारण भी। यह सक्रिय एव परिवर्तनशील होती है, साथ ही अचेतन या जड भी।[211] पुरुष शुद्ध

---

206 गणेश पुराण, 2 139 41

तस्मान्नियम्य तादान्यौ समनासि नरो जयेत् ।
ज्ञान विज्ञानयो शान्तिकर पाप मनोभवम् ।।

207 वही, 2 139 42

अतस्तानि पराण्याहुस्तेभ्यश्च परम मन ।
ततोऽपि हि परा बुद्धिरात्मा बुद्धे परो मत ।।

208 वही, 2 139 37

कामक्रोधौ महापापौ गुणद्वय समुद्भवौ ।
नयन्तौ वश्यता लोकन्विद्धयेतौ द्वेषिणौ वरौ ।।

209 वही, 2 139 38

210 वही, 2 139 40

211 उपाध्याय, बलदेव, भारतीय दर्शन, पृ० 145

चैतन्य रूप आत्मा है, जो नित्य और विकारी है। पुरुष के सामीप्य मात्र से प्रकृति में क्रिया प्रवर्तन होता है। यद्यपि पुरुष निर्विकार रहता है। प्रकृति और पुरुष के सयोग से ससार की उत्पत्ति होती है। यह सयोग विलक्षण प्रकार का होता है। सयोग द्वारा ही गुणो (सत्व,रज, तम) की सख्यावस्था मे विकार उत्पन्न होता है। जिससे क्रमश महत् अहकार, पचज्ञानेन्द्रियॉ, पच कर्मेन्द्रियॉ, पच तन्मात्रा, पचमहाभूत उत्पन्न होते है। ईश्वर व मोक्ष के सदर्भ मे भी साख्यकारो ने विचार किया है।[212] गणेशगीता मे भी पुरुष, प्रकृति व उनके सयोग आदि की व्याख्या साख्य दार्शनिको की विचारधारा से पूर्ण प्रभावित प्रतीत होती है। इसमे स्वय गणेश अपने तात्विक स्वरूप व प्रकृति को विश्लेषित करते है [213] कि मेरी प्रकृति के ज्ञान से मेरे प्रति विज्ञान की उत्पत्ति होगी। पृथ्वी, अग्नि, आकाश, अहकार, चित्त, वायु, सूर्य, चद्रमा, प्रजापति ये ग्यारह प्रकार की प्रकृति है।[214] तीनो लोक इनसे व्याप्त है। यही जीव बनती है। इनसे ससार का चर-अचर जन्म लेता है। इनके सग से सम्भूति (जन्म) होता है और इसी से रक्षा होने पर मेरी प्राप्ति होती है।[215] जो ज्ञानी मुझे प्राप्त करना चाहते है, वे जगत मे मुझसे भिन्न कुछ नही देखते। पृथ्वी मे गध रूप मे, अग्नि मे तेजस रूप मे, जल मे रस रूप मे वे मुझे ही देखते है।[216] तीनो विकारो वाली पृथ्वी सारे ससार को मोहित करती है। जो मेरे तात्विक रूप को जानते है वे इस मोह मे अनुरक्त नही होते।[217] क्योकि उन्हे पता है कि जिस प्रकार सभी नदियॉ समुद्र मे जाकर मिलती है, उसी प्रकार सबका गम्य मै ही हूॅ।[218]

जीव की दो गतियॉ है– 1 शुक्ल,
2 कृष्ण

पहली से वह परब्रह्म को प्राप्त करता है दूसरी से जन्म-मरण सम्बधी ससार को।[219]

---

212 त्रिवेदी, रामगोविंद, दर्शन परिचय, पृ० 211

213 गणेश पुराण, 2 143, 1-2

214 वही, 2 143 3-4

215 वही, 2 143 5

216 वही, 2 143, 8-9

217 वही, 2 143 11-12

218 वही, 2 143 18

219 वही, 2 143 23
द्विविधा गतिरुद्दिष्टा शुक्ला कृष्णा नृणा नृप ।
एकया परम ब्रह्म परमा याति ससृतिम् ।।

अग्नि, ज्योति, ब्रह्मा का दिन, उत्तरायण यह शुक्ल गति हैं। चद्रमा, धूम्र, रात्रि व दक्षिणायन ये कृष्ण गति है।[220] दृश्य-अदृश्य जो कुछ भी है, वह सब ब्रह्म ही है।[221]

पॉच भूतो से बना शरीर नाशवान है, शेष अविनाशी। इन दोनो से भी ऊपर जो है वह शुद्ध ब्रह्म है।[222] ध्यानादि उपचारो से, पचामृत, सुगध, स्नान, वस्त्र, अलकार, धूप-दीप, नैवेद्य, फल, ताम्बूल, दक्षिणा आदि से जो मेरी अर्चना करते हैं, उनके इष्ट को मै पूरा करता हूॅ।[223] लेकिन इससे भी ज्यादा अच्छी पूजा स्थिर मन से की गयी मानसिक पूजा को माना गया है। वह बिना इच्छा के की जाय तो और उच्चकोटि की मानी जाती है।[224] पूजा से पूर्व भूत शुद्धि करके, प्राणयाम मे मन को एकाग्र करके, न्यास करके मूलमत्र से मेरा जप करे। जप को देवता को अर्पण कर दे।[225] इसप्रकार जो मेरी भक्ति करेगा वह अविनाशी मोक्ष को अवश्य प्राप्त कर लेगा।[226] इसमे भक्तियोग द्वारा ईश्वर प्राप्ति के मार्ग को सुलभ बताया गया है।

गणेश गीता मे क्षेत्र, उसके ज्ञाता क्षेत्रज्ञ, ज्ञान और ज्ञेय के सदर्भ मे जो विवेचना मिलती है, वह इस प्रकार है

पॉच महाभूत, उनकी पॉच तन्मात्राये, पॉच कर्मेन्द्रियॉ, पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ, [227] अहकार, मन, बुद्धि, इच्छा, द्वेष, सुख, दुख व चेतना इनका समूह क्षेत्र कहलाता है।[228] उसको जानने वाला मै हूॅ। मैं सर्वातरपायी विभु हूॅ। ये समूह तथा मै ज्ञान का विषय बनते हैं।[229] अर्थात् परब्रह्म ही इस ज्ञान का विषय है।

---

220 गणेश पुराण, 2 144 2

221 वही, 2 144 3

222 वही, 2 144 6

223 वही, 2 144, 7-8

224 वही, 2 144 9-11

225 वही, 2 144 14-16

226 वही, 2 143 18

227 'गणेश गीता' पर साख्य दर्शन का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। साख्य दर्शन मे विश्व के विकासवाद का सिद्धात इन्ही अवयवो से बना है।
द्रष्टव्य दत्ता और चटर्जी, भारतीय दर्शन, पृ० 1-3

228 वही, 2 146 20-22
पचभूतानि तन्मात्रा पचकर्मेन्द्रियाणि च ।
अहकारो मनो बुद्धि, पच ज्ञानेन्द्रियाणि च ।।
इच्छाव्यक्त धृतिद्वेषौ सुखदु खे तथैव च ।
चेतना सहितश्चाय समूह क्षेत्र मुच्यते ।।

229 वही, 2 146 23

प्रकृति से परे जो पुरुष है वह प्रकृतिजन्य गुणो का भोग करता है। सत्य, रज एव तम इन तीन गुणो से देह मे पुरुष को बद्ध कर देता है।[230] इन तीनो गुणो की अलग-अलग विशेषता होती है, जैसे जब मन मे प्रकाश हो, शाति हो तो अर्थ है कि निषेध सत्व की वृद्धि हुयी है। लोभ अशाति, इच्छा व कर्मो का आरभ आदि रज के गुण है। मोह, प्रवृत्ति, अज्ञान, प्रमाद ये तमोगुण के तत्व है।[231]

सत्व के अधिक होने से सुख व ज्ञान, रज के अधिक होने से कर्म मे आसक्ति और तम के अधिक होने से निद्रा, आलस्य व दुख प्राप्त होता है।[232] ये तीनो गुण क्रमश मुक्ति, ससार व दुर्गति के कारक हैं। अत सदैव सत्व गुण से युक्त होने का प्रयास करना चाहिए,[233] और सर्वभाव से मेरी भक्ति करनी चाहिए।

मानव प्रकृति तीन प्रकार की होती है 1 दैवी, 2 आसुरी, 3 राक्षसी। दैवी प्रकृति से मुक्ति मिलती है। चुगली न करना, क्रोध का अभाव, चपलता का अभाव, धैर्य व नम्रता, अभय, अहिंसा, क्षमा, शुचिता, अहकार का अभाव आदि सकेत दैवी प्रकृति के है।[234]

अत्यधिक वाद-विवाद, अभिमान, अज्ञान, कोप ये सब आसुरी प्रवृत्ति के सकेत है। ये बधन के कारक है।[235] निष्ठुरता, मोह, द्वेष, हिंसा, दूसरो को हानि पहुॅचाने वाले कर्म, सत्पुरुषो के प्रति अविश्वास, वेद तथा भक्तो की निदा, पाखण्ड के वाक्यो मे विश्वास, मलिन प्रकृति के व्यक्ति के साथ उठना-बैठना, दभपूर्वक कर्म करना, दूसरो की वस्तुओ के प्रति लालच, अनेक प्रकार की कामनाएॅ करना, सदा असत्य बोलना, दूसरो के उत्कर्ष सहन न कर पाना आदि राक्षसी प्रकृति के सकेत है।[236] इस प्रकृति के लोग रौरव

---

230 गणेश पुराण, 2 146 30-31
एतदेव पर ब्रह्म ज्ञेयमात्मा परोव्यय ।
गुणान्प्रकृतिजान्मुक्ते पुरुष प्रकृते पर ।।
गुणैस्त्रिभिरिय देहे बध्नाति पुरुष दृढम् ।

231 वही, 2 146 32

232 वही, 2 146 33

233 वही, 2 147 34
एषुत्रिषु प्रवृद्धेषु मुक्तिससृतिदुर्गति ।
प्रयान्ति मानवा राजस्तस्मात्सत्वयुतो भव ।।

234 वही, 2 147 6

235 वही, 2 147 7

236 वही, 2 147 5-10

नरकगामी होते हैं। भाग्यवश नरक से निकल भी आते हैं तो पृथ्वी पर आकर कुबडे, लगड़े, अधे, बहरे होकर जीते हैं। यहाँ अनेक प्रकार के दु ख भोगते हैं। [237] ऐसे मनुष्य मोह मे फॅसकर स्वय को ही कर्त्ता-धर्ता व भोक्ता समझते हैं। यह प्रवृत्ति भी मनुष्य का अध पतन करती है।[238] इसलिये ऐसी बुद्धि का त्याग करके दैवी प्रवृत्ति का आचरण करना चाहिए।[239]

भक्ति

गणेश गीता मे भक्ति भी तीन प्रकार की बतायी गयी है-[240] सात्विक, राजसी और तामसी। जो भक्तिपूर्वक देवताओ का भजन करते है वे सात्विकी भक्ति के अनुयायी है। जो जन्म-मरण देने वाली है, वह भक्ति राजसी है। जो वेद के विरुद्ध क्रूर भाव से, अहकार व दभ लेकर प्रेत-भूत आदि की उपासना करते है, अपने शरीर को तो सुखाते ही है, भीतर बैठे हुये मुझे भी कष्ट देते है। ऐसी भक्ति तामसी है। इससे नरक मिलता है।[241] काम, लोभ, क्रोध व दभ ये चारो नरक के द्वार है।[242]

तप

तप भी तीन प्रकार के बताये गये हैं – कायिक, वाचिक व मानसिक। विनय, शुचिता, ब्रह्मचर्य, अहिसा, गुरु, ब्राह्मण, विद्वानो का आदर, देवताओ की पूजा व अपने धर्म का पालन ये कायिक तप है। [243] प्रिय और सत्य वचन बोलना, वेद-शास्त्रो का अध्ययन करना आदि वाचिक तप हैं।[244] हृदय मे प्रसन्नता बनाये रखना, शात रहना, इन्द्रियो का निग्रह, सदा निर्मल भाव बनाये रखना मानसिक तप हैं।[245]

---

237 गणेश पुराण, 2 147 12

238 वही, 2 147 15-17

239 वही, 2 147 18

240 वही, 2 147 19-20

241 वही, 2 147 20-22

242 वही, 2 147 23

243 वही, 2 148 1-2

तपोऽपि त्रिविध राजन्कायिकादिप्रभेदत ।
ऋजुतार्जवशौचाश्च ब्रह्मचर्यमहिसनम् ।।
गुरुविज्ञ द्विजातीना पूजन चातुरद्विषाम् ।
स्वधर्मपालन नित्य कायिक तपईदृशम् ।।

244 वही, 2 148 3

245 वही, 2 148 4

अन्त प्रसाद शान्तत्व मौनमिन्द्रियनिग्रह ।
निर्मलाशयता नित्य मानस तप ईदृशम् ।।

बिना कामना के श्रद्धा से जो तप किया जाता है, वह सात्विक है।[246] कार्य या पूजा के लिये दभ के साथ राजस तप किया जाता है। ऐसा तप अस्थिर व जन्म-मरण देने वाला (बधनयुक्त) होता है।[247] दूसरो को पीड़ा देने के लिये जो तप होता है वह तामस कहलाता है।[248]

दान

शास्त्रो के वचन को प्रमाण मानकर देशकालानुसार सत्पात्र को श्रद्धा से दिया गया दान सात्विक है।[249] उपकार व फल की आकाक्षा से दिया गया दान अथवा क्लेष से दिया गया दान राजस कहलाता है।[250] देश काल का ध्यान न रखकर अपात्र को अवज्ञा के साथ दिया गया दान, जिसमे सत्कार न रहे, वह तामस कहलाता है।[251]

ज्ञान

ज्ञान भी तीन प्रकार का माना गया है। नाना प्रकार के प्राणियो मे एक परमब्रह्म को ही देखना, नाशवान पदार्थो मे भी उसी एक तत्व के स्वरूप का ध्यान रखना, सात्विक ज्ञान है।[252] विविध प्राणियो मे पृथक भाव से उसी एक परमतत्व गणेश की अनुभूति

---

246 गणेश पुराण, 2 148 5
अकामत श्रद्धया च यत्तप सात्विक तु तत् ।
सत्कारपूजार्थ सदम्भ राजस तप ।।

247 वही, 2 148 6 तदस्थिर जन्ममृती प्रयच्छति न सशय ।

248 वही, 2 148 6 परात्मपीडक यच्च तपस्तामसमुच्यते ।।

249 वही, 2 148 7
विधि वाक्य प्रमाणार्थ सत्पात्रे देशकालत ।
श्रद्धया दीयमान यद्दान्न तत्सात्विक मतम् ।।

250 वही, 2 148 8
उपकार फल वापि काक्षद्भिर्दीयते नरै ।
क्लेशतोऽदीयमान वा भक्त्या राजसमुच्यते ।।

251 वही, 2 148 9
अकालदेशतोपात्रेवज्ञया दीयते तु यद् ।
असत्काराच्च यद्दत तद्दन्न तामस स्मृतम् ।।

252 वही, 2 148 10-11
ज्ञान च त्रिविध राजन्शृणुष्व स्थिरचेतसा ।
त्रिधा कर्म च कर्तार ब्रवीमि ते प्रसगत ।।
नानाविधेषु भूतेषु मामेक दीक्ष्यते तु य ।
नाशवत्सु च नित्य मा तज्ज्ञान सात्विक नृप ।।

करना। राजस ज्ञान है।[253] हेतुहीन, असत्य, देह को आत्मा मानकर जो ज्ञान दिया जाता है, वह तामस है।[254]

कर्म

कर्म भी तीन प्रकार के निर्धारित किये गये है। कामना, द्वेष व दभ से रहित जो नित्य कर्म हैं, जिससे फल की इच्छा न रहे, वह सात्विक कर्म है।[255] जो बहुत क्लेश से किया जाय, जिसमे फल की इच्छा हो, वह राजस कर्म है।[256] अपनी शक्ति को न देखकर धन का क्षय करने वाला अज्ञानता से किया गया कर्म तमस कर्म है।[257]

इसी क्रम मे कर्ता भी तीन प्रकार के है। धैर्य तथा उत्साह से सम्पन्न, सिद्धि तथा असिद्धि मे समान भाव रखने वाला, विकार रहित, अहकारमुक्त जो कर्ता है, वह सात्विक है।[258] हर्ष व शोक के साथ हिंसा और फल की कामना से मलिन रूप मे लोभी होकर कर्म करने वाला राजस है।[259] प्रमाद व अज्ञान के सहित दूसरे को कष्ट देने के लिए, आलस्य भरा तार्किक कर्ता तामसिक होता है।[260]

---

253 गणेश पुराण, 2 146 12
तेषु वेत्ति पृथग्भूत विविध भावमाश्रित ।
मामव्यय च तज्ज्ञान राजस परिकीर्तितम् ।।

254 वही, 2 148 13
हेतुहीनसत्य च देहात्मविषय च चत् ।
असद्ल्पार्थ विषय तामस ज्ञानमुच्यते ।।

255 वही, 2 148 14
भेदतत्रिविध कर्म विद्धिराजन्मयेरितम् ।
कामनाद्वेषदम्भैर्यद्रहित नित्यकर्म यत् ।।

256 वही, 2 148 15
कृत विना फलेच्छा यत्कर्म सात्विकमुच्यते ।
यद्बहुक्लेशत कर्म कृत यच्च फलेच्छया ।।

257 वही, 2 148 16
क्रियमाण नृभिर्दम्भात्कर्म राज समुच्यते ।
अनपेक्ष्य स्वशक्ति यदर्थ क्षयकर च यत् ।।

258 वही, 2 148 17-18

259 वही, 2 148 19

260 वही, 2 148 21-22
सुख च त्रिविध राजन्दु ख च क्रमत शृणु ।
सात्विक राजस चैव तामस च मयोच्यते ।।

सुख-दुख भी तीन प्रकार के होते हैं। जो सुख पहले विष के समान अप्रिय लगे, अत मे दुख का परिहार करे, बुद्धि जिससे निर्मल हो, वह सात्विक सुख है।[261] विषयो के भोग से उत्पन्न हुआ सुख, जो आरभ मे अमृत जैसा व अत मे हलाहल जैसा लगे, वह राजस है।[262] जो आलस्य व इन्द्रियो के प्रमाद से उत्पन्न हुआ हो, मोह जिसमे विद्यमान हो, वह तामसी सुख है।[263]

ससार मे कोई वस्तु ऐसी नही है जो इन गुणो से रहित हो। ब्रह्मा भी इन तीनो गुणो से मुक्त नही है। त्रिलोक मे सभी कुछ तीन भागो मे बॅटा है।[264]

इस विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि गणेश गीता मे ज्ञान, भक्ति, कर्म तीनो का योग समाहित है। जगत, आत्मा, परमात्मा, जीव इन सभी का तात्विक व आध्यात्मिक विश्लेषण किया गया है। यह चितन और विश्लेषण कहीं साख्य दर्शन से प्रभावित लगता है तो कही योगदर्शन एव अद्वैत दर्शन से। भगवद्गीता का भी इस पर प्रचुर प्रभाव परिलक्षित होता है।

भगवद्गीता और गणेशगीता : तुलनात्मक विवेचना

भगवद्गीता भारतीय दर्शन के इतिहास मे लोकप्रियता की दृष्टि से सर्वाधिक महत्व की है। यह मूलत महाभारत के भीष्म पर्व का अश है। इसमे महाभारत युद्ध के समय कर्तव्याविमुख एव भयभीत हुये अर्जुन को कृष्ण द्वारा दिये गये उपदेशो का सचयन है। इसमे उदार समन्वय की भावना है, जो हिन्दू विचारधारा की सर्वप्रमुख विशेषता रही है। देखा जाय तो यह किसी सम्प्रदाय विशेष का ग्रन्थ नही है अपितु सम्पूर्ण मानव समाज की सास्कृतिक-वैचारिक निधि है।[265] वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी गीता को अपने सम्प्रदाय

---

261 गणेश पुराण, 2 148 23

262 वही, 2 148 24

हालाहालपिवान्ते यद्राजस सुखमीदितम् ।
तन्द्राप्रमादसभूत मालस्य प्रथव च यत् ।।

263 वही, 2 148 25

सर्वदा मोहक स्वस्थ सुख तामसमीदृशम् ।
न तदस्ति यदेतैर्थमुक्त स्यात्रिविधैगुणै ।।

264 वही, 2 148 26

राजन्ब्रह्मपि त्रिविधमोतत्सदिति भेदत ।
त्रिलोकेषु त्रिधाभूतमखिल भूप वर्तते ।।

265 राधाकृष्णन, इण्डियन फिलॉसफी, पृ० 520

से जोडते है।[266] किन्तु सही अर्थो मे इसमे औपनिषदिक दार्शनिक परम्परा का निर्वहन हुआ है। डॉ० राधाकृणन का भी मत है कि गीता ने उपनिषदो के ज्ञान को सर्वसुलभ बनाया।[267] इसके प्रत्येक अध्याय के अत मे 'गीता नाम का उपनिषद्' (भगवद्गीतासु उपनिषत्सु) कहा गया है। वैष्णवीय तत्रसार मे उपनिषद् तथा गीता के सम्बन्धो को सुन्दर ढग से व्यक्त किया गया है।[268] इससे सिद्ध होता है कि गीता ने अपने आदर्श उपनिषदो से ही ग्रहण किया था। इसका प्रमुख लक्ष्य मानव जीवन की विविध समस्याओ को सुलझाना, मनुष्य को कर्तव्य मार्ग पर प्रवृत्त करना एव 'सदाचार' को प्रोत्साहन देना है।गणेश पुराण मे भी 'गणेशगीता' नाम से जो सकलन किया गया है, उस पर 'भगवद्गीता' का यथेष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रश्न उठता है कि गणेश पुराण को भगवद्गीता के दर्शन से जोड़ने की आवश्यकता क्यो पडी। इस सदर्भ मे कहा जा सकता है कि गणेश पुराण के रचनाकाल (1100-1400 ई0) मे भी गीता समाज मे प्रासगिक रही होगी। उस लोकप्रियता से गणेश को सम्बद्ध करने के उद्देश्य से गाणपत्य अनुयायियो ने इस पुराण के अन्तर्गत गणेशगीता की रचना की होगी। भगवद्गीता मे ज्ञान योग, कर्म योग व भक्ति योग का समन्वय होने के बावजूद भक्तियोग पर विशेष बल दिखता है।[269] गणेश पुराण मे कौन से तत्व भगवद्गीता से ग्रहण किये गये हैं तथा किस पक्ष को अधिक महत्व दिया गया है, इसे जानने के लिये दोनो गीताओ (भगवद्गीता और गणेशगीता) का तुलनात्मक आकलन अनिवार्य है।

दोनो गीताओ का सम्यक अध्ययन करने पर गणेशगीता पर भगवद्गीता का पर्याप्त प्रभाव दिखायी देता है। जिस प्रकार 'भगवद्गीता' महाभारत के भीष्म पर्व का एक भाग है, उसी प्रकार गणेश पुराण के क्रीडा खण्ड के अध्याय 138 से 148 को 'गणेश गीता' अभिधान दिया गया है। गीता के 18 अध्यायो मे 700 श्लोक हैं तो 'गणेशगीता' के 11 अध्यायो मे 414 श्लोक हैं। भगवद्गीता का उपदेश युद्ध के आरभ मे कुरुक्षेत्र की पावन भूमि पर अर्जुन के प्रति दिया गया था। गणेश गीता का उपदेश युद्ध के बाद राजूर की पवित्र स्थली मे राजा वरेण्य के प्रति दिया गया। यह स्थल जालना स्टेशन से 14 मील

---

266 गणेश पुराण, पृ० 338

267 वही, पृ० 521

268 वैष्णवीय तन्त्रसार, 2 15
सर्वोपनिषदोगावो दोग्धा गोपालनन्दन ।
पार्थो वत्स सुधीर्भोक्ता दुग्ध गीतामृत महत् ।।

269 शर्मा, चन्द्रधर, भारतीय दर्शन, पृ० 45

पर स्थित है।[270] गणेशगीता तथा भगवद्गीता दोनो मे कर्मयोग, साख्ययोग और भक्तियोगपरक जो वर्णन आये हैं, वे भी समान भावमय हैं। गणेशगीता मे योगसाधना, प्राणायाम, तात्रिक पूजा, मानसपूजा, सगुणोपासना आदि को विस्तार से समझाया गया है। विभूतियोग, विश्वदर्शन आदि का सक्षेप मे वर्णन किया गया है। इनमे शब्दगत अतर अवश्य है, परतु विषय दोनो के एक ही हैं।

जिस प्रकार अर्जुन को कृष्ण ने योग मार्ग का उपदेश दिया, उसी प्रकार राजा वरेण्य को गणेश ने यह योग बताया। इन दोनो गीताओ मे दोनो श्रोताओ की मन स्थिति और परिवेश भिन्न है। भगवद्गीता के प्रथम अध्याय से स्पष्ट है कि मोह के कारण अर्जुन की मूढावस्था हो गयी थी। वह अपने कर्तव्य का ठीक-ठीक निर्णय नही कर पा रहे थे। वे निष्क्रियता, विमूढ़ता, भ्रातता एव विरतता से ग्रस्त थे। परतु राजा वरेण्य की ऐसी विमोहग्रस्त स्थिति नही थी। अपितु वह साधनचतुष्टय सम्पन्न मुमुक्ष स्थिति मे था। वह अपने धर्म और कर्तव्य को जानता था। उसने धर्मयुक्त राज्य किया था। गणेश द्वारा सिन्दूर का सहार कर दिये जाने के पश्चात् वरेण्य उनसे प्रार्थना करते है- 'हे महाबाहु विध्नेश्वर! आप सब शास्त्रो तथा विद्याओ के ज्ञाता हैं। मुझे विमुक्ति के लिये योग का उपदेश दे।' [271] प्रार्थना से प्रसन्न हो गणेश ने उन्हे योगामृत युक्त गीता सुनायी। [272]

गणेश ने 'साख्यसारार्थ' नामक प्रथम अध्याय मे योग का उपदेश देकर उन्हे शान्ति का मार्ग बताया है। यहाँ स्थितप्रज्ञ पुरुष का जो वर्णन किया गया है, वह भगवद्गीता के दूसरे अध्याय मे भी आया है। तद्नुसार ही गणेश कहते है- सच्चे योगयुक्त पुरुष के लक्षण तो और ही होते हैं। वे तृष्णा से मुक्त, दयामय, जगत का उद्धार करने वाले, हृदयस्थित परब्रह्म को सदा ही सर्वत्र व्याप्त देखने वाले और सर्वदा सतुष्ट रहने वाले होते हैं। उनकी दृष्टि मे सोना, मिट्टी, पत्थर सब समान हैं। [273] शिव, विष्णु,

---

270 थापन, अनिता रैना, वही, पृ० 10

271 गणेश पुराण, 2 138 5
विघ्नेश्वर महाबाहो सर्वविद्याविशारद ।
सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञ योग मे वक्तुमर्हसि ।।

272 वही, 2 138 6
सम्यग्व्यवसिता राजन् मतिस्तेऽनुग्रहान्मम् ।
शृणु गीता प्रवक्ष्यामि योगामृतमयी नृप ।।

273 वही, 2 141 5-6
मानेऽपमाने दुखे च सुखे सुहृदि साधुषु ।
मित्रेऽमित्रेऽप्युदासीने द्वेष्ये लोष्ठ च काचने ।।
समो जितात्मा विज्ञानी ज्ञानीन्द्रिय जयावह ।
अभ्यसेत्सतत योग तदा युक्तत्मो हि स ।।

शक्ति, सूर्य, तथा मुझमे भी जो अभेद बुद्धि है, वही मेरे मत से उत्तम योग है। मैं ही सब कुछ हूँ और मुझमे ही सब है। मैं ही सत् चित्, आनदरूप ब्रह्म हूँ। [274] भगवद्गीता मे भी स्थितप्रज्ञ के विषय मे ऐसा ही बताया गया। [275]

गणेश गीता का कथन है कि शस्त्र आत्मा का छेदन नही कर सकते, अग्नि उसे जला नही सकती, जल उसे भिगो नही सकता, वायु उसे सुखा नहीं सकती और नरेश्वर, इस शरीर का वध होने पर भी वह अबध्य है। [276] भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के श्लोक 18,20,23,24 मे भी यही कहा गया है।

पुष्पित लता के समान आपातरम्य ' अक्षय सुकृत भवति' आदि वेदवाक्यो से मोहित मूढ़ लोग यज्ञादि की ही प्रशसा करते हैं। उससे अलग दूसरा कोई श्रेय-साधन मानने को तैयार नही होते, अत स्वर्ग-ऐश्वर्य की भोगबुद्धि मे आसक्त वे स्वय ससार के बधन मे पड़ते है। [277] वर्णाश्रम- धर्मयुक्त कर्मो का अनुष्ठान करके मुझे अर्पण करने पर पाप-पुण्य के बीजाकुर नष्ट हो जाते है। [278] ऐसा ही वर्णन गीता के दूसरे अध्याय मे पाप भी प्राप्त होता है। [279] इस प्रकार आत्मानात्मविवेक-बुद्धि से युक्त पुरुष पाप-पुण्य से मुक्त हो जाता है। यही योग विधियुक्त कर्मो मे सच्ची कुशलता है। [280] ऐसा योगी 'स्थितप्रज्ञ'

---

274 गणेश पुराण, 2 138 21
शिवे, विष्णौ च शक्तौ च सूर्ये मयि नराधिप ।
याभेदबुद्धिर्योग स सम्यग्योगो मतो मम ।।

275 भगवद्गीता, 5 17
प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्यार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्ट स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।।

276 वही, 2 137 31-32
अच्छेद्य शस्त्र सघातैरदाह्यनलेन च ।
अक्लेद्य च यवनैरशोष्य मारुतेन च ।।
अवध्य वध्यमानेऽपि शरीरेऽस्मिन् नराधिप ।

277 वही, 2 137 33
यामिमा पुष्पिता वाच प्रशसत्ति श्रुतीरिताम् ।
त्रयीवादरता मूढास्ततोऽन्यन्मन्वतेऽपि न ।।

278 वही, 2 137 36
यस्य यद्विहित कर्म तत्कर्त्तव्य मदर्पणम् ।
ततोऽस्य कर्मबीजानामुच्छिन्ना स्युमहाकुरा ।।

279 भगवद्गीता, 2 42-46

280 वही, 2 137 49
धर्माधर्मो जहातीह तयाऽत्यत्त उभावपि ।
अतो योगाय युज्जीत योगो वैधेषु कौशलम् ।।

कहलाता है। गणेश गीता तथा भगवद्गीता दोनो मे ही इस स्थिति का वर्णन प्राप्त होता है।[281]

यदि दैव की अनुकूलता से वृद्धावस्था मे भी ब्रह्म-बुद्धि प्राप्त हो जाये तब भी मनुष्य जीवन्मुक्ति को प्राप्त होगा।[282] यही बात भगवद्गीता मे भी कही गयी है। ऐसी ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त पुरुष कभी मोहित नही होता और अतकाल मे निष्ठा को प्राप्त होकर वह ब्रह्म मे विलीन हो जाता है।[283]

'कर्मयोग' नामक दूसरे अध्याय मे गजानन ने वरेण्य को कर्मयोग का उपदेश दिया है। 'साख्य सारार्थ' नामक अध्याय मे ज्ञान का प्रकाशमय मार्ग बताया गया है। किन्तु मार्ग देख लेना ही पर्याप्त नही, उस पर चलना भी आवश्यक है। गणेश गीता के पहले अध्याय मे श्लोक 34 तथा 38 मे कुछ विरोधाभास- सा दिखाई देने पर वरेण्य इस सबध मे ठीक अर्जुन जैसा ही प्रश्न गजानन से पूछते हैं कि आपने ज्ञाननिष्ठ और कर्मनिष्ठ दोनो का वर्णन किया है। अब यह निश्चय करके बताइये कि इन दोनो मे मेरे लिये कल्याणकारी कौन-सा है।[284] भगवद्गीता के तीसरे अध्याय के दूसरे श्लोक (गीता 3 2) मे अर्जुन ने भी ऐसा ही अनुरोध किया है। गजानन ने स्थिर स्वभाव वालो के लिये 'बुद्धियोग' और अस्थिर स्वभाववालो के लिये 'कर्मयोग' बताया है।[285]

विधियुक्त कर्म को आलस्य या विषाद से यदि कोई त्याग देता है तो वह निष्क्रियता को नही प्राप्त होगा। क्षण भर भी कोई बिना कर्म के नही रह सकता। माया के स्वभावानुसार तीनो गुण उससे कर्म करवाते हैं। कर्मेन्द्रियो को रोककर मन से विषयो का चितन भी निंदनीय है। केवल परमेश्वर की प्रीति के लिये कर्म करने वाला ही श्रेष्ठ पुरुष और सच्चा कर्मयोगी है।[286] जो कर्म मेरे लिये किये जाते हैं, वे कही और कभी कर्ता को बॉधते नही

---

281 गणेश पुराण, 281, 2 137 53-64

282 गणेश गीता, 2 137 69
एव ब्रह्मधिप भूप यो विजानाति दैवत ।
तुर्यामवस्था प्राप्यापि जीवन्मुक्ति प्रयास्यति ।।

283 भगवद्गीता,2,72
एषा ब्राह्मी स्थिति पार्थ नैना प्राप्य विमुध्यति।
स्थित्वास्यामतकालेऽपि ब्रह्म निर्वाणमृच्छति ।।

284 गणेश गीता, 2 138 1 -भगवद्गीता, 3 2

285 गणेश गीता, 2 138 2 अस्मिश्चराचरे स्थित्यौ पुरोक्ते य मयाप्रिय ।
साख्याना बुद्धियोगेन वैयोगेन कर्मणाम् ।
-भगवद्गीता, 3 4

286 गणेश पुराण, 2 139 8

है। वासना या फलाशक्ति से किया गया कर्म देहधारी को बलपूर्वक बॉध लेता है।[287] मैंने ही सारे वर्ण और उनके धर्म एक साथ उत्पन्न किये हैं। वे ही धर्म-कर्म यज्ञ हैं। इसे निष्काम बुद्धि से करने पर कल्पवृक्ष-सा फल मिलता है।[288] भगवद्गीता के तीसरे अध्याय मे इसी के समानार्थक विचार व्यक्त हैं। गणेश गीता के उक्त श्लोक से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वर्णाश्रम धर्म के अनुसार विधियुक्त कर्म को निष्काम भाव से केवल ईश्वरार्पण बुद्धि से करना ही 'यज्ञ' है। ऐसे 'यज्ञ' का वर्णन भगवद्गीता मे जैसा आया है वैसा ही गणेश गीता भी उपलब्ध है।[289]

अपना धर्म गुणरहित हो तो भी दूसरे के सागोपाग धर्म से उत्तम है। अपने धर्म में मर जाना भी कल्याणकारी है परतु दूसरे का धर्म भय देने वाला है। यही तथ्य भगवद्गीता मे वर्णित है।[290]

'विज्ञान योग' नामक तीसरे अध्याय मे भगवान गजानन ने अपने अवतार-धारण के सम्बध मे वे ही बाते बतलायी है, जो भगवद्गीता के चौथे अध्याय मे कही गयी है। गणेश गीता के 'वैधसन्यास योग' नामक चौथे अध्याय मे योगाभ्यास तथा प्राणायाम के सम्बध में विशेष बाते बतायी गयी हैं। यह कहा गया है कि प्राणायाम का अभ्यास करने से भूत और भविष्य की बातो का ज्ञान होने लगता है।[291] योगवृत्तिप्रशसनयोग' नामक गणेश गीता के पॉचवे अध्याय मे योगाभ्यास के अनुकूल-प्रतिकूल देश-काल-पात्र की चर्चा की गयी है।[292] योगी को सदा सयमी रहना चाहिए। राजा वरेण्य ने भी अर्जुन की तरह आशका प्रकट की—यदि कोई योगभ्रष्ट हो जाये तो उसकी क्या गति होगी?[293]

---

287 गणेश पुराण, 2 139 9,
यदर्थे यानि कर्माणि तानि बध्नन्ति न क्वचित् ।
सवासनमिद कर्म बध्नाति देहिन बलात् ।।

288 वही, 2 138 10
वर्णान् सृष्ट्वावद चाह सयज्ञास्तान् पुरा प्रिय ।
यज्ञेन ऋध्यतामेष कामद कल्पवृक्षवत् ।।
-भगवद्गीता, 3 7-10

289 वही, 2 139,35
शस्तोऽगुणो निजो धर्म साऽङ्दान्यस्य धर्मत ।
निजे तस्मिन् मृति श्रेय परत्र भयद पर ।

290 भगवद् गीता, 3 35
श्रेयान् स्वधर्मो विगुण परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह ।।

291 गणेश पुराण, 2 140 33, 'अतीतानागतज्ञानी तत स्याज्जगतीतले'

292 वही, 2 141 7-9

293 वही, 2 140 24
वरेण्य उवाच-योगमष्टस्य को लोक का गति किं फल भवेत् ।

गीता मे अर्जुन ने कृष्ण से ठीक यही प्रश्न किया था।[294] गजानन ने उत्तर दिया कि 'ऐसा योगी अपने योग्यतानुसार स्वर्ग' के भोगो को भोगकर उच्चकुल मे जन्म लेता और फिर योगाभ्यास करके मुझको प्राप्त होता है।[295] 'पुण्य कर्म करने वालो मे से कोई भी नरक मे नही पडता।' भगवद्गीता मे भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है।[296]

'बुद्धियोग' नामक छठें अध्याय मे कहा गया है कि अपने किसी पूर्व सुकृत के कारण ही मनुष्य मुझे जानने की इच्छा करेगा। जिसका जैसा स्वभाव होता है, तद्नुरूप ही मै उसकी इच्छा पूर्ण करता हूँ। अन्तकाल मे मेरी इच्छा करने वाला मुझमें मिलता है। मेरे तत्व को जानने वाले भक्तो का योग-क्षेम मै चलाता हूँ।[297]

'उपासनायोग' नामक सातवे अध्याय मे भक्तियोग का वर्णन है। यहाँ सगुण भक्ति को ही 'उपासना' कहा गया है।[298] गणेशगीता मे गणेश कहते हैं- लोक मे जो अतिशय श्रेष्ठ वस्तु है, वह मेरी विभूति है।[299] इसी के समानार्थक भाव भगवद्गीता मे भी अभिव्यक्त हैं।[300] 'विश्वरूप दर्शनयोग' नामक आठवे अध्याय मे गणेश ने भी वरेण्य को विश्वरूप का दर्शन कराया है। जैसे समुद्र से उत्पन्न सारे जलबिन्दु समुद्र मे ही लीन होते देखे जाते है, वैसे ही अनेक विश्व भगवान गणेश के उस विशाल रूप मे समाते जाते हैं। वरेण्य उस अनन्तरूप से भयभीत होकर फिर उसी सौम्य रूप को दिखलाने की प्रार्थना करते हैं। इस पर गणेश ने सगुण रूप धारण किया [301] और बताया कि भक्तो के कारण ही मुझे सगुण रूप धारण करना पडता है।[302]

---

294 भगवद्गीता, 6 23

295 गणेश पुराण, 2 141 26, नहि पुण्यकृता कश्चिन्नरक प्रतिपद्यते

296 भगवद्गीता, 6 40, नहि कल्याणकृत कश्चिद् दुर्गति तात गच्छति

297 गणेश पुराण, 2 144 40,
येन येन हिरूपेण जनो मा पर्युपासते ।
तथा तथा दर्शयामि तस्मै रूप सुभक्तित ।।
भगवद्गीता, 11 55
यत्कर्म कृन्मत्परमो मद्भक्त सगवर्जित
निर्वैर सर्वभूतेषु य स मामेति पाण्डव ।।

298 वही, 2 143 6-9, भगवद् गीता, 2 7

299 वही, 2 143 25, 'यद्यच्छेष्टतम् लोक सा विभूतिर्निबोध मे'

300 भगवद्गीता, 10 41, -'न्यद्यपि भूतिमत् सत्व श्रीमदर्जितमेव वा'

301 गणेश पुराण, 2 143 3-8

302 वही, 2 145 3
योमा मूर्तिधर भक्त्या मद्भक्त परिसेवते ।
स मे मान्योऽनन्य भक्तिर्नियुज्य हृदय मयि ।।

'क्षेत्रज्ञातृज्ञानज्ञेयविवेकयोग' नामक नवे अध्याय मे क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का ज्ञान तथा सत्व-रज-तम आदि तीनो गुणो के लक्षण भी बताये गये हैं।[303] लोग जिस-जिस रूप मे मेरी उपासना करते हैं उनकी उत्तम भक्ति से प्रसन्न होकर मैं उन्हे उसी रूप मे दर्शन देता हूॅ। भगवद्गीता मे भी कुछ इसी प्रकार का वर्णन मिलता है।[304] 'उपदेश योग' नामक दसवे अध्याय मे दैवी, आसुरी और राक्षसी तीन प्रकार की प्रकृतियो के लक्षण बताये गये हैं। जबकि भगवद्गीता मे केवल दैवी और आसुरी दो ही प्रकार की प्रकृतियो का वर्णन प्राप्त होता है। दैवी प्रकृति के लक्षण अपैशुन्य, अक्रोध, धैर्य, तेज, अभय, अमानित्व आदि हैं, जो मुक्ति प्रदान करते हैं। अतिवाद, अभिमान, गर्व, भोगेच्छा आदि आसुरी स्वभाव के चिन्ह है जो पहले भोग तथा बाद मे दु ख प्रदान करते हैं। निष्ठुरता, मद, मोह, द्वेष, क्रूरता,जारण-मरण प्रयोग, अविश्वास, अपवित्रता, निन्दा, भय एव असत्य आदि राक्षसी प्रकृति के गुण हैं, जो नरक और दु ख देने वाले हैं। पूर्वकृत पापो के कारण ही नारकी जीव पुन ससार मे कुबडे, अन्धे, पगु एव दीन-हीन होकर उत्पन्न होते हैं।[305] इसी प्रकार की अभिव्यक्ति गणेश गीता मे भी हुयी है कि नरेश्वर! दैववश नरक से निकल कर वे पृथ्वी पर कुबड़े, जन्म के अधे, पगु और दीन होकर हीनजातियो मे जन्म लेते हैं।[306] काम, क्रोध, लोभ और दभ[307] मे चार नरको के महाद्वार हैं। अत इनका त्याग कर देना चाहिए। दैवी प्रकृति का आश्रय लेकर मोक्ष का साधन करना चाहिये।

'त्रिविधवस्तु विवेक निरूपण योग' नामक अतिम अध्याय मे कायिक, वाचिक तथा मानसिक ये तप के तीन प्रकार बताये गये हैं। सत्, रज, तमस इन तीन गुणो के कारण ही यज्ञ, दान, ज्ञान, कर्म, कर्ता, सुख इत्यादि के तीन-तीन भेद हो जाते है। इनमे सत्वगुण श्रेष्ठ और मोक्षदायक है। चातुर्वर्ण्य भी इन्ही गुणो के आधार पर प्रतिष्ठित हुये है। प्रत्येक के धर्म भी अलग-अलग हैं।[308] अर्थात् अपने-अपने कर्मो मे लगे हुये इन चारो

---

303 गणेश पुराण, 2 145 40

304 भगवद्गीता, 7 21

305 भगवद्गीता, 91 23-28

306 गणेश पुराण, 2 146 13
दैवान्नि सृत्य नरकाज्जायन्ते भुवि कुब्जका ।
जात्यन्धा पड्गवो दीना हीन जातिषु ते नृप ।

307 वही, 2 146 23
कायो लोभस्तथा क्रोधो दम्भश्चत्वार इत्यमी ।
महाद्वाराणि वीचीना तस्मादेतास्तु वर्जयेत् ।।

308 वही, 2 147 34
स्व स्व कर्मरता एते मर्य्यप्याखिलकारिण ।
मत्प्रसादात् स्थिर स्थान यान्ति ते परम नृप ।।

वर्णो के लोग मुझे समर्पित करके यदि समस्त कर्मो का अनुष्ठान करते हैं तो मेरी कृपा से सुस्थिर परम पद को प्राप्त होते हैं। इसी भाव की झलक भगवद्गीता मे भी है।[309] जिस प्रकार भगवद्गीता और गणेशगीता का आरभ भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे हुआ था, उसी तरह इन दोनो गीताओ के श्रवण का परिणाम भी भिन्न-भिन्न हुआ। अर्जुन अपने छात्र धर्म के अनुसार युद्ध करने को तैयार हो गये परन्तु राजा वरेण्य पुत्र को राज्य भार सौप कर वेगपूर्वक वन मे चले गये। वहॉ उन्होने योग के माध्यम से मोक्ष प्राप्त किया।[310] उस मुक्त स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया गया है—जिस प्रकार जल जल मे मिलने पर जल ही हो जाता है उसी प्रकार ब्रह्मरूपी गणेश का चिन्तन करते हुये राजा वरेण्य भी उस ब्रह्मरूप मे समा गये।[311] इसी प्रकार की भावाभिव्यक्ति भगवद्गीता के अतिम अध्याय मे भी प्राप्त होती है।[312] भगवद्गीता व गणेशगीता मे अनेक समान बिन्दु हैं। भगवद्गीता पर अनेक भाष्य लिखे गये हैं। किन्तु गणेशगीता पर भाष्य बहुत कम लिखे गये हैं। दोनो गीताओ की फलश्रुति एक ही है तथा दोनो ही साधक को साध्य (परम ब्रह्म की प्राप्ति) तक पहुॅचने का एक जैसा ही मार्ग बताती है। दोनो का प्रतिपाद्य विषय एक ही है। विषय की प्रतिपादन शैली भी लगभग एक-सी है। दोनो मे ही मानव के लिये आदर्श आचरण का प्रतिपादन किया गया है। दोनो ही ग्रन्थ यह मानते हैं कि हमारा आदर्श आचरण भी हमारे उद्देश्य से नियत्रित होता है। जैसा हमारा उद्देश्य या लक्ष्य होगा, हम उसी के अनुसार आचरण करेगे। उद्देश्य के अनुकूल आचरण ही हमारे लिये उचित आचरण कहलायेगा। दोनो ही ग्रन्थो मे मनुष्य के भौतिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष का वर्णन किया गया है।

---

309 भगवद्गीता, 18 46

यत प्रवृत्तिर्भूताना येन सर्वमिद ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानव ।।

310 गणेश पुराण, 2 147 38

त्यक्त्वा राज्य कुटुम्ब च कान्तार प्रययौश्चात् ।
उपदिष्ट यथा योगमास्याय मुक्तिमाप्तवान् ।।

311 गणेश पुराण, 2 147 35

यथा जल जलेक्षिप्त जलमेव हि जायते ।
तथा तद्यानत सोऽपि तन्मपत्वमुपायौ ।।

312 भगवद्गीता, 18 21

गणेश पुराण में तंत्रोपासना

गणेश पुराण का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि गाणपत्य दर्शन अन्य समकालीन धर्म और दर्शन से प्रभावित होने के साथ-साथ तंत्रोपासना से भी प्रभावित था। विभिन्न आगम परम्पराओ से भी वह सम्बद्ध रहा। सामान्यत तत्रोपासना का प्रारभ पॉचवी शताब्दी से माना जाता है।[313] इसी काल मे तत्र दर्शन से वैष्णव और शैव भी प्रभावित होने लगे थे।[314] गणेश पुराण का रचना काल 1100 से 1400 शताब्दी माना गया है। [315] गाणपत्य सम्प्रदाय का विकास 8-9 शताब्दी मे होने लगता है। निष्कर्षत माना जा सकता है कि तात्रिक दर्शन ने नवी शताब्दी मे शैव, वैष्णव, बौद्ध और जैन मत के साथ-साथ गाणपत्य दर्शन को भी प्रभावित करना प्रारभ कर दिया था।[316] पूर्व मध्यकाल के दूसरे चरण 10-12शताब्दी तक आते-आते तत्रोपासना का चतुर्दिक प्रभाव दिखाई देने लगता है। इस काल की रचनाओ मे यह प्रभाव स्पष्ट प्रतिबिम्बित हुआ है।[317] उदाहरणार्थ, गरुड पुराण[318] एव अग्नि पुराण [319] मे तात्रिक परम्परा का वृहद विवेचन हुआ है।[320]

11वी शताब्दी तक सर्वत्र तत्र का प्रचार-प्रसार हो रहा था। ऐसे मे गणेश पुराण और गणेश उपासना इससे अछूता कैसे रह पाता? तांत्रिको ने गणेश को शक्ति [321] के साथ सम्बद्ध करके उनके सम्मान मे विभिन्न प्रकार के मत्रो की रचना की।[322] उन्हे मत्रपति के रूप मे प्रतिस्थापित किया गया।[323] इसके पीछे यह दर्शन था कि मत्रपति की पूजा उन्हे विभिन्न काली छायाओ से बचाता है।[324] गणेश वामाचार तात्रिक उपासना पद्धति मे भी लोकप्रिय थे।[325] गणेश पुराण के "गणेश सहस्त्रनाम स्त्रोत" मे उच्छिष्ट गणपति, उच्छिष्ट

---

313 हाजरा, आर०सी०, पौराणिक रिकार्ड्स, पृ० 218

314 भट्टाचार्य, एस०सी०, सम आसपेक्ट्स ऑफ इण्डियन सोसाइटी, कलकत्ता, 1978, पृ० 72

315 हाजरा, द गणेश पुराण, पृ० 99

316 शर्मा, आर०एस०, मैटीरियल मिलेयू ऑफ तात्रिसिज्म, पृ० 175

317 बैनर्जी, जे०एन०, पुराणिक एण्ड तात्रिक रिलिजन, कलकत्ता, 1966, पृ० 1-3

318 गरुण पुराण की तिथि दसवी शताब्दी निर्धारित हुयी है, हाजरा, आर०सी०, पूर्वोद्धृत पृ० 186

319 हाजरा, आर०सी०, वही, पृ० 262, अग्नि पुराण की विथि 11वी शताब्दी निर्धारित हुई है।

320 बैनर्जी, जे०एन०, वही, पृ० 15

321 गणेश पुराण, 1 46 144-150

322 वही, 1 11 3 - सप्तकोटि महामत्रा गणेशस्यागमे स्थिता

323 वही, 1 46 108

324 वही, 1 46 124,2 85 35-39,1 12 2- इदानी श्रोतुमिच्छामि मन्त्रराजमिम पित ।

325 बैनर्जी, जे०एन०, डेवलपमेन्ट ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी, पृ० 267

गण, गुह्याचाररत, गुह्यागमनिरूपिता [326]उल्लिखित नाम यह प्रमाणित करते हैं कि तत्र परम्परा मे गणेश का महत्व किसी भी स्तर पर वामचक्र से कम नही रहा होगा।[327]

गणेश पूजा मे तात्रिक-यत्र [328] पूजा को उपासना के माध्यम के रूप मे स्वीकार किया गया है। गणेश उपासको को यह निर्दिष्ट किया गया है कि मत्र-सध्या, न्यास और यत्रो के आरेखन को सम्पादित करने के लिये आगम निर्देशो का अनुपालन अवश्य करे।[329] गणेश के सात करोड़ आगमिक मन्त्रो का वर्णन किया गया है।[330] गणेश पुराण मे एकाक्षर, द्वयाक्षर, चतुराक्षर, पचाक्षर, षडाक्षर, अष्टाक्षर, दशाक्षर, द्वादशाक्षर, षोडशाक्षर, अष्टादशाक्षर तथा बीस अक्षरो वाले मत्रो का[331] विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। किन्तु इसके साथ यह भी स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ऋग्वेद का 'गणानात्वा' महामत्र आगमिक मत्रो की तुलना मे श्रेष्ठ है।[332] गणेशपुराण मे गणेश की उपासना के अतर्गत न्यास,[333] भूतशुद्धि,[334] मुद्रा,[335] अभिचार,[336] बीज,[337]

---

326 गणेश पुराण, 1 46 83 - गुह्याचारतो गुहयो
गुहयाशयो गुह्याब्धिस्थो गुरुगम्यो गुरोर्गुरू ।

327 हाजरा, आर०सी०, द गणेश पुराण', पृ० 93

328 गणेश पुराण, 1 69 14, हाजरा, आर०सी०, द गणेश पुराण, पृ० 97

329 वही, 1 11 14,49,20 और 69,14

330 वही, 1 11 3

331 वही, 1 11 4, 20 29, 46 155, 50 2, 51 28, 91 32-33 आदि

332 वही, 1 36 19-20 -हाजरा, आर०सी०, गणेश पुराण, पृ० 94

333 वही, 1 85 5, 1 11 13 - अतर्बहिमातृकाणा न्यास कृत्वा त्वतद्रित ।
-न्यास की अनेक श्रेणियाँ करन्यास, मत्रन्यास और जपन्यास हैं । द्रष्टव्य, शारदातिलक, 4 29 41, राघवमट्ट ने इनकी व्याख्या की है।

334 वही, 1 11 12, -तास्मिन् स्थित्वा भूतशुद्धिप्राणाना स्थापन तथा ।

335 वही, 1 18 6 -आवाह्नादि, मुद्राभि पूजयित्वा मनोमयै ।
मुद्रा तात्रिक पूजा का एक विशिष्ट विषय है । मुद्रा के अनेक अर्थ होते हैं, जिसमे चार अर्थ तात्रिक प्रयोगो से सम्बधित हैं, (1) आसन (2) अगुलियो और हाथो का प्रतीकात्मक ढग (3) पच आकार (4) वह स्त्री जिससे तात्रिक योगी अपने को सम्बधित करता है ।
द्रष्टव्य, काणे पी०वी०, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, भाग-5 पृ० 65-66

336 वही, 2 68 10, चकराभिचर दैत्यो वन्हि स्थाप्य यथाविधि ।
-तत्रोपासना मे अभिचार क्रिया को महत्व दिया गया है । अभिचार क्रिया से तात्पर्य षट्हिंसा, मारण, मोहन, उच्चाटन, स्तम्भन, वशीकरण, विद्वेषण से है।
द्रष्टव्य- श्रीमाली, नारायण दत्त, तत्रसाधना, पृ० 97-98

337 वही, 1 46 8
-देवता के मत्र के गूढ़ अक्षरो को बीज कहते हैं। द्रष्टव्य- वुडराफ, द गारलैण्ड ऑफ लेटर्स, पृष्ठ 578

गुरुदीक्षा,[338] यत्र,[339] सस्कारादि[340] के प्रयोग पर बल दिया गया है, जो तात्रिक प्रभाव के द्योतक है।[341] इसके अतिरिक्त आवाहन, स्थापन, सशोधन, सन्निधान स्नान[342], गध, पुष्प, दीप, नैवेद्य,शुद्धि, पाद-प्रक्षालन, लेपन,[343] जप,[344] यज्ञ,[345] विसर्जन,[346] आदि तात्रिक उपचारो का विस्तार से वर्णन है।[347]

आरभिक तात्रिक साहित्य पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि तत्र सम्प्रदाय मे अनेक महत्वपूर्ण तत्वो का समावेश था। तत्र साधना मुख्य रूप से शाक्त सम्प्रदाय से सबद्ध है तथापि शैव एव वैष्णव सम्प्रदायो तथा बौद्ध एव जैन धर्मो के तत्व स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते है। वैद्यो तथा ज्योतिषियो के रूप मे तात्रिक आम आदमी की सामाजिक एव भावात्मक आवश्यकताओ की पूर्ति करते थे। व्यवहारत तत्र सम्प्रदाय हिन्दू धर्म के समान ही था। उसकी दृष्टि सर्वथा सम्प्रदाय निरपेक्ष तथा भौतिकवादी थी। जन सामान्य के अत्यत निकट होने के कारण आज भी इसका अस्तित्व कायम है।[348]कर्मकाण्ड तथा गुह्याचारो के बिना तत्र सम्प्रदाय की कल्पना असम्भव है। विटरनित्ज के अनुसार तत्रो तथा उनमे वर्णित धर्म की विचित्र विकृतियो का उद्‌भव आदिवासियो या आर्य अप्रवासियो

---

338 गणेश पुराण, 1 12 6 -तत्रोपासना मे गुरु की विशेष महत्ता बतायी गयी है। गुरु और देवता मे कोई अतर नही होता। उससे दीक्षा लिये बिना साधक की सब क्रिया निष्फल हो सकती है। द्रष्टव्य- योगिनी तत्र-1, वुडराफ सरजान,इट्रोडक्शन टू तत्रशास्त्र।

339 वही, 2 95 50, -विश्वकर्मा ततश्चैन यन्त्रै स्थापप्यौल्लिलेख ह ।
-यन्त्र के माध्यम से पूजा तन्त्र-साधना की विशिष्टता है। इसे चक्र भी कहा जाता है। धातु, पत्थर, कागज या अन्य वस्तु पर उत्कीर्ण की गयी आकृति को यत्र कहते हैं, जो किसी देवता को प्रसन्न करने के उद्देश्य से बनायी जाती है।
-द्रष्टव्य, जियर, मिथ एण्ड सिम्बल इन इण्डियन आर्ट एण्ड सिविलाइजेशन, पृ० 140-148, काणे, पी०वी०, वही, भाग-5, पृ० 73-76

340 वही, 2 98 10, - सस्कारो को तात्रिक परम्परा मे विशेष महत्व दिया जाता था। तत्र ने मात्र दस सस्कारो को ही स्वीकार किया है। द्रष्टव्य- वुडराफ सरजान, शक्ति एण्ड शाक्त, मद्रास, 1963, पृ० 483

341 हाजरा, आर०सी०, द गणेश पुराण, पृ० 97

342 गणेश पुराण, 1 69 16-25

343 वही, 2 144, 6-9

344 वही, 2 11 13

345 वही, 2 66 21

346 वही, 2 66 22

347 वुडराफ सरजान, प्रिन्सिपल्स ऑफ तत्र, पृ० 781-785

348 विंटरनित्स, ए हिस्ट्री ऑफ इडियन लिटरेचर, अनुवाद रामचद्र पाण्डेय, दिल्ली, 1966, भाग-2, पृ० 531

के बीच प्रचलित लोक मान्यताओ और लोक परम्पराओ से नही हुआ, बल्कि यह धर्मतत्वज्ञो के असद्ज्ञान की देन है।[349]

कामानुष्ठान को तत्र साधना मे निकृष्टतम अनुष्ठानो मे गिना जाता है किन्तु उनकी मान्यता थी कि यह उनके जादू-टोने का महत्वपूर्ण अग है तथा इससे धरती की उर्वरा शक्ति तथा समृद्धि मे वृद्धि होती है।[350]

तत्र साधना का उदय पूर्वमध्यकाल की आर्थिक तथा सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए हुआ। इसमे एक ओर स्त्रियो, शूद्रो तथा बाहर से शामिल होने वाली जनजातियो को स्थान दिया गया और दूसरी ओर, तत्कालीन सामाजिक तथा सामती श्रेणी विन्यास को भी मान्यता दी गयी। तत्र सम्प्रदाय सामाजिक सघर्ष को तीव्र करने की बजाय सामाजिक सौहार्द्र तथा एकता स्थापित करने का धार्मिक प्रयास था। यह मध्य देश के बाहर की सस्कृति द्वारा अपने वर्चस्व के आग्रह का द्योतक था तथा ब्राह्मणीय समाज द्वारा उस वर्चस्व की स्वीकृति का प्रतीक भी था। [351]

गणेश पुराण मे कुछ जादू-टोने तथा तत्र-मत्र का उल्लेख मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज मे तत्र सम्प्रदाय का प्रभाव स्पष्ट रूप से पड़ रहा था। इसमे वर्णित एक कथा के सदर्भ मे उल्लिखित है कि अदिति ने दही-भात बालक के ऊपर उतार कर उसे बाहर फेक दिया ताकि बालक के ऊपर शाति बनी रहे, दुष्टो की दृष्टि न पड़े।[352] अन्यत्र वर्णित है कि माता-पिता की कुशा की प्रतिकृति बना कर उसे स्नान कराया गया।[353]समाज मे प्रचलित सस्कारो मे भी तत्रवाद की झलक दिखाई देती है, जिसका वर्णन इस पुराण मे कई स्थलो पर है। इसके अतर्गत बालक को कुदृष्टि से बचाने तथा व्याधि से मुक्ति के विभिन्न उपचार बताये गये हैं।[354] जैसे, गणेश के एक कवच को भोजपत्र पर लिखकर जो कण्ठ मे धारण करेगा उसे यक्ष, राक्षस, पिशाच किसी का भय नही रहेगा।[355] तीन बार जप करने से शरीर वज्र-सा एव यात्रा

---

349 गणेश पुराण, पृ० 581

350 एन०एन० भट्टाचार्य द्वारा सकलित प्रासगिक सदर्भ, डी०सी० सरकार (स०) द शक्ति कल्ट एण्ड तारा, कलकत्ता विश्वविद्यालय 1967, पृ० 68-69 तथा 143-146

351 शर्मा, आर०एस०, पूर्वमध्यकालीन भारत का सामती समाज तथा सस्कृति, राजकमल प्रकाशन 1998, अ० 9, पृ० 209

352 गणेश पुराण, 2 72 11-12, ततोऽदितिस्तु बध्यन्न भ्रामयित्वाऽत्यजद्वहि।
दुष्टदृष्टिनिपातस्य शातये बालकोपरि ।।

353 वही, 1 87 53,

354 वही, 2 85 17

355 वही, 2, 55, 34

निर्विघ्न होती है।[356] युद्ध मे लडने वाला विजयी[357] कवच इक्कीस बार पढ़ने वाला कारागार से मुक्त होगा।[358] गणेश पुराण मे मारण, सम्मोहन, उच्चाटन जैसी अभिचारिक क्रियाओ के प्रयोग का उल्लेख है।[359]अभिमत्रित कुशा के प्रहार से राक्षसो को मारने [360] अभिमत्रित चावल [361]व अभिमत्रित पुष्प फेके जाने[362], अभिमंत्रित जल फेकने का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[363] बीज सहित अघोर मत्रो की सिद्धि[364], यज्ञ मे पुत्र बलि,[365] मॉस, रुधिर [366] आदि के अर्पण का उल्लेख बामाचार तत्र साधना का गणेश उपासना पर प्रभाव परिलक्षित कराता है। गणेश पुराण के एक स्थल पर अभिचार यज्ञ से राक्षसो के उत्पन्न होने का भी वर्णन है। [367] पशुबलि से देवताओ की प्रसन्न करने का वर्णन गणेश पुराण मे है। [368] सामान्य योग द्वारा शम्बर की हत्या का उल्लेख तात्रिक विद्या का गणेश पुराण पर प्रभाव परिलक्षित करता है। [369] उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि गणेश उपासना, तात्रिक उपासना पद्वति से गहरे तक प्रभावित थी। इसका प्रतिबिम्बन गणेश पुराण मे दिखाई देता है। यह विश्लेषण अनिवार्य है कि गणेश उपासना, तात्रिक परम्परा से क्यो जुडी? इस सन्दर्भ मे अनेक तथ्य उभर कर आते हैं।

तत्रोपासना के अतर्गत शूद्र और स्त्रियो को उपासना की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी थी। उन्हे तात्रिक गायत्री मत्र के जप की, जिसका अनुकरण वैदिक गायत्री के आधार पर किया गया था, स्वतत्रता थी। [370] शूद्रो को कुछ निश्चित सस्कार सम्बन्धी पूरी स्वतन्त्रता

---

356 गणेश पुराण, 2, 85, 35

357 वही, 2, 86, 36

358 वही, 2, 85, 38

359 वही, 2, 85, 36

360 वही, 2, 109, 29
मत्रितास्ते कुषास्तेषा मस्तकानच्छिन्नन्बहून् ।

361 वही, 2, 10, 12
ज्ञात्वा कुमार स्तान्दुष्टान्मत्रयामास तडुलान् महोत्कट प्रचिक्षेप तडुलान् पच पचसु।

362 वही, 2,123, 13

363 वही, 1, 9, 11

364 वही, 2,66,13

365 वही, 2,66,22

366 वही, 2,66,21

367 वही, 2, 68,12-13

368 वही, 2, 30, 26

369 वही, 2, 89, 12

370 यादव, बी०एन०एस० सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया इन ट्वेल्थ सेन्चुरी, इलाहाबाद, 1973, पृ० 218

दी गयी थी। उन्हे तीर्थ स्थलो पर जाने की स्वतत्रता प्राप्त हो चुकी थी। [371]इसका उल्लेख गणेश पुराण मे हैं। [372] गणेश उपासना द्वारा वर्ण व्यवस्था मे क्रमश उच्च स्तर को प्राप्त कर लिये जाने का भी वर्णन मिलता है। [373] काणे व धुर्रे महोदय का मत है कि इस काल मे शूद्र द्वारा मदिर बनवाने का विधान भक्ति-परम्परा मे अनुमोदित था। [374] आर एस शर्मा का मत है कि दीर्घ काल से उपेक्षित शूद्रों को भी पूजा, उपासना तथा अन्य तात्रिक क्रियाओ की स्वतन्त्रता प्रदान करने के पीछे तत्रोपासना को लोकप्रिय एव महत्वपूर्ण बनाने का व्यापक उद्देश्य रहा होगा। [375] तत्रोपासना की समाज मे इतनी महत्वपूर्ण स्थिति व लोकप्रिय हो जाने की पृष्ठभूमि मे अवश्य कुछ महत्वपूर्ण कारक होगे। इन्हे डा शर्मा ने विश्लेषित करने का प्रयास किया है। इसमे एक महत्वपूर्ण तथ्य यह उभरता है कि तत्र परम्परा के अन्तर्गत ऐसे अनुष्ठानो व उपचारो का विधान था जो समाज के लिये अत्यत उपयोगी थे। ये तात्रिक चिकित्सक व ज्योतिषी के रूप मे समाज के लोगो के मध्य लोकप्रिय हो रहे थे। वे लोगो की सेवा भी करते थे। [376] जनसामान्य की अधिकाश आवश्यकताएँ भौतिक वस्तुओ से जुडी होती हैं तथा तत्र-परम्परा मे भौतिक इच्छाओ की पूर्ति हेतु प्रभावकारी अनुष्ठान प्रस्तावित थे।[377] इसी से तत्र उपासना व परम्परा शीघ्र ही लोकप्रिय हो गयी। तत्र-दर्शन का अधिकाश भाग अनुष्ठानात्मक एव व्यवहारपरक होने के कारण मानव के दैनिक जीवन से सम्बद्ध था। अत समाज के आतरिक जीवन मे तत्र परम्परा का समावेश होता गया। [378] पूर्व मध्यकाल मे पुरोहितो तथा मदिरो के लिये समय-समय पर दिये गये भूमि-अनुदानो से भी तत्रोपासना को प्रोत्साहन मिला होगा। सामान्यत भूमि अनुदान की प्रक्रिया पॉचवी शताब्दी से प्रारभ हो गयी थी। यद्यपि उसकी तीव्रता पूर्व मध्यकाल मे अधिक उभर कर आयी। [379] भूमि अनुदान के कारण तत्र-परम्परा के प्रभाव स्वरूप नयी पद्धति के मदिर आदि बने, इससे भी तत्रोपासना के प्रचार-प्रसार को बल मिला होगा। [380]

---

371 शर्मा, आर०एस०, द मैटीरियल मिलेयू ऑफ तान्त्रिसिज्म, पृ० 175

372 गणेश पुराण, 1 29 13-14

373 वही, 2, 155, 18, 50

374 काणे, पी०वी० हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, भाग-2, पृ० 361
धुर्रे, जी०एस०, कास्ट क्लास एण्ड अकूपेशन, बाम्बे, पृ० 74

375 शर्मा, आर०एस०, पूर्व मध्यकालीन भारत का सामती समाज और सस्कृति, पृ० 190

376 शर्मा, आर०एस०, द मैटिरियल मिलेयू ऑफ तान्त्रिसिज्म, पृ० 175

377 शर्मा, आर०एस०, वही, पृ० 175

378 बैनर्जी, जे०एन०, पुराणिक एण्ड तात्रिक रिलिजन, कलकत्ता 1966, पृ० 1-17

379 शर्मा, आर०एस०, इण्डियन फ्यूडलिज्म, पृ० 103

380 बैनर्जी, जे०एन०, वही पृ० 15, यादव, बी एन एस , वही पृ० 230

तन्त्र परम्परा की लोकप्रियता के पीछे एक अन्य महत्वपूर्ण कारण भी दिखता है और वह यह है कि वैष्णव धर्म परम्परावादी था। अन्य मतावलम्बियो के लिये उसमे स्थान नही था, शकराचार्य का अद्वैत एव रामानुचार्य का विशिष्टाद्वैत जटिल व दुरूह था। ऐसी सामाजिक व धार्मिक परिस्थितियो मे तात्रिक दर्शन के प्रचार व लोकप्रियता प्राप्त करने का अच्छा अवसर था। तत्र परम्परा पूर्णत धर्म निरपेक्ष एव लौकिक थी। [381] क्योकि इसमे उॅच, नीच, वर्ग, धर्म, लिग आदि का भेदभाव नही था। सभी सम्प्रदाय तथा वर्ग के लोगो को समान आचरण की स्वतत्रता उपलब्ध थी। फलत तात्रिक दर्शन लोगो की धार्मिक ही नहीं अपितु सामाजिक आवश्यकताओ की भी पूर्ति करता होगा। [382] इसी से वह अन्य सम्प्रदायो एव वर्गो की तुलना मे जन-सामान्य के अधिक निकट व लोकप्रिय हुआ। गाणपत्य सम्प्रदायियो ने लोगो के मध्य स्वय को प्रचारित-प्रसारित व लोकप्रिय बनाने हेतु एक ओर स्वय को वैदिक परम्परा, गणेश को वैदिक मत्र 'गणानात्वा गणपति' से जोडने का प्रयास किया, दूसरी ओर जनसामान्य मे प्रचलित तत्र परम्परा से भी वे जुड़े और उस काल मे लोकप्रियता प्राप्त करने मे पूर्णतया सफल हुये।

❑❑

---

381 शर्मा, आर०एस०, मैटीरियल मिलेयू ऑफ तान्त्रिसिज्म, पृ० 136

382 वुडराफ सरजान, प्रिंसपल्स ऑफ तत्र, मद्रास, 1960, पृ० 218

पचम अध्याय

गणेश पुराण में गणेश का प्रतिमा-स्वरूप

प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप का प्रारभ ▫ पुराणो मे गणेश का स्वरूप प्रतिमा विज्ञान के सदर्भ मे ▫ आगम ग्रथो मे गणेश का प्रतिमा-स्वरूप ▫ गणेश के आयुध, वस्त्र, आभूषण, भुजाये, वाहन एव पार्षद ▫ प्रतिमा द्रव्य ▫ मूर्तिविज्ञान मे गणेश-प्रतिमा का विकास ▫ गणेश के प्राचीन मदिर

पंचम अध्याय

गणेश पुराण में गणेश का प्रतिमा-स्वरूप

प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप का प्रारंभ

गणेश पुराण के रचनाकाल तक समाज मे गणेश प्रमुख और स्वतत्र देव के रूप मे स्थापित हो चुके थे। गाणपत्य सम्प्रदाय के अनुयायियो ने गणेश को परब्रह्म व सर्वोच्च सत्ता का स्वरूप प्रदान किया तथा उनकी महत्ता की स्थापना हेतु साहित्य की रचना की। साहित्य मे गणेश को सर्वोपरि देव तथा वैदिक देवो के सदृश स्वरूप प्रदान किया गया। इस प्रयास के अतर्गत गणेश के सगुण व निर्गुण दोनो ही स्वरूपो का वर्णन व व्याख्या की गयी। पुराणो मे परब्रह्म को शब्द, रस, रूप और गध से शून्य माना गया है, फिर भी उनके द्विविध रूप का वर्णन मिलता है– प्रकृति और विकृति।[1] परब्रह्म के अव्यक्त, अदृष्ट और अलक्ष रूप को प्रकृति कहा गया है,[2] जबकि विकृति स्वरूप, उसके साकार रूप को विकृति स्वरूप अभिहित किया गया है। जिसकी पूजा अर्चना द्वारा आराधना की जाती है।[3] यही ब्रह्म का सगुण रूप है। ब्रह्म के प्रकृति अर्थात् निर्गुण रूप का कोई आधार नही होता है,[4] जबकि साकार और सगुण रूप आधार युक्त होता है। ब्रह्म की साकार परिकल्पना ही आगे चलकर विभिन्न प्रतिमाओ के रूप मे व्यक्त हुई।[5]

गणेश पुराण मे गणेश के निर्गुण स्वरूप के साथ ही उनके सगुण-साकार स्वरूप का भी वर्णन है, जो पूर्व मध्यकालीन गणपति प्रतिमाओ के विकास की अवस्था को प्रकट करता है। इस पुराण मे गणेश का विकसित, विविध व बहुआयामी स्वरूप व्याख्यायित है। यह

---

1 विष्णु धर्मोत्तर पुराण, 3 46 1-2
रूप गन्ध रसैर्हीन शब्दस्पर्शविवर्जित ।
प्रकृति विकृतिस्तस्य द्वे रूपे परमात्मन ।।

2 वही, 3 46 2, अलक्ष्य तस्य तद्रूप प्रकृति सा प्रकीर्तिता।

3 वही 3 46 3,
सकारा विकृतिर्ज्ञेया तस्य सर्व जगत्स्मृतम्।
पूजाध्यानादिक कर्तुं सकारास्यैव शक्यते।।

4 वही, 3 46 4, अव्यक्ता हि गतिर्दु ख देहवद्भिरवाप्यते।

5 मिश्र, इन्दुमती, प्रतिमा विज्ञान, मध्य प्रदेश, 2000, पृ० 46

विविधता मुद्राओ, अलकारो, आयुधो, वाहनो, स्वरूपो सभी मे परिलक्षित होती है। गणेश पुराण मे वर्णित गणेश के स्वरूप का अध्ययन करने से पूर्व पुराणो मे गणेश के विकास क्रम तथा अन्य साहित्य मे प्राप्त उनके स्वरूपो की जानकारी अनिवार्य है।

गणेश पुराण मे गणेश का अत्यत मनोरम व भव्य स्वरूप इस प्रकार वर्णित है– विनायक की रत्नकाचन से युक्त महामूर्ति बना कर, जिसमे उनके चतुर्भुज व त्रिनेत्री स्वरूप का अकन हो तथा जो नाना अलकारो से शोभायमान हो, षोडशोपचार विधान के साथ पूजा करनी चाहिए।[6] इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ग्यारहवी शताब्दी तक गणेश का स्वरूप पूर्ण विकसित अवस्था तक पहुँच चुका था तथा वे हिन्दू देवमण्डल मे महत्वपूर्ण स्थिति बना चुके थे। यद्यपि गणेश का यह स्वरूप बहुत प्राचीन नही है। वेदो और उपनिषदो मे इन्हे किसी महत्वपूर्ण देव के रूप मे नही वर्णित किया गया था। स्मृतियो और पुराणो मे भी ये अन्य देवो के साथ ही वर्णित है। इनका स्वतत्र व साम्प्रदायिक व्यक्तित्व वहॉ नही परिलक्षित होता। गुप्त काल के बहुत से अभिलेखो की शुरुआत अर्हतो को नमस्कार करके की गयी है या केवल सिद्धम् अकित है। गणेश का उल्लेख नही है। यहॉ तक कि कुछ अभिलेखो मे ब्राह्मण धर्म के अन्य देवताओ जैसे विष्णु, वराह, सूर्य आदि को नमस्कार करके शुरुआत की गयी है।[7] ललित विस्तर आदि ग्रन्थो मे जो उपास्य देवताओ की सूची मिलती है उसमे भी गणेश का उल्लेख नही है।[8]

गणेश शिलालेखो व मूर्तियो की अपेक्षा साहित्य मे पहले उल्लिखित हुए हैं। ऋग्वेद के 'गणाना त्वा गणपतिम्'[9] मत्र मे यद्यपि कि गणपति शब्द का उल्लेख है, परन्तु सायण के मतानुसार यह गणेश के लिए नही बल्कि 'ब्रह्मणस्पति' के लिए है, जो देवादि गणो के अधिपति हैं।[10]

वाजसनेही सहिता के 'गणनात्वा गणपति हवामहे'[11] मत्र का अभिप्राय अश्वमेध के घोड़े से है, न कि गणेश से।[12] तात्पर्य यह है कि पूर्ववर्ती ग्रन्थो मे अनेक स्थलो पर 'गणपति'

---

6 गणेशपुराण, 2 21 10-11
वैनायकी महामूर्ति रत्नकाचननिर्मिताम्।
चतुर्भुजा त्रिनयना नानालकारशोभिनीम्।
उपचारै षोड्शभि पूजयन्त विधानत।।

7 जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोत्तम, प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, पटना, 1977, पृ०167

8 वही, पृ० 167

9 ऋग्वेद, 2 23 1

10 बैनर्जी, जे एन डेवलपमेट ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी, कलकत्ता, 1956, पृ० 976

11 वाजसनेही सहिता, 23 19

12 जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोत्तम, वही पृ० 167

शब्द का प्रयोग हुआ है, किन्तु पौराणिक युग के गणपति या गणेश के रूप मे उनकी कल्पना नही हुई है। वस्तुत वैदिक देवमण्डल मे गणेश की गणना हुई ही नही है।[13] गणपति का स्पष्ट उल्लेख मैत्रायणी सहिता [14] की गणेश-गायत्री तथा गणपत्यर्थशीर्ष, जिसे 'गणेशोपनिषद्' भी कहते हैं, मे मिलता है। लेकिन विद्वानो ने गायत्री वाले इन भागो तथा गणेशोपनिषद् को बहुत बाद का माना है।[15] इसमे कोई सदेह नही है कि ईसवी सन् के बहुत पहले गणपति का साहित्य मे प्रवेश हो चुका था। मूर्तिकला के क्षेत्र मे उनका अस्तित्व बहुत बाद मे आया। कदाचित् इनकी उपासना को शास्त्रीय धरातल एव मान्यता प्राप्त करने मे समय लग गया होगा। पौराणिक युग मे गणपति या गणेश के जिस स्वरूप का विकास हुआ है उसके अनेक तत्वो की कल्पना छठी शताब्दी ई० पू० मे ही कर ली गयी होगी। क्योकि ई० पू० छठी शताब्दी के 'बौधायन धर्मसूत्र' मे गणेश के तर्पण की गणना की गयी है तथा इसी प्रसग मे उनके अनेक नामो की भी चर्चा की गयी है। जैसे विघ्न विनायक, गजमुखी, एकदन्त, वक्रतुण्ड, लम्बोदर आदि। प्रारभ मे गणेश मानवगृहसूत्र और याज्ञवल्क्य स्मृति मे विनायक के रूप मे उद्धृत हुये। मानवगृहसूत्र (सातवी - पॉचवी शताब्दी ई० पू०)[16] मे विनायको का उल्लेख हुआ है। उनकी सख्या चार है – शालकटक, कुष्माण्ड राजपुत्र, उस्मित और देवयजन। यहॉ पर यह भी वर्णित है कि विनायको द्वारा आविष्ट हो जाने पर लोगो की मन स्थिति एव कार्यकलाप मे विषमता आ जाती है। ये विनायक वस्तुत दुष्ट आत्माये हैं। इनसे ग्रसित होने पर व्यक्ति के कार्यो मे बाधा उत्पन्न होती है। मानवगृहसूत्र मे इन विनायको की शाति हेतु विधान बताया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति [17] (प्रथम - तृतीय शताब्दी) मे गणपति की पूजा का विस्तृत विधान है। इसमे भी विनायको को दुष्टात्माएँ माना गया है। उनसे पीछा छुड़ाना ही उनकी पूजा का प्रमुख ध्येय था।

छठीं-सातवी शताब्दी के लगभग गाणपत्य सम्प्रदाय के अस्तित्व मे आने के बाद गणपति-स्वरूप के विभिन्न पक्ष अस्तित्व मे आये। उनके स्वरूप की कुछ विशिष्टताये पहले से ही आकार लेने लगी थी। गजमुखी, एकदन्त स्वरूप तथा उनके जन्म से सन्दर्भित अनेक

---

13 कुछ विचारको के अनुसार गणेश अनार्यों के देवता हैं, जिन्हे कालान्तर मे ब्राह्मण धर्म मे सम्मिलित कर लिया गया।
इडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, Vol XIX पृ० 14, हॉपकिन्स, इपिक माइथालॉजी, पृ० 206-7

14 मैत्रायणी सहिता 2 9 1 6

16 जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोत्तम, वही, पृ० 167

16 मानवगृह सूत्र, II 14

17 याज्ञवल्क्य स्मृति, 1 271-294

कथानक विभिन्न पुराणो मे रखे गये, जिनका विस्तृत विवेचन गोपीनाथ राव[18] ने अपनी पुस्तक मे किया है।

पुराणो, आगमो तथा शिल्प ग्रन्थो मे गणपति–प्रतिमा को अनेक रूपो मे प्रदर्शित करने का आख्यान किया गया है। गणपति प्रतिमा-विधान का प्राचीनतम विवरण वाराहमिहिर की वृहत्सहिता मे है। जिसके अनुसार, एकदन्ती, गजमुखी और लम्बोदर गणपति को परशु तथा कदमूलधारी प्रदर्शित करना चाहिये।[19] यद्यपि वृहत्सहिता मे वर्णित गणपति प्रतिमा-लक्षण के इस विवरण को विचारको ने क्षेपक माना है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि गुप्तकाल के आरम्भिक चरण मे गणपति की प्रतिमाओ का निर्माण प्रतिमाशास्त्रीय आधार पर होने लगा था।

पुराणों मे गणेश का स्वरूप : प्रतिमा-विज्ञान के सन्दर्भ में

पुराणो मे गणेश के स्वरूप का प्रतिमाशास्त्रीय विवेचन प्राप्त होता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण [20] के अनुसार विनायक गजमुखी और चतुर्भुजी होने चाहिए तथा उनके दाये हाथो मे शूल और अक्षमाला तथा बाये हाथ मे परशु और मोदक पात्र होना चाहिये। उनका बायॉ दॉत नही दिखाई देता। लम्बोदर व बड़े कानो वाले विनायक ने सिहचर्म धारण किया हो। उनके नागयज्ञोपवीत धारण करने का भी उल्लेख मिलता है। मत्स्य पुराण [21] के अनुसार, विनायक गजमुखी, त्रिनेत्रधारी विशाल उदर वाले, चतुर्भुजी हैं। नागयज्ञोपवीत धारण करते हैं। एकदन्ती व विशाल कर्ण वाले हैं। उनके दाये हाथो मे स्वदन्त तथा उत्पला (Utpala) बाये हाथो मे मोदक व परशु है। उनका मुख विशाल तथा स्थूल कन्धे हैं। उनके साथ सिद्धि व बुद्धि के भी होने का उल्लेख है। मूषक वाहन भी वर्णित है।

भविष्यपुराण [22] मे गणेश के कमल पर आसीन स्वरूप का उल्लेख है, जो चतुर्भुजी, त्रिनेत्र युक्त, आभूषणो से सुसज्जित, शीर्ष पर चन्द्रधारण किये, नागयज्ञोपवीत पहने हुये हैं। उनके दाये हाथो मे क्रमश दन्त, अक्षमाला तथा बाये हाथो मे परशु और मोदक हैं। इसी पुराण [23] मे एक अन्य स्थल पर हाथो मे मूसल, पाश और वज्र धारण करने का भी वर्णन है।

---

18 राव, गोपीनाथ, एलीमेन्ट्स ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी, भाग-1 दिल्ली, 1969, पृ०35-36

19 वृहत्सहिता, 58 59,
प्रथमोधिप गजमुख प्रलम्ब जठर कुठारधारी स्यात् ।
एक विषाणो विभ्रन्मूलककन्द सुनीलदलकन्दम्।।

20 विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 3 71 13-16

21 मत्स्य पुराण, आनदाश्रम सस्कृत ग्रन्थावली, पूना, 1907, 260 52-55

22 भविष्य पुराण, वेकटेश्वर प्रेस, बाम्बे, 1910, ब्रह्मपर्व, 29 3-6

23 वही, 30 (इन्द्रोडक्टरी लाइन्स)

लिग पुराण [24] मे गणेश के त्रिशूल और पाश धारण करने का उल्लेख है। वे विभिन्न प्रकार के आभूषणो और वस्त्रो से सुसज्जित हैं। वाराह पुराण मे [25] शिव द्वारा शापित होने के कारण गजमुखी, विशाल उदर तथा नागयज्ञोपवीत धारण किये स्वरूप का वर्णन है। वामनपुराण मे [26] चतुर्भुजी, नारद पुराण [27] मे उनके रक्तवर्णी, त्रिनेत्रधारी तथा चतुर्भुजी स्वरूप का वर्णन है। वे अभय व वरद मुद्रा धारण किये हुये है तथा उनके अन्य दो हाथो मे पाश और अकुश है। अपनी पत्नी के साथ आलिगन मुद्रा मे वर्णित हैं। वे अपने एक हाथ मे कमल का फूल लिये हुए है। इसी पुराण [28] मे अपनी पत्नी के साथ बैठे होने, चारो हाथो मे पाश, अकुश, सुधा पात्र और मोदक धारण करने का उल्लेख है। एक अन्य स्थल पर [29] उनका शक्ति के साथ भी उल्लेख है।

पद्म पुराण [30] गणेश के विशाल शरीर, एकदन्त, विशाल उदर और बड़े नेत्रो का वर्णन करता है। उन्होने कटिसूत्र और काला मृगचर्म धारण किया है। नागयज्ञोपवीत के अतिरिक्त शीर्ष पर चन्द्रमौलि सुशोभित हो रहा है। वाहन मूषक का भी उल्लेख है। वह गजमुखी, सुन्दर कर्ण, द्विभुजी हैं तथा हाथो मे पाश और अकुश धारण किये है। उनके बारह नामो का उल्लेख भी मिलता है।[31] गजपति, विघ्नराज, लम्बतुण्ड, गजानन, हैमातुर, हेरम्ब, एकदन्त, गणाधिप, विनायक, चारुकर्ण, पशुपाल (Pasupal) भवतनय। इन नामो मे कुछ उनके मूर्तिविज्ञानी स्वरूप की अभिव्यक्ति करते हैं। हेरम्ब का गणेश [32] के सदर्भ मे इसी पुराण मे नामोल्लेख है। यह भी कि उनका स्वरूप एकदन्त है। वे मुड़ी शुण्ड व विशाल शरीर वाले हैं। गणेश के लिगस्वरूप [33] का भी उल्लेख इस पुराण मे प्राप्त होता है।

अग्नि पुराण [34] के अनुसार वे एकदन्त, विशाल उदर वाले तथा वक्रतुण्ड हैं। एक हाथ मे स्वदन्त और अन्य मे आयुध धारण किये हुए हैं। इसी पुराण मे एक अन्य स्थल पर गणेश

---

24 लिग पुराण, बिब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, 1885, 105 9-12

25 वाराह पुराण, सपा०, पी एच शास्त्री, कलकत्ता, 1893, 23 17

26 वामन पुराण, वेकटेश्वर प्रेस, बाम्बे, 1929, 28 58-59

27 नारद पुराण, वेकटेश्वर प्रेस, बाम्बे, 1905, 1 66 139

28 वही, 1 65 82

29 वही, 1 68 17

30 पद्म पुराण, सपा०, एम सी आप्टे, आनदाश्रम सस्कृत ग्रन्थावली, 1898-94

31 वही, 61 31-32

32 वही, 63 35-36

33 वही, 63 14

34 अग्निपुराण, आनदाश्रम सस्कृत ग्रन्थावली, पूना, 1900, 71 1-2

के मूर्तिशास्त्रीय स्वरूप का उल्लेख करते हुए वर्णित है [35] कि वे गजमुखी, वक्रतुण्ड, एकदन्त, बड़े उदर वाले, धूम्रवर्णी, चतुर्भुजी हैं। चारो भुजाओ मे मोदक, दण्ड, पाश, अकुश धारण किये है। गणेश के अनेक नामो का उल्लेख भी इस पुराण मे प्राप्त होता है।[36] कुछ नाम उनके प्रतिमा के स्वरूप को उद्घाटित करते हैं, जैसे - वक्रतुण्ड, एकदन्त, महोदर, गजवक्र (Gajavakra), लम्बकुक्षी, धूम्रवर्ण। अग्नि पुराण [37] मे ही एक स्थल पर उल्लेख मिलता है कि मानव शरीर पर गजमुखी, विशाल उदर व विशाल तुण्ड तथा यज्ञोपवीत धारण किये चतुर्भुजी गणेश क्रमश स्वदन्त, परशु, मोदक व उत्पला धारण किये हुये है। गरुड़ पुराण [38] मे गणेश के बारह नाम दिये गये है जिनमे एकदन्त, वक्रतुण्ड, त्रयम्बक (त्रिनेत्र), नीलग्रीवा, लम्बोदर, धूम्रवर्ण, बालचन्द्र, हस्तिमुख जैसे नाम उनके प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप की ओर इगित करते हैं।

स्कन्द पुराण [39] गणेश के पचमुखी, दशभुजी और त्रिनेत्र स्वरूप का वर्णन करता है। पॉच मुखो मे मध्य का मुख श्वेतवर्णी, त्रिनेत्री और चार दन्त युक्त है। उनके दसो हाथो मे पाश, पद्म, परशु, अकुश, दन्त, अक्षमाल, लगल (Langala) मूसल, वरद, मुद्रा और मोदक पात्र हैं। वे विशाल उदर वाले हैं तथा मेखल धारण किये हुए हैं। योगासन मुद्रा मे बैठे हैं। शीर्ष पर पतला चन्द्रमा शोभित है। इसी पुराण [40] में गणेश के त्रिनेत्री, एकदन्ती, विशाल उदर वाले व चतुर्भुजी स्वरूप को वर्णित किया गया है। वे अपने हाथो मे पाश, अंकुश, दन्त और मोदक पात्र धारण किये है। एक अन्य स्थल पर [41] उन्हे स्थूल व छोटे (बौने) शरीर वाला, नाग-यज्ञोपवीत धारण किये हुए वर्णित किया गया है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण [42] मे उनके आठ नामो मे से कुछ नाम प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप, जैसे, लम्बोदर, एकदन्त, शूर्पकर्ण का उल्लेख करते हैं। शिवपुराण [43] उनके रक्त वर्ण और कमल पर आसीन स्वरूप का उल्लेख करता है। उनका शरीर विशाल, आभूषणो से सुसज्जित, चतुर्भुज है। उन्होने हाथो मे पाश, अकुश, दन्त और मोदक धारण कर रखा है।

---

35 अग्निपुराण, 301 4-5

36 वही, 7,23,26

37 वही 50 23-36

38 गरुड़ पुराण, वेकटेश्वर प्रेस, बाम्बे, 1906,129,25,26

39 स्कन्द पुराण, 1 1 11 5-11

40 वही, 1 1 11-18

41 वही, III II 12 26-28

42 ब्रह्मवैवर्त पुराण,गणपति खण्ड, 13 5

43 शिव पुराण, पचानन तर्करत्न, बगवासी प्रेस, कलकत्ता 1910, कैलाश सहिता - 7 14-16

भागवत पुराण मे [44] गणेश के विशाल उदर, लम्बी भुजाएँ, स्वस्थ व सुन्दर व्यक्तित्व, त्रिनेत्र, रक्त वर्ण तथा मध्यान्ह के सूर्य के सदृश प्रकाशवान स्वरूप का वर्णन है।

गणेश पुराण मे गणेश के शारीरिक सौन्दर्य, स्वरूप और प्रतिमाशास्त्रीय लक्षणो का [45] उल्लेख मिलता है। उनके सौन्दर्य व स्वरूप का वर्णन करते हुये कहा गया है कि उँगलियो के नख कमल के सदृश लाल है, शीर्ष पर सुन्दर चन्द्रमा सुसज्जित है, सूर्य की किरणो के सदृश रक्त वस्त्र धारण किया है। वे चतुर्भुज हैं तथा हाथो मे उन्होने खड्ग, खेटक (Khetak), धनुष और शक्ति धारण किया है। वे एकदन्त हैं। उनके नेत्र सुन्दर है। सिर पर मुकुट है। इस पुराण मे [46] अन्यत्र चतुर्भुजी स्वरूप का ही वर्णन है। यहॉ पर उनके हाथो मे पाश, अकुश, परशु और पद्म धारण करने का उल्लेख भी किया गया है। उनके शारीरिक सौन्दर्य, वस्त्र व आभूषणो का वर्णन भी है। गणेश पुराण मे ही एक अन्य स्थल पर उनके अलग प्रकार के प्रतिमास्वरूप का वर्णन मिलता है [47] जिसमे उनके पचमुख, दशमुख होने और सिर पर सुन्दर चन्द्रमा अकित होने का चित्रण है। उन्होने सूर्य का आभूषण तथा मृगचर्म धारण किया है। चारो हाथो मे आयुध हैं, किन्तु आयुधो के नाम का उल्लेख नही है।

गणेश के स्वरूप का वर्णन करते हुये इस पुराण [48] मे कहा गया है कि वे एकदन्त तथा विशाल शरीर वाले है, जो स्वर्ण की भॉति देदीप्यमान है। विशाल उदर तथा अग्नि के सदृश दमकते विशाल नेत्रो वाले हैं। मूषक पर सवार हैं। गणो द्वारा घिरे हैं, जिनके हाथो मे चमर है। गणेश गजमुखी व नागयज्ञोपवीत युक्त हैं। एक अन्य स्थल पर [49] उनके चारो हाथो मे पाश, अकुश, माला और दन्त होने तथा एकदन्ती, चन्द्रमौलि, उदर के चारो ओर सर्प धारण किये स्वरूप का वर्णन मिलता है।[50] गणेश पुराण के ही एक अन्य विवेचन अनुसार [51] वह गजमुखी, दशमुखी, व कर्ण आभूषण युक्त हैं। सूर्य के सदृश देदीप्यमान है। सिद्धि-बुद्धि युक्त हैं तथा अपने हाथो मे मुक्ता माला और परशु धारण किये हुये हैं। उनके उदर पर सर्प विद्यमान है।

---

44 भागवत पुराण, सपा० - टी० के० कृष्णमाचारी, निर्णयसागर प्रेस, बाम्बे, 1916, 35 8

45 गणेश पुराण, 1 12 33-38

46 वही, 1 40 33-38

47 वही, 1 69 14-16

48 वही, 1 69 14-16

49 वही, 1 82 26-28

50 वही, 1 87 31-35, 1 90 7-10

51 वही, 2 5 29-31

इस पुराण मे उनके वाहन के रूप मे मयूर का उल्लेख किया गया है।[52]

गणेश के स्वरूप का विवेचन करते हुये आगे कहा गया है [53] कि वे एकदन्ती, द्विदन्ती, त्रिनेत्रधारी, दशमुखी, विशाल कर्ण वाले व सर्प का आभूषण धारण करने वाले हैं। जब वे बालक रूप से विशालकाय रूप धारण करते है उस समय के स्वरूप का भी वर्णन प्राप्त होता है।[54] उस समय वे सिहारूढ़ होकर अपने हाथो मे धनुष, बाण, खड्ग और परशु धारण करते है। उस समय उनके साथ सिद्धि व बुद्धि भी थी। यह पुराण [55] गणेश के चतुर्भुजी, गजमुखी, त्रिनेत्र, विशाल कर्णवाले स्वरूप का उल्लेख करता है। उनके सभी अग अत्यत सुन्दर हैं तथा आभूषणो से सुसज्जित हैं। इसमे [56] गणेश की प्रतिमा का बहुत ही दिलचस्प स्वरूप प्राप्त होता है, जहॉ वे दशभुजा युक्त हैं, विविध प्रकार के आभूषण धारण किये हैं, उनके तीन मुख है, मध्य का मुख विष्णु, दायाँ मुख शिव और बायॉ मुख ब्रह्मा का है। वे सर्प के ऊपर पद्मासन मुद्रा मे बैठे हैं।

गणेश पुराण मे [57] यह वर्णन मिलता है कि गणेश का स्वरूप युग के अनुसार परिवर्तित हो जाता है। सतयुग मे विनायक दशमुखी होते हैं, सिहारूढ़ होते हैं। त्रेतायुग मे मयूरेश्वर के नाम से जाने जाते हैं। इस युग मे वे छ भुजाधारी व मयूर पर आरूढ़ होते हैं। द्वापर युग मे वे गजानन के रूप में जाने जाते हैं, जिनका स्वरूप चतुर्भुज, रक्तवर्ण व वाहन मूषक होता है। कलियुग मे उन्हे धूम्रकेतु के नाम से जाना जाता है, वे द्विभुजी और धूम्रवर्ण के हैं, वाहन अश्व है।

गणेश पुराण के अतिरिक्त मुद्गल पुराण मे भी गणेश के स्वरूप से सदर्भित विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। यह पुराण गणेश के नौ विभिन्न स्वरूपो का विवरण देता है, जिनमे अधिकाश प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप ध्यान से जुड़े हुये हैं। मुद्गल पुराण [58] ने गणेश को चतुर्भुजी, विशाल शरीर, गजमुखी, विशाल उदर वाला बताया है जो मुकुट, कर्ण आभूषण,

---

52 गणेश पुराण, 2 17 25-28

53 वही, 40 23-26

54 वही, 2 63 7-9

55 वही, 2 72 29

56 वही, 2 80 5-7

57 वही, 2 1 18-21

58 मुद्गल पुराण, 1 4 16-18

गले मे सुन्दर आभूषण, कमर मे सर्प लपेटे व नूपुर पहने हैं। उन्होने हृदय पर चितामणि की माला धारण की है तथा सिद्धि-बुद्धि से युक्त हैं। मुद्गल पुराण मे भी गणेश का त्रिनेत्र,[59] चारो भुजाओ मे पाश, अकुश, दन्त और अभयमुद्रा युक्त [60] स्वरूप प्राप्त होता है।

मुद्गल पुराण के अन्य प्रतिमाशास्त्रीय विवेचन के अन्तर्गत वाहन मूषक [61] अन्यत्र सिह [62] का वर्णन है। गणेश के स्वरूप को विवेचित करते हुये एक स्थल पर उन्हे मनुष्य व गज के शरीर का मिला-जुला रूप बताया गया है। [63]

मुद्गल पुराण मे गणेश को हेरम्ब, सूर्यकर्ण, एकदन्त, ढुढि कहा गया है। उन्हे सिद्धि और बुद्धि का पति भी कहा गया है।[64]

आगम ग्रन्थों में गणेश का प्रतिमास्वरूप

पुराणो मे ही नही अपितु आगम ग्रन्थो मे भी गणेश के मूर्तिविज्ञानी स्वरूप का विवेचन है। अजितागम गणेश के दो प्रतिमास्वरूपो का वर्णन करता है। सर्वप्रथम [65] वह गणेश को उस विनायक के रूप मे विवेचित करता है जो गजमुखी, त्रिनेत्री, करड-मुकुट धारण किये हुये है। हाथ मे टक (कुल्हाड़ी) पाश, दन्त और लड्डू हैं। वे एकदन्त, बड़े होठो वाले, नागयज्ञोपवीत, रक्त वस्त्र धारण करते हैं। दूसरे स्वरूप का विवेचन करते हुये यह आगम वीरभद्र गणेश [66] का उल्लेख करता है। वे चतुर्भुजी, त्रिनेत्री हैं, लोहे का पाश हाथ मे पकड़े हुये है।

अशुभेदागम [67] मे भी गणेश के स्वरूप का विवेचन विनायक के रूप मे हुआ है, जो कमल पर आसीन हैं तथा अपने दाये हाथो मे स्वदन्त और अकुश, बाये हाथो मे कपित्थ और

---

59 मुद्गल पुराण, 1 6 29

60 वही, 1 7 48-50

61 वही, 1 21 33-35

62 वही, 1 32 30-30, 1 51 17-19

63 वही, 2 53 12-13

64 वही, 7 8 13-17

65 अजितागम, क्रियासिद् 36 302-303

66 वही, 36 338-336

67 अशुभेदागम्, टी० ए० गोपीनात राव, से उद्धृत, एलिमेन्ट्स ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी, दिल्ली 1961 Vol 1968 भाग-II परिशिष्ट, पृ० 2-3

मोदक लिये हुये हैं। उत्तरकामिकागम [68] मे गणेश को गणो के नेता के रूप मे विवेचित किया गया है। वे गजमुखी, महोदर, नागयज्ञोपवीत युक्त हैं। परशु और दन्त दाये हाथो मे तथा मोदक और अक्षमाल बाये हाथो मे हैं। उनकी पत्नी उनके दाहिनी ओर बैठी हैं तथा वे पद्मासन मुद्रा मे है। गणेश यहॉ श्यामवर्ण के तथा उनके वस्त्र रक्त वर्ण के बताये गये हैं।

सुभेदागम [69] मे गणेश को कमल पर आसीन, करड-मुकुट और सम्पूर्ण आभूषण धारण किये हुये तथा दाये हाथो मे फाल और अकुश तथा बाये हाथो मे स्वदन्त और मोदक धारण किये हुये विवेचित किया गया है।

पुराण व आगमग्रन्थो के अतिरिक्त अन्य साहित्यिक तथा शिल्प-ग्रन्थो मे भी गणेश के प्रतिमास्वरूप का विवेचन मिलता है। अमरकोश [70] मे उनके विभिन्न नाम, उनके स्वरूप को व्याखयायित करते हैं। जैसे एकदन्त, लम्बोदर आदि नाम उनके स्वरूप से सबधित विवेचना प्रस्तुत करते हैं।

अपराजितपृच्छा [71] मे गणेश को गजमुखी, त्रिनेत्रधारी, एकदन्त, चतुर्भुजी व मानवीय शरीर युक्त, जिसने नागयज्ञोपवीत धारण किया है, दिखाया गया है। वे मूषक पर सवार हैं। स्वदत, परशु, उत्पला और मोदक हाथो मे लिये हुये हैं।

रूपमण्डन मे गणेश के हेरम्ब और वक्रतुण्ड स्वरूप की विवेचना की गयी है। यह ग्रन्थ [72] गणेश के गजमुखी तथा हाथो मे दन्त, परशु, पद्म और मोदक धारण किये हुये, मूषक पर सवार स्वरूप की विवेचना करता है। रूपमण्डन मे हेरम्ब–गणेश [73] के स्वरूप का उल्लेख करते हुये उन्हे पचमुखी, त्रिनेत्री व मूषक वाहन के साथ, अष्टभुजी गणेश की विवेचना की गयी है जो क्रमश वरदमुद्रा, अकुश, दन्त, परशु व अभयमुद्रा तथा बायें हाथ मे कमल, सार, अक्षमाल, पाश और गदा लिये हुये है। वक्रतुण्ड [74] स्वरूप मे उन्हे महोदर, त्रिनेत्री व हाथो मे

---

68 उत्तरकामिकागम, टी० ए० गोपीनाथ से उद्धृत, वही

69 सुप्रभेदागम, टी० ए० गोपीनाथ से उद्धृत, वही

70 अमरकोश, I 11 38

71 अपराजितपृच्छा, 212, 35 37

72 रूपमण्डन, सपा०, बलराम श्रीवास्तव, कलकत्ता, 1936, 5 15

73 वही, 5 16-17

74 वही, 5 18

पाश, अकुश, वरद और अभयमुद्राएँ धारण किये हुये स्वरूप का निर्धारित किया है।

देवतामूर्तिप्रकरण नामक ग्रन्थ मे गणेश के प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप का [75] हेरम्ब [76] गजानन [77] व वक्रतुण्ड,[78] उचिछष्ट गणपति,[79] क्षिप्रगणपति [80] का स्वरूप व्याख्यायित किया गया है। हेरम्ब को वर्मिलयन -लालरग व अष्टभुजी बताया है।[81] गजानन को रक्तवर्ण का बताया गया है।

शिल्परत्न मे बीजगणपति के पॉच अलग-अलग [82] स्वरूपो व प्रतिमाशास्त्रीय रूप का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त हेरम्ब, गणपति [83] बालगणपति,[84] शक्तिगणपति,[85] विनायक,[86] का स्वरूप भी प्राप्त होता है।

तत्र साहित्य मे भी गणपति के स्वरूप का वृहद् विवेचन मिलता है। शारदातिलक-तत्र गणेश [87] का रक्तवर्ण, त्रिनेत्र, विशाल उदर युक्त स्वरूप बताता है। उनके कमल के सदृश हाथो मे दन्त, पाश, अकुश और मोदक हैं। उन्होने शुण्ड के शीर्ष से बीजपूरक पकडा है। उनके वस्त्र लाल रग के हैं तथा उन्होने सर्प का आभूषण धारण किया है। शारदातिलक मे भी

---

75 देवता मूर्ति प्रकरण (8 21) डॉ० निर्मला यादव, गणेश इन इण्डियन आर्ट एण्ड लिटरेचर से उद्धृत, पृ० 17

76 वही, 8 22-23

77 वही, 8 24

78 वही, 8 25 उद्धृत डॉ० निर्मल यादव

79 वही, 8 26 उद्धृत, वही

80 वही, 8 28 उद्धृत, वही

81 वही, 8 27

82 शिल्परत्न, श्रीकुमार प्रणीत, त्रिवेन्द्रम, 1922
   (i) उत्तर भाग, 25 52
   (ii) वही, 25 53-54
   (iii) वही, 25 55
   (iv) वही, 25 56
   (v) वही, 25 57

83 वही, 25 58-60

84 वही, 25 61-63

85 वही, 25 74

86 शिल्परत्न, उद्धृत, टी० ए० गोपीनात राव, वही, पृ० 4-5

87 शारदा तिलकरत्न, 13-4, सस्कृत सीरीज तथा तात्रिक टेक्स्ट, काशी, 1934

महागणपति [88], वीरगणपति [89], शक्तिगणपति,[90] हेरम्ब [91] का प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप प्राप्त होता है।

प्रपचसार [92] विघ्नेश-गणेश के स्वरूप के सन्दर्भ मे गजशीर्ष, विशाल उदर, दसभुज रूप प्रदर्शित करता है, जिसके अनुसार गणेश अपनी पत्नी के साथ आलिगन मुद्रा मे विराजमान है। वे अपने हाथो मे एक कमल लिये हुये हैं व सम्पूर्ण आभूषण धारण किये हुये है। प्रपचसार मे एक स्थल पर गणेश का विघ्नराजा [93] के रूप मे रक्तवर्णी, महोदर, त्रिनेत्र, लघुकाय, शुण्ड मे बीजपूरक, नागयज्ञोपवीत, चतुर्भुजी, पद्मासन मुद्रा मे विराजमान रूप अकित है।

तत्रसार मे भी गणेश के गणपति,[94] महागणपति,[95] हेरम्ब,[96] हरिद्रागणपति,[97] उच्छिष्ट गणपति,[98] आदि विविध स्वरूपो का उल्लेख मिलता है।

इसके अतिरिक्त नित्योत्सव, मन्त्रमहोदधि, शुक्रनीति, मत्ररत्नाकर, क्रिया-क्रमद्योति, श्री तत्वनिधि आदि मे भी गणपति के विभिन्न प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूपो का वर्णन है।

प्रतिमा लक्षणो से सम्बद्ध अधिकतर ग्रन्थो मे गणपति की चतुर्भुज, षडभुज, दशभुज, अष्टादशभुज आदि अनेक भुजाओ का वर्णन मिलता है। इनमे चतुर्भुजी मूर्तियाँ अधिक लोकप्रिय हुई। किन्तु ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि कुछ स्थलो पर द्विभुजी गणेश का स्वरूप भी प्राप्त होता है। साहित्य मे द्विभुजी गणपति का उल्लेख दो स्थानो पर हुआ है–1 वृहत्सहिता,[99] जिसके सन्दर्भ मे पहले ही कहा जा चुका है कि यह श्लोक प्रक्षिप्त है। किन्तु

---

88 शारदा तिलकरत्न, सस्कृत सीरीज तथा तात्रिक टेक्स्ट, 13 35-38

89 वही, 13 70

90 वही, 13 77-79

91 वही, 13 107

92 प्रपचसार, 16 8-9, शकराचार्य प्रणीत, पद्मपाद की विवरण टीका सहित, 1936

93 वही, 16 49

94 पार्ल प्रतापादित्य, हिन्दू रिलिजन एण्ड आइक्नोग्राफी एकार्डिग टू द तन्त्रसार, लॉस एजिल्स, विचित्र प्रेस, 1981, पृ० 125

95 वही, पृ० 126

96 वही, पृ० 126

97 वही, पृ० 127

98 वही, पृ० 128

99 वृहत्सहिता, 58 59

निश्चित रूप से यह गणेश के स्वरूप के विकास के प्रारभिक काल को अकित करता है। इस श्लोक मे उन्हे परशु व मूलक धारण किये हुये वर्णित किया गया है जो उनके द्विभुजी स्वरूप की ओर सकेत करता है। 2 गणेश पुराण मे भी कलिपुज्य गणपति का वर्णन करते हुये कहा गया है कि वे धूम्रवर्णी व द्विहस्तवान हैं।[100] विभिन्न पुराणो मे गणेश के स्वरूप के विवरणो से स्पष्ट होता कि देवमण्डल मे जैसे-जैसे गणेश का स्थान उच्च होने लगा, वैसे-वैसे उन्हे अधिक शक्तिवान व अन्य देवो के समकक्ष या उनसे उच्च दिखाने के लिये उनकी भुजाओ मे भी वृद्धि होती गयी। इन भुजाओ मे विभिन्न स्थलो पर वे विभिन्न वस्तुये भी धारण किये हुये हैं। जैसे - अनार, कमल, मण्डल, बीज, गुलाब, गन्ना, धान की बालियॉ, धनुष, फूल, बास की लकड़ी, नारियल, पायस का प्याला, माला, तलवार, ढाल, कुल्हाड़ी, शूल आदि।[101] राव मोहन का मत है कि इस प्रकार की विशिष्टताओ का वर्णन भारतीय मूर्तिकला मे दो उद्देश्य की पूर्ति करता है। पहला यह कि वे एक देव को दूसरे से विभेदित करते हैं। दूसरे, इन विशिष्टताओ को देवी या देवताओ से जोड़कर उनके विशिष्ट आयामो को महत्व देने का प्रयास भी करते हैं। कभी-कभी ये चिन्ह किसी विशेष देवी-देवता से सम्बधित पौराणिक आख्यान को भी इगित करते हैं।[102] यद्यपि कि गणेश के सदर्भ मे उनका हाथी के सदृश सिर का होना ही पर्याप्त है जो उनको अन्य देवताओ से विभेदित कर उन्हे विशिष्टता प्रदान करता है।[103]

प्रतिमा लक्षण से सम्बधित ग्रन्थो मे गणेश की कुछ विशिष्टताओ का भी उल्लेख मिलता है - जैसे उनके तिरछे नेत्र, अभग मुद्रा, सभग मुद्रा, शेर(चीते) की खाल का वस्त्र, सर्प यज्ञोपवीत आदि। इन ग्रथो मे गणेश के विभिन्न स्वरूप जैसे बीज गणपति, बालगणपति, तरुण गणपति, वीर विघ्नेश, शक्ति गणपति, लक्ष्मी गणेश, महागणेश, हरिद्रा गणपति, नृत्तगणपति, उच्छिष्ट गणपति आदि प्राप्त होते हैं। इनमे शक्ति, उन्मत्त तथा उच्छिष्ट गणपति वामाचार तात्रिक पूजा से जुड़े हैं।[104]

साहित्य मे एक लम्बे विकासक्रम के पश्चात पूर्व मध्यकाल तक गणेश का स्वरूप पूर्ण विकसित रूप मे उभर कर आया। गणेश को महत्वपूर्ण देव के रूप मे स्थापित करने मे उनके

---

100 गणेश पुराण, 2 85115
गजानन इतिख्यातौ धूम्रवर्ण कलौयुगे।
धूमकेतुरिति ख्यातौ द्विभुज सर्वदैत्यहा।।
कलौ तु धूम्रवर्णो सावचश्वारुढ़ौद्विहस्तवान्।।

101 यादव, निर्मला, वही, पृ० 210, बैनर्जी जे०एन०, डेवलपमेट ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी, पृ० 256

102 राव, गोपीनाथ वही, पृ० 55

103 कृष्णन, युवराज, वही, पृ० 91

104 बैनर्जी, जे०एन०, वही, पृ० 257

स्वतत्र सम्प्रदाय गाणपत्य का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इतना ही नही, गाणपत्य सम्प्रदाय के अनुयायी गणेश को महत्वपूर्ण वैदिक देवो के समकक्ष रखने तथा कई बार उनसे भी ऊपर स्थापित करने मे सफल हुये हैं।

गणेश के आयुध, वस्त्र, आभूषण, भुजायें, वाहन एवं पार्षद

प्रत्येक देवी-देवता के आकार, वेशभूषा, आयुध तथा वाहन भिन्न-भिन्न होते हैं और ये सभी उनके व्यक्तित्व तथा कार्य के प्रतीक के रूप मे होते है। यही वस्तुएँ देवी-देवताओ की विशिष्टता को भी दर्शाती है। गणेश पुराण मे गणेश के विविध रूपो का वर्णन हुआ है। कही वे बालगणपति, तरुण गणपति, भक्ति विघ्नेश्वर, लक्ष्मी गणपति, प्रसन्न गणपति, ध्वज गणपति, हरिद्रा गणपति, एकदन्त केवल गणपति के रूपो मे वर्णित हैं तो कही मोदक प्रिय नृत्तगणपति, मूषक वाहन गणपति के रूप मे। कही वे द्विभुजी,[105] चतुर्भुजी,[106] षड्भुजी,[107] दशभुजी [108] रूप मे दिखाये गये है तो कही उनके वर्ण का चित्रण अरुणोदयकालीन सूर्य से किया गया है, कही वे शारदीय चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण वाले स्वरूप का प्रतिबिम्बन करते हैं। कही स्वर्ण पिङ्गल हैं तो कही श्वेत और रक्त वर्ण वाले हैं। गणेश पुराण मे उनके इन विभिन्न रूपो का अकन हुआ है। गणेश के प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप के विश्लेषण हेतु अनिवार्य है कि साहित्य मे वर्णित गणेश की भुजाओ, आयुधो, वस्त्रो, आभूषणो, वाहनो तथा पार्षद देवताओ का विस्तृत आकलन किया जाय, क्योकि भुजाये व आयुध शक्ति के, वस्त्र मूल गुण के, अलकार महत्व के तथा पार्षद देवमण्डल मे उस देवता के स्तर के द्योतक होते हैं।[109] यहॉ पर गणेश के इन विभिन्न रूपो का विश्लेषण गणेश पुराण को केन्द्र मे रखकर किया गया है।

गणेश पुराण मे एक ओर गणेश के अनादि, अनत, परब्रह्म स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे प्रकृति स्वरूप हैं, महत्वरूप हैं, पृथ्वी और जल के रूप मे अभिव्यक्त है, दिगीशादिरूप मे प्रकट हैं। असत् और सत् दोनो ही उनके स्वरूप हैं। वे जगत के कारण

---

105 नारद पुराण, 3 66 139
पाशाकुशाभयवरान् दधान कजहस्तया।
पत्न्याश्लिष्ट रक्ततनु त्रिनेत्र गणप भजेत् ।।

106 गणेश पुराण, 2 85 51

107 वही, 2 81 33 षडभुज चद्रसुभगम लोचनत्रय भूषिताम्

108 वही, 1 44 26-27 पचवक्त्रो दशभुजो ललाटेन्दु शशीप्रभ

109 मिश्रा, इन्दुमती, वही, पृ० 343

है तथा सदा विश्वरूप सर्वत्र व्याप्त हैं।[110] दूसरी ओर उनके सगुण साकार स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि मोतियो और रत्नो से उनका मुकुट जटित है, सम्पूर्ण शरीर लाल चन्दन से चर्चित है। उनके मस्तक पर सिन्दूर शोभित है। गले मे मोतियो की माला है। वक्ष-स्थल पर सर्प-यज्ञोपवीत है। बाहु मे बहुमूल्य रत्नजड़ित बाजूबद है। अगुलियो मे मरकतमणि जड़ित अगूठी है। लम्बे से उदर की नाभि चारो ओर से सर्पो द्वारा वेष्टित है। रत्न जटित करधनी है। स्वर्ण सूत्र - लसिता लाल वस्त्र है, भाल पर चन्द्रमा है, दॉत सुन्दर हैं।[111] पद्मपुराण मे उनके एकदन्त एव महाकाय - विशाल शरीर का वर्णन हुआ है। उनका रूप तप्त काचन की प्रभा के समान प्रकाशित माना गया है।[112] शरीर पर नवकुकुम का अङ्गराज शोभित है।[113] उनका वस्त्र रक्त वर्ण का तथा कचुक पीले रग का कहा गया है। वे किरीट - मुकुट से जाज्वल्यमान हैं।[114] गणेश पुराण मे उनके वस्त्रो को पीले रग का और रेशमी बताया गया है।[115] ब्रह्मवैवर्तपुराण मे उपलब्ध वर्णन के अनुसार, उनके शुद्ध वस्त्र अग्नि से प्राप्त हैं।[116]

---

110 गणेश पुराण, 1 13 12

प्रधान स्वरूप महत्तत्वरूप धरावारिरूप दिगीशादिरूपम् ।

असत्सत्स्वरूप जगद्धेतुभूत सदा विश्वरूप गणेश नत स्म।।

111 वही, 1 14 21-25

मुकुटेन विराजत मुक्ता रत्न युजा शुभम् ।

रक्त चदन लिप्ताग सिन्दूरारुज मुस्तकम् ।।

मुक्ता दाम लसत् कठ सर्प यज्ञोपवीतिनम् ।

अनर्घ्यं रत्न धाटित बाहु-भूषण भूषितम् ।।

स्फुरन् मरकत भ्राज्दगुलीयक शोभितम् ।

महाहि वेष्टित वृहन्नाभि शोभिमहोदरम् ।।

विचित्र रत्न खचित कसूित्र विराजितम् ।

सुवर्ण सूत्र विलसद्रक्तवस्त्रम् समाकृतम् ।

भालचद्र लसद्वत शोभाराजन कर परम् ।।

एव ध्यायति तस्मिस्तु पुनरेव नभोवच ।।

112 पद्म पुराण, सृष्टि खण्ड, 16 2 एकदन्त महाकाय तप्त काचनसन्निभम्

113 शारदातिलक 13 135 कृताङ्गराग नवकुकुमन

114 उत्तरकामिकागम्, पञ्चचत्वारिशत्तम् पटल — 13 2

रक्त वस्त्रधर वाम श्यामाय कनकप्रभम् ।

पीत कचुक सछन्न किरीट मुकुटोज्वलम्।।

115 गणेश पुराण, 1 20 32 पीत कौशेय वसनो हाटकाङगदभूषण

116 ब्रह्मवैवर्त पुराण, गणपति खण्ड, 13 9 वह्नि शुद्ध च वसन ददौ तस्मै हुताशन

गणेश पुराणानुसार उनके अग पर शोभित उत्तरीय को अनेक तारागणो से युक्त व्योम की शोभा से भी श्रेष्ठतर कहा गया है।[117]

गणेश के चरणो के सन्दर्भ मे एक सुन्दर बिम्ब गणेश पुराण मे दिया गया है कि आपके चरणो मे मन लगाकर मनुष्य विघ्न और पीडा से उसी तरह सतप्त नही होता, जिस तरह प्रकाशित सूर्य - बिम्ब मे स्थित प्राणी कभी अधकार से ग्रस्त नही होता।[118] गणेश के चरणो मे शोभित मञ्जीर को पद्मालया लक्ष्मी से प्राप्त किया।[119] उनके चरण बजते हुए नूपुरो से सदा शोभित रहते हैं।[120] उनके चरणो और उनमे शोभित तथा बजते हुए नूपुरो का वर्णन करना बहुत कठिन है, क्योकि वे अनत है।[121] चरणो मे ध्वजा, अकुश, ऊर्ध्वरेखा, कमल आदि चिन्हित रहते हैं। भगवती पार्वती को उपर्युक्त चिन्हो से युक्त गणेश के चरण-कमलो के दर्शन हुये।[122] स्पष्ट है कि गणेश के चरणो मे अलकृत आभूषणो की गणेश पुराण व अन्य पुराणो मे भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुयी है। गुरु ज्ञानेश्वर ने उनके चरणो की अमूर्त व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होने दोनो चरणो को 'अकार' बताया है, विशाल उदर को 'उकार' तथा मस्तक के महामण्डल को 'मकार' बताया है। अकार, उकार तथा मकार के योग मे 'ॐकार' सिद्ध होता है,[123] जो समस्त संसार मे समाविष्ट है ।

गणेश के चरणो के बाद उनके उदर व कटिभाग का सुन्दर वर्णन है। उदर की नाभि के चारो ओर सर्प आवृत्त है तथा विचित्र रत्नजटिल कटिसूत्र से उनकी शोभा समलकृत है।[124] उनका कटिसूत्र स्वर्ण निर्मित है।[125] उनके उदर मे व्याल आवृत है।[126] गणेश द्वारा अहिवेष्टन

---

117 गणेश पुराण, 2 12 37 'नाना ताराकित व्योमकान्तिजिदुत्तरीयकम् ।'

118 वही, 1 13 13

त्वदीये मन स्थापयेदाङ्घ्रयुग्मे जनो विघ्नसघान्न पीडा लभेत् ।

लसत्सूर्यबिम्बे विशाले स्थितोऽय जनो ध्वान्तबाधा कथ वा लभेत् ।।

119 ब्रह्मवैवर्त पुराण, गणपति खण्ड, 13 10 'मजीर चापि केयूर ददौ पद्मालया मुने।'

120 गणेश पुराण, 1 46 23 'किकिणी गणराणितस्तव चरण '

121 वही, 1 79 27 'योऽनन्तशीर्षानन्त श्रीसन्त चरण स्वराट्'

122 वही, 1 81 34 'ध्वजाकुशोर्ध्वरेखाब्ज चिन्हित पादपकजम् ।'

123 ज्ञानेश्वरी, 1 19-20

124 गणेश पुराण, 1 14 23 24

महाहिवेष्टित बृहन्नाताभिशोभित महोदरम् ।

विचित्ररत्न खचित कटि सूत्र विराजितम् ।।

125 वही, 1 20 33 कटिसूत्रम् काञ्चनीयम्

126 वही, 2 78 31 'बालबद्धोदर विभूम्

तथा लम्बोदर होने के अनेक प्रसग विभिन्न पुराणो मे प्राप्त होते हैं। जैसे ब्रह्मपुराण मे उन्हे शिव द्वारा 'लम्बोदर' नाम दिये जाने का वर्णन मिलता है।[127] पद्मपुराण मे व्यास ने लम्बोदर तथा विशाल रूप मे उनकी स्तुति की है।[128] गणेश पुराण मे एक स्थल पर वर्णित है कि उनका वक्षस्थल स्थूल एव विशाल है [129] तथा उस पर नाग यज्ञोपवीत शोभित होता है।[130] उनके कण्ठ मे मोतियो की माला सुसज्जित है।[131] चन्द्रमा से प्राप्त मणि की माला को भी धारण करने का उल्लेख मिलता है।[132] त्रिपुरासुर वध करने पर शिव के घोर तप के बाद पचमुख गणेश ने उन्हे दर्शन दिया, जिनकी दस भुजाये, ललाट मे चन्द्र विद्यमान था। वह चन्द्रमा के समान प्रभायुक्त थे, मुण्डो की माला धारण किये हुए थे, सर्पो के गहने थे तथा मुकुट व बाजूबद से भूषित थे।[133]

शिवपुराण मे अनत चरण, अनत सिर, अनत कर (हाथ) होने का वर्णन है, जो उपयुक्त आभरणो, अलकारो, आयुधो और मुद्राओ से विभूषित हैं।[134] उनकी भुजाओ के सन्दर्भ मे भी अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। गणेश पुराण मे उनके रत्न सयुक्त मुद्रिका का उल्लेख है [135] तो एक अन्य स्थल पर मरकतजटित अगूठी का वर्णन है।[136] उनके आभूषण बहुमूल्य रत्नो से जड़ित हैं, ऐसा गणेश पुराण मे वर्णन मिलता है।[137] सोने के अङ्गद, बाजूबद का भी वर्णन मिलता है।[138] गणेश के शुण्ड का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह ऐरावत आदि दिक्पालो के मन मे भी भय पैदा कर देती है।[139] शुण्ड से विनोद कर ब्रह्मा आदि के मन

---

127 ब्रह्म पुराण, 114 11
    पपौस्तन मातुरथ्यापि तृप्तो यो भातृ मत्सर्य कषाय बुद्धि ।
    लम्बोदरस्त्व भव विघ्नराज लम्बोदर नाम चकार शम्भु ।।

128 पद्म पुराण, सृष्टि खण्ड, 66 2 'लम्बोदर विशालाक्ष वन्देऽह गजनायकम् ।'

129 गणेश पुराण, 2 81 33 'स्थूल वक्ष समीश्वरम् '

130 वही, 1 14 22 'सर्पयज्ञोपवीतिनम् '

131 वही, 1 14 22 'मुक्तादामलसत्कण्ठम् '

132 ब्रह्मवैवर्त पुराण 13 8 'माणिक्यमाला चन्द्रश्च'

133 गणेश पुराण, 1 44 25 26 ततस्तस्य मुखोम्भोजान्निर्गतस्तु पुमान् पर ।

134 शिव पुराण, कैलाशसहिता, 7 16 'पाशाङ्कुशेष्टदशनान् दधान करपङ्कजै '

135 गणेश पुराण, 1 20 33 मुद्रिका रत्नसयुताम्

136 वही, 1 14 23 स्फुरन्मरकत भ्राजदङ्गुलीयक शोभितम्

137 वही, 1 14 32 अनर्घ्यरत्नघटित बाहुभूषण भूषितम्

138 वही, 1 20 32 हाटकाङ्गदभूषण

139 वही, 1 12 38 ऐरावतादिदिक्पाल भय कारिसुपुष्करम्

में आनंद का सृजन करते हैं।[140] उनकी शुण्ड कमल माला से अलंकृत कही गयी है। इन्द्र के तप से प्रसन्न हो गणेश ने अपना स्वरूप प्रकट किया। उनका शुण्ड-दण्ड बहुत मोटा और लम्बा था। उनके नेत्र कमल के समान थे।[141]

गणेश को वक्रतुण्ड भी कहा जाता है। 'वक्र' मायारूप है और 'तुण्ड' ब्रह्मवाचक। उनके 'वक्रतुण्ड' कहे जाने को मुद्गल पुराण में दार्शनिक रूप से विवेचित किया गया है। मायाजाल सुख मोहयुक्त है, अतः वह 'वक्र' कहा जाता है। 'तुण्ड' शब्द ब्रह्म का बोधक है। इन दोनों का योग होने से ही गणेश 'वक्रतुण्ड' कहलाते हैं। उनके कण्ठ के नीचे का भाग ही मायायुक्त 'वक्र' है और तुण्ड (मस्तक) ब्रह्म का प्रतीक है, इसी कारण वे वक्रतुण्ड हैं। [142] गणेश की शुण्ड दाहिने व बायें दोनों तरफ मुड़ी हुई निरूपित की जाती है। जब शुण्ड दक्षिण की ओर मुड़ी रहती है तब उन्हें 'वलम्बूरि विनायक' कहते हैं तथा बायीं ओर मुड़ी रहने पर 'इडम्बूरि विनायक' कहे जाते हैं।[143] गणेश की नाक का शोभामयी वर्णन मिलता है।[144] वे तीन नेत्रों से विभूषित कहे गये हैं।[145] वैसे तो उन्हें अनन्त श्रुति और अनंत नेत्रों से सम्पन्न माना गया है, पर वर्णन तीन नेत्र और दो कानों का ही उपलब्ध है।[146] पद्मपुराण में उन्हें 'चारुकर्ण

---

140. गणेश पुराण, 1.15.6-7
    एकदंतं नखपुर्गजास्यं तेजसा ज्वलत् ।
    दृश्टैषं तर्कयामास बालकं कथमत्र वै ।।
    पुष्करेण च बालोऽसौ जलं मन्मस्तकेऽक्षिपत् ।
    ततोहमाजहासोच्यैश्चिन्तानन्द समन्वितः ।।
141. वही, 1.34.5
    यः पुष्कराक्षः पृथुपुष्करोऽपि वृहत्करः पुष्कर शालिभालः ।
    अविर्षभूवाखिलदेवमूर्तिः सिन्दूरशाली पुरतो मघोनः ।
142. मुद्गल पुराण, 7.35
    मायासुखं मोहयुतं तस्माद् वक्रमिति स्मृतम् ।
    तुण्ड ब्रह्म तयोर्योगे वक्रतुण्डोऽयमुच्यते ।।
    कण्ठाधो मायया युक्तो मस्तकं ब्रह्मवाचकम् ।
    वक्रायं तस्य विप्रेश तेनायं वक्रतुण्डकः ।।
143. राव, गोपीनाथ, वही, खण्ड 1, भाग-1, पृ० 145
144. गणेश पुराण, 2.81.33 सुनासं शुभ्रवदनं सथूलवक्षसमीश्वरम्
145. वही, 2.81.33 षड्भुजं चन्द्रसुभगं लोचनत्रयभूषितम्
146. वही, 79.28 'अनंतश्रुतिनेत्रश्च'

विभूषित' कहा गया है।[147] गणेश पुराण मे कर्ण-कुण्डल का वर्णन करते हुए लिखा है-उनके वर्ण-कुण्डलो से तेज झरता रहता है। ऐसा लगता है मानो वे दो सूर्यबिम्ब हो।[148] ब्रह्मवैवर्त के मतानुसार मणिकुण्डलो की प्राप्ति उन्हे सूर्य से हुई थी।[149]

गणेश का मस्तक सिन्दूर से अरुण तथा मुकुट से विभूषित रहता है।[150] उनके मस्तक पर कस्तूरी का भव्य तिलक शोभित रहता है। देवताओ की स्तुति से प्रसन्न होकर गणेश के प्रकट होने के प्रसग मे इसकी पुष्टि होती है।[151] विराट स्वरूप मे उनके अनत शीर्षयुक्त होने का वर्णन मिलता है।[152] गणेश के मस्तक का अलकार चन्द्रमा है[153] तथा शीश पर रत्नजटित मुकुट है।[154] उन्हे किरीट की प्राप्ति कुबेर से हुई है।[155]

आयुध

गणेश को विघ्नविनायक कहा जाता है। उनके असंख्य आयुध हैं, जिनका प्रयोग विघ्नो को नष्ट करने के लिये होता है। प्रमुख रूप से दस आयुध गिनाये गये हैं- वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अकुश, गदा, त्रिशूल, पद्म, चक्र। शक्ति और गदा की गणना स्त्रीलिग मे है। चक्र और पद्म नपुसक लिग मे परिगणित है तथा शेष छह आयुध पुल्लिग हैं।[156] त्रिपुरासुर

---

147 पद्म पुराण, सृष्टि खण्ड, 66 7
गजवक्त्र सुरश्रेष्ठ चारुकर्णविभूषितम् ।
पाशाङ्कुशधर देव वन्देऽह गणनायकम् ।।

148 गणेश पुराण, 1 21 33 कुण्डले प्रावहच्छुत्यो सूर्यबिम्बे इवापरे

149 ब्रह्मवैवर्त पुराण, गणपति खण्ड, 13 8 'सूर्यश्च मणिकुण्डले'

150 गणेश पुराण, 1 14 21
मुकुटेन विराजन्त मुक्तारत्नयुजा शुभम् ।
रक्तचदनलिप्ताङ्ग सिन्दूरारुणमस्तकम् ।।

151 वही, 2 78 31 क्षुद्रघण्टाक्कणत्पाद कस्तूरी तिलकोज्ज्वलम्

152 वही, 2 79 27
यो देव सर्वभूतेषु गुढश्चरति विश्वकृत्
योऽनन्तशीर्षानन्त श्रीसत्तरण स्वराट्

153 वही, 1 14 25 भालचन्द्र लसद्दन्त शोभाराजत्कर परम्

154 वही, 1 2 32 रत्नकाचनमुक्तावन्मुकुट भ्राजिमस्तक

155 ब्रह्मवैवर्त पुराण, गणपति खण्ड, 13 8-'कुबेरश्च किरीटम् '

156 उत्तरकामिकागम, अष्टषष्टितम पटल, पृ० 135
दशायुध प्रतिष्ठा तु वक्ष्ये लक्षणपूर्वकम् ।
वज्र शक्ति च दण्ड च खड्ग पाश तथाङ्कुशम् ।।
गदा त्रिशूल पद्म च चक्र चेति दशायुधम् ।
जाये शक्तिगदे ज्ञेये चक्रपद्म नपुसके ।
शेषा पुमासो विज्ञेयास्त्वष्ट ताल विनिर्मिता ।।

को पराजित करने के लिये, नारद के उपदेशानुसार, शिव ने गणेश को प्रसन्न करने हेतु तप किया। प्रसन्न होकर पचमुख, दस भुजाओ और आयुधो से युक्त गणेश ने उन्हे दर्शन दिया।[157]

गणेश की भुजाये उपर्युक्त दस आयुधो से विभूषित होने के साथ-साथ ध्वजा, बाण, धनुष, कमण्डल, इक्षुदण्ड, दन्त, मुद्‌गर आदि से भी युक्त हैं। गणेश के प्राय सभी विग्रहो के हाथ मे अकुश शोभित है।[158] उसे वे अपने पिछले दाहिने हाथ मे धारण करते है।[159] कालडी मे शारदा देवी के मदिर मे स्थापित गणेश - विग्रह के पिछले दाहिने हाथ मे अकुश शोभित है।[160] यह उन्मत्त उच्छिष्ट गणपति का विग्रह है।[161] गणेश के आयुधो के विश्लेषण से स्पष्ट है कि उनके विकास क्रम मे वैष्णव व शैव परम्पराओ का प्रभाव पड़ा। गणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद मे गणेश द्वारा पाश और अकुश धारण करने का उल्लेख है।[162] शरदातिलक मे भी गणेश को परशु - आयुध से विभूषित बताया गया है। तेनकाशी के विश्वनाथ स्वामी मदिर मे स्थापित लक्ष्मी गणपति की प्रतिमा मे गणपति की प्रतिमा दशभुज है।[163] उनके कुछ हाथो मे चक्र, शख, शूल आदि हैं। इस मदिर का निर्माण 1446 ई० मे पाण्ड्य शासक अरिकेसरि पराक्रम

---

157 गणेश पुराण, 1 44 26-27
पचवक्त्रो दशभुजो ललाटेन्दु शशिप्रभ ।
मुण्डमाल सर्पभूषो मुकुटागद्दभूषण ।।
अग्न्यर्कराशिनो भामिस्तिरस्कुर्वन्दशायुध।

158 पद्म पुराण, सृष्टि खण्ड, 66 7 पाशाकुशधर देव वन्देऽह गणनायकम्

159 श्रीतत्वनिधि, 14 9
'दक्षेऽकुशवरदान वामे पाश च पायस पात्रम्'

160 राव गोपीनाथ, वही, पृ० 105

161 शारदातिलक, 13 3 4
सिन्दूराभ त्रिनेत्र पृथुतरजठर हस्तपद्मैर्दधान।
दन्त पाशाकुरोष्टान्युरुकर विलसद्बीजपूराभिरामम् ।।
बालेन्दुद्यौति मौलि करिपति वदन दानपूरार्द्‌गण्ड ।
भोगीन्द्राबद्धभूष भजत गणपति रक्तवस्त्रालरागम् ।।
उपर्युक्त श्लोक के भाष्य मे राघवभट्ट ने उर्ध्वस्थ वाम कर मे अकुश और दक्षिण कर मे पाश की स्थिति निरूपित की है।
'उर्ध्वस्थवामदक्षयोरकुशपाशौ ।'
इसी तरह शारदा तिलक 13 70 श्लोक के भाष्य मे राघवभट्ट ने उपर्युक्त कथन की पुष्टि की है। पुष्कर गणेश के ध्यान मे उन्होने चित्रण किया है- 'ध्याने तु दक्षे पाश वामे अकुश '

162 गणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद, 18 11 'पाशाकुशधारिणम् ।'

163 शारदा तिलक, 13 79 80
हस्तै स्वीयैर्दधतमरविन्दाकुशौ रत्नकुम्भम् ।
दन्त च परशु पद्मे मोदकाश्च गजानन ।
गणेशो मूषकारूढो विभ्राण सर्वकामद ।।

पाण्ड्यदेव ने कराया था।[164]

गणेश की प्रतिमा के निर्माण प्रसग मे त्रिशूल का भी वर्णन मिलता है। लिग पुराण मे उल्लिखित है कि भगवती अम्बिका से त्रिशूल और पाश धारण करने वाले, हाथी के मुख के समान मुख वाले मगलमूर्ति गणेश का जन्म हुआ।[165] इसके अतिरिक्त गणेश के चारो हाथो मे खड्ग, खेट, धनुष और शक्ति के होने का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[166] डा० गोपीनाथ राव का मत है कि विघ्नेश्वर प्रतिष्ठा विधि मे शक्ति गणपति का जो ध्यान वर्णित है, उसके अनुसार उनका रग अस्तकालीन सूर्य के समान है तथा उनके हाथ पाश और वज्र से विभूषित हैं। वज्र दस आयुधो मे से एक है।[167] गणेश पुराण मे सिहारूढ़ विनायक की मूर्ति की दशो भुजाओ मे दस आयुध धारण करने की बात कही गयी है।[168] कुछ स्थलो पर गणेश के हाथ को दन्तविभूषित भी कहा गया है।[169] कालडी के शारदा देवी मदिर मे स्थापित गणेश-विग्रह के दाहिने हाथ मे दत सुशोभित है। दाहिने हाथ मे दत होने की पुष्टि अशुमद्भेदागम मे भी उपलब्ध है।[170] वाराह पुराण मे बालगणपति के हाथ केला, आम, कटहल, इक्षु, कपित्थ से विभूषित है।[171]

मोदक को महाबुद्धि का प्रतीक माना गया है तथा बुद्धि से गणेश का महत्वपूर्ण सबध है। अत उनकी मूर्तियो और स्वरूपो मे मोदक का भी अहम् स्थान है। त्रिवेन्द्रम मे स्थापित केवल गणेपति मूर्ति के हाथो मे अकुश, पाश, मोदक और दत सुशोभित हैं। मोदक आगे के

---

164 राव, गोपीनाथ, वही, पृ० 144

165 लिग पुराण, पूर्वार्ध, 105 9
इमानन्नाश्रित पर त्रिशूलपाश धारिणम् ।
समस्तलोक सम्भव गजानन तदाम्बिका ।।

166 गणेश पुराण, 1 12 35 खड्गखेखधनु शक्तिशोभिचारु चतुर्भुजम्

167 राव, गोपीनाथ, वही, पृ० 48

168 गणेश पुराण, 2 68 19

169 वराह पुराण, देवतामूर्ति प्रकरण, 8 27
सिन्दूराभ त्रिनेत्र च अभय मोदक तथा ।
टङ्क शराक्षभाले च मुद्गर चाकुश तथा ।
त्रिशूल चेति हस्तेषु दधान कुन्दवत् सितम् ।।

170 राव, गोपीनाथ, वही, पृ० 134

171 वाराह पुराण, क्रियाक्रमद्योति, 15 37
करस्थकदली चूतपनसेक्षुक पित्थकम्।
बाल सूर्यप्रभाकर वन्दे बाल्यगणाधिपम् ।।

बाये हाथ मे है।[172] मोदकधारी गणेश का चित्रण गणेश पुराण मे भी है।[173] हिमालय ने भगवती पार्वती को गणेश का ध्यान करने की जो विधि बतायी, उसमे उन्होने मोदक का उल्लेख किया है।[174] पद्मपुराण के सृष्टि खण्ड मे उल्लेख है कि मोदक का निर्माण अमृत से हुआ है। पार्वती ने कुमार और गणेश को जन्म दिया। दोनो सभी देवो के हितकारी हैं। देवताओ ने श्रद्धा से अमृतनिर्मित एक दिव्य मोदक पार्वती को दिया। इसे सूँघने या खाने वाला सम्पूर्ण शास्त्रो का मर्मज्ञ, सब तन्त्रो मे प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान्, ज्ञान-विज्ञान का तत्वज्ञ और सर्वज्ञ हो जाता है।[175] वह मोदक गणेश को प्राप्त हुआ।[176] स्कदपुराण मे देवताओ द्वारा विघ्नरात गणेश की पूजा मोदक अर्पित कर की गयी।[177] शकराचार्य ने भी उनकी वन्दना करते हुये लिखा है, जो सानन्द अपने हाथ मे मोदक ग्रहण कर अवस्थित हैं, जो सदा मुक्ति प्रदान करने के लिये प्रस्तुत है, चन्द्रमा जिनके सिर का भूषण है, जो सबके एकमात्र प्रभु हैं, जो गजासुर के विनाशक है, जो प्रजाजनो के अशुभ को शीघ्र ही नष्ट कर देते है, मैं उन्हे नमस्कार करता हूँ।[178]

---

172 राव, गोपीनाथ, वही, पृ० 134

173 गणेश पुराण, 1 21 32
चतुर्भुज महाकाय मुकुटाटोपमस्तकम् ।
परशू कमल माला मोदकानावहत् करै ।।

174 वही, 1 49 21-22
एकदन्त सूर्यकर्ण गजवक्त्र चतुर्भुजम्।
पाशाकुशधर देव मोदकान् विभ्रत करै ।।

175 पद्म पुराण, सृष्टि खण्ड, 65 9 11
तौ दृष्टा तु सुरा सर्वे श्रद्धया परयान्विता ।
सुधयोत्पादित दिव्य तस्मै प्रादुस्तु मोदकम् ।।
-पद्म पुराण, सृष्टि खण्ड, 65 9 11
अस्यैवाघ्राणमात्रेण अमरत्व लभेद ध्रुवम् ।
सर्वशास्त्रार्थतत्वत सर्वशस्त्रास्त्रकोविद ।।
निपुण सर्वतन्त्रेषु लेखकश्चित्रकृत सुधी ।
ज्ञान विज्ञान तत्वज्ञ सर्वज्ञो नात्र सशय ।।

176 वही, 65 19 'अतो ददामि हेरम्बे मोदक देवनिर्मितम् '

177 स्कद पुराण, अवन्ती, 36 1 'लड्डुकैश्च ततो देवैर्विघ्ननाथयसमर्पित '

178 शकराचार्य, श्रीगणेपचरत्न, 1 18
मुदा करात्तमोदक सदा विभुक्ति साधक
कलाधरावत सक विलासिलोकरक्षकम्
अनायकैकनायक विनाशिते भदैत्यक
नताशुभाशुनाशक नमामि त विनायकम् ।

परिवार तथा पार्षद

गणेश को विघ्न विनाशक त्रिदेवो (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) का उपास्य तथा परम आराध्य कहा गया है।[179] गणेश के साथ उनके परिवार का भी वर्णन विभिन्न स्थलो पर उपलब्ध है। मुद्गल पुराण में शिव ने गणेश की स्तुति उनकी पत्नी सिद्धि-बुद्धि के साथ की है।[180] गणेश पुराण मे भी विभिन्न स्थलो पर सिद्धि-बुद्धि के साथ इनका वर्णन किया गया है।[181] इनमे बुद्धि को विश्वत्यिका ब्रह्ममयी माना है तथा सिद्धि उसको विमोहित करने वाली है।[182] सिद्धि-बुद्धि के अतिरिक्त पुष्टि को भी उनकी पत्नी कहा गया है। गणेश के वाम भाग मे सिद्धि और दक्षिण भाग मे बुद्धि की सस्थिति बतायी जाती है।[183]

शिव पुराण मे वर्णित है कि गणेश ने माता-पिता की परिक्रमा और पूजा को पृथ्वी की परिक्रमा से भी उच्च स्थापित किया [184] तत्पश्चात् ब्रह्मा ने अपनी दोनो कन्याओ (सिद्धि और बुद्धि) का विवाह उनसे कर दिया। [185] शिव पुराण मे ही गणेश के परिवार का वर्णन करते हुये

---

179 पद्म पुराण, सृष्टि खण्ड, 51 66 'गणेश पूज्येद्यास्तु विघ्नस्तस्य न जायते ।'

180 मुद्गल पुराण, अष्टम खण्ड, गणेश हृत्यस्त्रोत्र, 17
सिद्धिबुद्धिपति वन्दे ब्रह्मणस्पतिसज्ञितम् ।
मागल्येश सर्वपूज्य विघ्नाना नायक परम् ।।

181 गणेश पुराण, 1 49 23
भक्ताना वरद सिद्धिबुद्धिभ्या सेवित सदा।
सिद्धिबुद्धिप्रद नृणा धर्मार्थ काममोक्षदम् ।
बह्मरुद्रहरिन्द्राद्यै सस्तुत परमार्षिभि ।।

182 वही, 1 37 13
सिद्धिबुद्धियुत श्रीमान कोटिसूर्याधिकद्युति ।
अनिर्वाच्यस्वरूपापि लीलया ऽऽसीत् पुरो मुने ।।

183 मुद्गल पुराण, अष्टम खण्ड, गणेशह्रदय स्त्रोत 36
विश्वात्मिका ब्रह्ममयी हि बुद्धि -
स्तस्या विमोहप्रदिका च सिद्धि ।
ताभ्या सदा खेलति योगनाथ-
स्त सिद्धि बुद्धिशमथो नमामि।।

184 शिव पुराण, रुद्रस कुमार, 19 39
पित्रोश्च पूजन कृत्वा प्रक्रान्ति च करोति या।
तस्य वै पृथिवीजन्यफल भवति निश्चितम् ।।

185 वही, 20 2
विश्वरूप प्रजेशस्य दिव्यरूपे सुते उभे ।
सिद्धिबुद्धिरिति ख्याते शुभे सर्वांगशोभने ।।

लिखा है कि गणेश की पत्नी सिद्धि से 'क्षेम' और 'बुद्धि' से लाभ नामक, दो पुत्रो का जन्म हुआ।[186] गणेश पुराण के उल्लेखानुसार ब्रह्मा ने गणेश पूजन के पश्चात् दक्षिणा स्वरूप दो कन्याएँ गणेश को भेट की, जिसे गणेश ने स्वीकार किया तथा अतर्ध्यान हो गये।[187] नारद पुराण मे गणेश की एक पत्नी सिद्धि द्वारा आश्लिष्ट निरूपित किया गया है। गणेश ने अपनी चारो भुजाओ मे पाश, अकुश, अभय और वर-मुद्राये धारण कर रखी हैं। उनकी पत्नी हाथ मे कमल धारण कर उनके समीप बैठी है, उनका शरीर रक्त वर्ण का है।उनके तीन नेत्र हैं।[188]

रूपमण्डन मे 'गणेशायतन' (गणेश-मन्दिर) के प्रसग में पार्षदो व प्रतिहारो का विवरण उपलब्ध होता है। वे द्वार की रक्षा करते हैं, द्वारपालक का कार्य करते हैं। उनकी सख्या आठ है। एक-एक द्वार पर दो-दो प्रतिहार रहते हैं। उनके नाम हैं– अविघ्न और विघ्नराव, सुवक्त्र और बलवान, गजकर्ण और गोकर्ण तथा सुसौभ्य और शुभदायक। गणेश के मदिर मे उनके विग्रह के बायें गजकर्ण, दाये सिद्धि, उत्तर मे गौरी, पूर्व में बुद्धि, दक्षिण पूर्व मे बाल चद्रमा, दक्षिण मे सरस्वती, पश्चिम मे कुबेर और पीछे धूमक के विग्रहो की स्थापना की जाती है।[189]

गणेश के आठो द्वारपाल वामनाकार हैं। वे सौम्य स्वभाव और कठोर मुख वाले होते हैं। आठो के दो-दो हाथ हैं, जो तर्जनी, मुद्रा और दण्ड से विभूषित रहते हैं। पूर्व द्वार पर स्थित अविघ्न और विघ्नराज के दो हाथो मे परशु और पद्म रहते हैं, दक्षिण द्वार पर स्थित सुवक्त्र और बलवान के दो हाथो मे खड्ग और खेटक रहते हैं, पश्चिम द्वार पर स्थित गजकर्ण और गोकर्ण के दो हाथो मे धनुष-बाण होते हैं, और उत्तर द्वार पर स्थित सुसौम्य और शुभदायक

---

186 शिव पुराण, 20 8
सिद्धेर्गणेशपत्न्यास्तु खेमनामा सुतोऽभवत्।
बुद्धेर्लाभमिध पुत्र आसीत् परमशोभन ।।

187 गणेश पुराण, 1 15 34-39
पूजार्थ देवदेवस्य गणेशस्य प्रसादत ।
दक्षिणावसरे द्वे तु कन्यके समुपस्थिते।।

188 नारद पुराण, पूर्व, तृ 66 139
पाशाकुशाभयवरान् दधान कजहस्तया।
पत्न्याश्लिष्ट रक्ततनु त्रिनेत्र गणप भजेत् ।।

189 रूपमण्डन 5 19 20
वामाके गजकर्ण तु सिद्धिदध्याच्च दक्षिणे।
पृष्ठकर्णे तथा द्वौ च धूम्रको बालचद्रमा ।
उत्तरे तु सदा गौरी याम्ये चैव सारस्वती
पश्चिमे यक्षराजश्च बुद्धि पूर्वे व्यवस्थिता ।।

के दोनो हाथ पद्म और अकुश से भूषित रहते हैं। [190]

वाहन

गणेश के वाहन रूप मे सिह, मयूर व मूषक को स्थापित किया गया है। गणेश पुराण मे उल्लेख है– कृतयुग में गणेश का वाहन सिह है। वे दस भुजावाले, तेज स्वरूप और विशालकाय है तथा उनका नाम विनायक है। त्रेतायुग मे उनका वाहन मयूर है। द्वापर मे वे मूषकवाहन है और कलियुग मे अश्वारूढ़ हैं। [191] शिल्परत्न मे भी सिहारूढ़ पचवक्त्र गजानन का उल्लेख प्राप्त होता है। [192] गणेश पुराण में कई स्थलो पर उनके सिहारूढ़ स्वरूप की विवेचना की गयी है। [193]

---

190 रूपमण्डन 5 21-25
सर्वे च वामनाकारास्सौम्याश्च पुरुषानना ।
तर्जनीपरशु पद्मविघ्नो दण्डहान्तक ।।
तर्जनीदण्डापसव्ये स भवेद्र विघ्नराजक ।
तर्जनी खड्गाखेट तु दण्डहस्तस्सुवक्त्रक ।।
तर्जनी दण्डापसव्ये दक्षिणे बलवान् भवेत् ।
तर्जनीपद्माकुश च दण्डहस्त सुसौम्यक ।।
तर्जनी दण्डापसव्ये स चैव शुभदायक ।
पूर्वद्वारादिके सर्वे प्राच्यादिष्वष्ट सस्थिता ।।

191 गणेश पुराण, 1 10 18-21
सिहारूढो दशभुज कृते नाम्ना विनायक ।
तेजोरूपी महाकाय सर्वेषा वरदो वशी।।
त्रेतायुगे वर्हिरूढ षड्भुजोऽप्यर्जुनच्छवि ।
मयूरेश्वरनाम्ना च विख्यातो भुवनत्रये ।।
द्वापरे रक्तवर्णोऽसावाखुरूढश्चतुर्भुज ।
गजानन इति ख्यात पूजित सरमानवै ।।
कलौ तु धूम्रवर्णोसाऽवश्वारूढो द्विहस्तवान्।
धूम्रकेतुरिति ख्यातो म्लेच्छानीकविनाशकृत्।।

192 शिल्परत्न, 25 27 29
सिहोपरि स्थित देव पचवक्त्र गजाननम् ।
दशबाहु त्रिनेत्र च जाम्बूनदसमप्रभम् ।।
प्रसादाययदातार पात्र पूरितमोदकम्।
स्वदन्त सव्यहस्तेन बिभ्रत चापि सुव्रते।।

193 गणेश पुराण, 1 37 12 13
सिहारूढो दशभुजो व्यालयज्ञोपवीतवान्।
कुकुमागुरुकस्तूरी चारु चन्दन चर्चित ।।
सिद्धि बुद्धि युत श्रीमान् कोटि सूर्याधिकद्युति ।
अनिर्वार्च्यस्वरूपो लीलयाऽसीत् पुरो मुन ।।
—वही, 2 78 29, ततस्ते दद्दशुर्देव सिहारूढा विनायकम्।

गणेश पुराण मे उनके मयूरवाहन का भी अनेक स्थलो पर वर्णन मिला है [194] और इसी कारण उनका नाम ही मयूरेश्वर पडा।

उनके मूषक वाहन का उल्लेख 'गणेश सहस्त्रनाम स्तोत्र' मे हुआ है। इसमे उन्हे 'आखुवाहन' कहा गया है।[195] ब्रह्मवैवर्तपुराण मे भी उनका वाहन मूषक बताया गया है। [196] पद्मपुराण मे भी उनके मूषकवाहन होने की चर्चा मिलती है। [197]

प्रतिमा द्रव्य

प्रतिमा निर्माण के लिये अनेक प्रकार के द्रव्यो का प्रयोग होता रहा है, जैसे रामायण में सीता की स्वर्ण प्रतिमा,[198] महाभारत मे भीम की लौह प्रतिमा,[199] भागवतपुराण मे कृष्ण की मिट्टी, काष्ठ, प्रस्तर, धातु, चदन, बालुका, मनोमयी तथा मणि [200] की प्रतिमा का उल्लेख आया है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण मे शिला, दारु तथा लौह मे प्रतिमाकरण का विधान दिया गया है। [201] साथ ही स्वर्ण, ताम्र, चादी की भी प्रतिमाये बनायी जा सकती हैं। [202] मत्स्यपुराण मे शिला, स्वर्ण, चादी, ताम्र धातुओ से प्रतिमा निर्माण का विधान किया गया है। [203] लिंग लक्षणम्, अध्याय के अर्तगत बहुमूल्य मणि, लकड़ी व मिट्टी का शिवलिग बनाने के लिये कहा गया है।[204] वृहत्सहिता के अनुसार सुवर्ण की प्रतिमा से स्वास्थ्य, रजत से यश, ताम्र से

---

194 गणेश पुराण, 2 31 9 10

आविरासीत् सिद्धिबुद्धियुक ।

मयूरवाहनो देव शुण्डादण्डविराजित ।।

195 वही, गणेश सहस्त्रनामस्तोत्र, 66 'आखुवाहन'

196 ब्रह्मवैवर्त पुराण, गणपति खण्ड, 13 12

वसुधरा ददौ तस्मै वाहनाय च मूषकम् ।

197 पद्म पुराण, सृष्टि खण्ड, 66 4

मूषकोत्तमारूढ देवासुर महाहवे।

यौद्धुकाम महाबाहु वन्देऽह गणनायकम् ।।

198 वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, 19 5 25

199 महाभारत , 12 5 23

200 श्रीमद्भागवत, 10 48 31

201 वही, 11 27 12

202 विष्णु धर्मोत्तर पुराण, 43 32

203 मत्स्य पुराण 1 258-263

204 वही, 25 8 21

प्रजावृद्धि, शिलामयी से भू, धनलाभ तथा विजय, दारुमयी से आयु, मिट्टी से श्री बल, मणि से लोकहित की वृद्धि होती है।[205] गणेश पुराण मे भी गणेश की मूर्तियो के सदर्भ मे कुछ धातुओ व पदार्थो का उल्लेख है जिनमे मुख्य हैं–गडकीय पाषाणो से निर्मित मूर्तियॉ।[206] इसके अतिरिक्त कुछ अन्य द्रव्यो जैसे कश्मीरी पाषाण [207], रत्नकाचन [208], स्फटिक [209], मिट्टी [210], सुवर्ण[211] और लकड़ी [212] की प्रतिमा निर्माण का वर्णन भी प्राप्त होता है। सात प्रकार के द्रव्यो का उल्लेख गणेश प्रतिमा के निर्माण हेतु, गणेश पुराण मे है।

मूर्तिविज्ञान में गणेश-प्रतिमा का विकास

साहित्य मे गणेश का स्वरूप अत्यत प्राचीन काल से ही प्राप्त होने लगता है, किन्तु अद्यतन उपलब्ध पुरातात्विक साक्ष्यो के आधार पर भारतीय मूर्तिकला मे गणेश का प्रादुर्भाव प्रारभिक गुप्तकाल से माना जाता है। गणेश के स्वरूप से सन्दर्भित प्रतिमाशास्त्रीय ऐसे साक्ष्य प्राप्त होते है जिन्हे विद्वानो ने गणेश के प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप के विकास क्रम के प्रारम्भिक दौर से समीकृत करने का प्रयास किया है। 500 ई०पू० मे हिन्द यवन शासक हर्मिज क समय का एक गोल रजत सिक्का प्राप्त हुआ है जो ब्रिटिश म्यूजियम मे सुरक्षित है। इसके पृष्ठ भाग पर सिहारूढ़ हस्तिमुख देव का अकन है। लेकिन इसमे दन्त व कर्ण चित्राकित नही हैं। इसमे

---

205 वृहत्सहिता, 60 51-58

206 गणेश पुराण 1 18 22
लसत्काचनशिखर चतुर्द्वार सुशोभनम्।
प्रतिमा स्थापयामास् गण्डकीयोपलै कृताम् ।।

207 वही, 1 39 2
तत कश्मीर पाषाणभवा मूर्ति गजाननीम् ।

208 वही, 2 21 10 11
वैनायकी महामूर्ति रत्नकाचननिर्मिताम् ।

209 वही, 1 34 37,
स्थापयामास शक्रोऽपि स्फटिकी मूर्तिमादरात्।

210 वही, 1 49 9-10,
मृत्तिका सुदरा स्निग्धा क्षुद्रपाषाण वर्जिताम् ।
सुविशुद्धामवल्मीकाम् जल सिक्ता विमर्दयेत् ।
कृत्वा चारुतरा मूर्ति गणेशस्य शुभा स्वयम् । ।

211 वही, 1 69 14,
तस्योपरि लिखेद्यन्त्र यागमोक्त विधानत ।
तत्र मूर्ति गणेशस्य सौवर्णो लक्षणन्विताम् ।।

212 वही, 2 35 19,
मन्दारमूलै मूर्ति कृत्वा य पूजयेन्नर ।

शुण्ड बायी ओर झुकी है। एम० के० धवलीक इसे गणेश की आकृति से समीकृत करते हैं।[213] ए० के० नारायण भी इसे गणेश की आकृति ही मानते हैं।[214] जबकि कुछ अन्य विद्वान[215] क्रिब्ब तथा[216] बी० एन० बैनर्जी ने इस मत का विरोध किया है तथा यह तर्क दिया है कि ग्रीक सिक्को की परम्परा मे उन पर ग्रीक देवो का चित्राकन होना चाहिये, किसी भारतीय देव का नहीं। इण्डोग्रीक शासको की यह परम्परा थी कि रजत सिक्को पर तत्कालीन शासको के तथा ताम्र मुद्राओ पर देवो व पशुओ के चित्र अकित कराते थे। अत हर्मिज के रजत सिक्के पर गणेश का चित्राकन मानना उचित नही है। क्रिब्ब और धवलीकर दोनों ही इस अकन को ग्रीक देवी 'जियस मिथ्रा' से समीकृत करते है।[217]

जयपुर के रेह क्षेत्र में उत्खनन से गजमुखी वैनायकी की मूर्ति प्राप्त हुई है जिसका काल प्रथम शताब्दी ई० पूर्व से प्रथम शताब्दी ई० तक माना गया है। किन्तु इसे विनायक की मूर्ति नही मान सकते, क्योकि इसके शरीर का अन्य भाग स्त्री स्वरूप को घोषित करता है। इसे विनायक के प्रतिमापरक स्वरूप के विकास क्रम का प्रारभिक रूप भी नही स्वीकार किया जा सकता, क्योकि इससे सन्दर्भित किसी प्रकार के साक्ष्य कही प्राप्त नही होते।[218] साभर जिले मे उत्खनन के दौरान मिट्टी की दो मुहरे प्राप्त हुई हैं जिनमे गजमुखी गणेश की आकृति की सभावना की गयी है। इन मुहरो पर ब्राह्मी मे लेख उत्कीर्ण है, जिसमे 'करभिक्ष' शब्द का उल्लेख हुआ है। किन्तु 'करभ' शब्द का अर्थ हाथी-शावक भी होता है तथा उष्ट्र-शावक भी। यह आकृति भी इतनी क्षतिग्रस्त हो चुकी है कि इसे स्पष्टतया गणेश से समीकृत करना कठिन है।[219]

गणपति के प्रारभिक स्वरूप और गणेशोपासना के प्रारंभ पर विचार करते हुये इनका उद्भव यक्ष और नागो की उपासनाओ से माना गया है।[220] गणेश की प्रतिमाओ मे उनका ठिगना कद, छोटी टागें, लम्बा व उभरा हुआ पेट तथा हाथी का मुख और माथा विशेषत

---

213 धवलीकर, एम०के०, ओरिजिन ऑफ गणेश', एनाल्स ऑफ द भण्डारकर ओरिएन्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट, खण्ड-LXX1 , 1990, पृ०15

214 नारायण, ए० के०, ऑन द अर्लिएस्ट गणेश, पृ० 147

215 क्रिब जो, 'द अर्लिएस्ट गणेश ए केस ऑफ मिस्टेकेन आइडेटिटी', न्यूमेसमेटिक डाइजेस्ट, खण्ड-VI,1982, पृ० 30-32

216 यादव, निर्मला, गणेश इन इण्डियन आर्ट एण्ड लिटरेचर, जयपुर, 1997, पृ० 28

217 वही, पृ० 28

218 कृष्णन, युवराज, गणेश अनरेवेलिग एन एनिग्मा, पृ० 88

219 वही, पृ० 89

220 बैनर्जी, जे० एन०, डेवलपमेन्ट ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी, कलकत्ता, 1956, पृ० 256-7

दिखलायी पडता है। इनमे पहली तीन बातो का निकटतम सम्बन्ध यक्ष प्रतिमाओ से है। सभी यक्षो के मुख अनिवार्यत मानव के नही होते थे।[221] कुमारस्वामी ने गणेश प्रतिमा का मूल यक्ष आकृतियो को माना है तथा उदाहरण रूप में द्वितीय शताब्दी का अमरावती स्तूप के उष्णीष पर अकित गजमुखी यक्षो के चित्राकन को प्रस्तुत किया है, जिसमे गणेश के सदृश ही आकारिक डील-डौल वाले यक्षो का चित्रण है। इन्हे ही कुमारस्वामी ने शास्त्रीय गणापति का पूर्व प्रकार माना है।[222] अमरावती के कलाकारो ने विभिन्न प्रकार के पौराणिक पशुओ जैसे सिह, हिरन, घोड़ा, हाथी आदि के चित्र बनाये हैं और ये सभी पशु पख व सीग से युक्त हैं। इसी सन्दर्भ मे गण पौराणिक आकृति के रूप में एक हाथी के सिर के साथ दर्शाये गये है। लेकिन हाथी के शुण्ड व दन्त से रहित हैं।[223] कुमारस्वामी ने अपने इस सुझाव को श्रीलका मे मिहिनटेल के निकट स्थित दूसरी- तीसरी शताब्दी के कटक सेटिंग स्तूप पर अकित हाथी के समान मुखवाले गणो का साक्ष्य देकर पुष्ट करने का प्रयास किया है।[224] इन गणो के मुख शुण्ड व दन्त युक्त है। गेटी ने इस का काल प्रथम या द्वितीय शताब्दी माना है।[225] जबकि एस० परवितान ने इस अकन को प्रथम शताब्दी का माना है।[226] वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार आरभिकयुगीन गणपति प्रतिमाये यक्ष प्रतिमाओ के समान ही निर्मित हुई हैं।[227] इस सन्दर्भ में उल्लिखित है कि द्वितीय शताब्दी का मथुरा से एक कुषाणकालीन पाषाण फलक प्राप्त हुआ है जिस पर गजमुखी आकृति वाले पॉच यक्षो का अकन हुआ है। जिनके शुण्ड के नीचे का भाग खण्डित है। डा० पी० के० अग्रवाल ने इन्हे गणेश के प्रतिमा विकास के प्रारभिक स्तर से जोड़ने के सन्दर्भ में विचार व्यक्त किया है[228] कि मथुरा की कुषाणकालीन प्रतिमा और अमरावती की कला मे उत्कीर्ण प्रतिमा में गणपति प्रतिमा की उन समग्र विशेषताओ का चित्रण नही हुआ है, जो परवर्ती काल मे गणेश प्रतिमा विधान के आवश्यक अग के रूप मे वर्णित हैं।

महाराष्ट्र प्रात के उस्मानाबाद जिले के थेर नामक स्थल के उत्खनन से द्वितीय शताब्दी की सातवाहनकालीन एक मृण्मूर्ति प्राप्त हुयी है जो बैठी मुद्रा मे है तथा द्विभुजी है।

---

221 कुमारस्वामी ए० के०, यक्षाज, भाग-1, वाशिगटन ,1928, पृ० 7

222 वही, बास्टन म्यूजियम बुलेटिन, 1928 न 154, पृ० 30

223 शिवराममूर्ति सी०, अमरावती स्कल्पचर इन द मद्रास म्यूजियम, मद्रास, 1942, पृ० 158

224 गेटी, एलिस, गणेश, नयी दिल्ली, 1971, पृ० 25

225 वही, पृ० 25

226 हाजरा, आर० सी०, गणपति वरशिप एण्ड द उपपुराणाज, पृ० 1

227 अग्रवाल, वासुदेव शरण, मथुरा कला, अहमदाबाद, 1964, पृ० 73

228 अग्रवाल, पी० के०, सम इमेजेज ऑफ गणपति एण्ड देअर आइक्नोग्राफिक प्रोब्लेम्स, आर्टीबस एशिया, भाग-29, 1978, पृ० 19

इसके हाथी सदृश कर्ण हैं तथा शुण्ड बायी ओर मुडी हुयी है ।[229] एक अन्य मृण्मूर्ति आन्ध्र प्रदेश के कुर्नूल जिले के वीरापुरुम उत्खनन क्षेत्र से प्राप्त हुई है।[230] तृतीय शताब्दी की यह मृण्मूर्ति गजमुखी है। यद्यपि कि इसका कुछ भाग खण्डित हो चुका है फिर भी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह प्रतिमा बैठी मुद्रा मे होगी। शुण्ड ऊपर उठी हुयी व बायी ओर मुडी हुई, नाग यज्ञोपवीत धारण किये हुये, लम्बोदर यक्ष के सदृश शारीरिक सरचना वाली, निश्चयत यह गणेश की आकृति है।

मृण्मूर्ति मे ही गणेश की एक अन्य आकृति उल्लेखनीय है जो अकरा (N W F P) से प्राप्त हुयी है। गेटी ने [231] इसकी तिथि पॉचवी शताब्दी तथा धवलीकर [232] ने तीसरी शताब्दी का प्रारभिक काल निर्धारित किया है। इस मूर्ति मे गणेश नृत्य मुद्रा मे अकित हैं। गणेश का कुषाणकालीन अकन उत्तरप्रदेश के खैराडीह उत्खनन से प्राप्त हुआ है, इसमे गणेश प्रतिमा बैठी तथा द्विभुजी मुद्रा मे अकित है।

मथुरा सग्रहालय में गणेश की चालीस मूर्तियॉ सरक्षित हैं। उनमे अब तक की प्राप्त प्राचीनतम मूर्तियॉ भी शामिल हैं। सकिसा से प्राप्त खड़े, द्विभुजी गणेश की प्रतिमा, मथुरा सग्रहालय की 758, 792,964 सख्यक मूर्तियो को प्राचीनतम मूर्तियो के वर्ग मे रखा जा सकता है (चित्र- 1, 2)।[233] सकिसा से मिले गणेश द्विभुज, बाये हाथ मे मोदक पात्र, जिस पर गणेश की उसी ओर घूमी शुण्ड तथा खड़ी मुद्रा मे है। अन्य दोनो प्रतिमाये द्विभुज, लम्बोदर, सर्पयज्ञोपवीत धारण किये हुये तथा मोदक पात्र को स्पर्श करती शुण्ड वाली हैं।

मथुरा सग्रहालय में रखी 758 सख्या की मूर्ति (चित्र - 2) का काल प्रथम से तृतीय शताब्दी तय किया गया है।[234] अन्य दोनो मूर्तियो को गेटी पाँचवी शताब्दी मे रखती हैं जबकि धवलीकर ने इसे द्वितीय शताब्दी के अत अथवा तृतीय शताब्दी के प्रारम्भिक चरण का माना है। इन सभी मूर्तियो की सामान्य तौर पर एक जैसी विशिष्टता है। द्विभुजी, बाये हाथ मे मोदक पात्र, अलकार शून्यता, एक ही दॉत का दिखाया जाना, सर्प का जनेऊ। इसके

---

229 गोराक्षर, सदाशिव, थेर कोल्हापुर एण्ड यवनाज इन डाउन ऑफ सिविलाइजेशन, महाराष्ट्र,1975, पृ० 28

230 यादव, निर्मला, वही, पृ० 29

231 गेटी, एलिस, वही, पृ० 26

232 बाऊन एल राबर्ट, सपा० गणेश स्टडीज ऑफ एन एशियन गाड, न्यूयार्क, 1991, पृ० 52

233 गेटी एलिस, वही, पृ० 26, यादव निर्मला, वही, पृ० 30
जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोत्तम, प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, पटना, 1977, पृ० 168

234 दिसकाल्कर, डी० बी०, सम ब्रह्मनिकल स्कल्पचर्स इन द मथुरा म्यूजियम, द जर्नल ऑफ द यू० पी० हिस्टोरिकल सोसाइटी, खण्ड-V , भाग-1, जनवरी, 1932, पृ० 45-47

अतिरिक्त ये सभी मूर्तियॉ मथुरा के लाल चित्तेदार पत्थर पर बनी हैं। मथुरा सग्रहालय सख्यक 758 तथा सकिसा से प्राप्त मूर्ति में एक अन्य विशेषता दिखायी देती है और वह है गणेश की नग्नता। इन दोनो मूर्तियो मे वस्त्राभाव के अतिरिक्त लिग का प्रमुखता से अकन है। यघपि यहॉ 'उर्ध्वमेद्र' वाली कल्पना नही हैं।[235] युवराजकृष्णन ने भी प्रारभिक गणेश मूर्तियो की विशिष्टताओ का उल्लेख करते हुये यह मत व्यक्त किया है कि ये बिना किसी वाहन के, नग्न, अलकार रहित मूर्तियॉ है, मात्र सर्प ही उनके आभूषण के रूप मे अकित है। ये मुकुटरहित तथा हस्तिशीर्ष के रूप मे प्राप्त होती हैं।[236]

यहॉ पर अफगानिस्तान से प्राप्त दो गणेश मूर्तियॉ का उल्लेख अप्रासगिक नही होगा। ये दोनो ही मूर्तियॉ चौथी-पॉचवी शताब्दी की मानी गयी हैं। इन्हें आर० सी० अग्रवाल ने प्रकाशित किया है।[237] इनमें एक, जिसे 'महाविनायक' कहा गया है, वाही सम्राट खिगल के समय की है, इस पर गुप्ताक्षरो में अभिलेख अकित है। यह मूर्ति द्विभुजी है तथा सूँड़ अदर की ओर मोड लिया गया है, यघपि झुकाव बाई ओर है। दोनो हाथ अब खण्डित हो चुके हैं। यह मूर्ति अब भी काबुल मे पीर रतन नाथ दरगाह मे पूजित है।[238] दूसरी मूर्ति भी काबुल के शोर बाजार में पूजी जा रही हैं, जो वही के सकरधर नामक स्थान पर मिली थी। इस पर कोई लेख अकित नही है, किन्तु शैली के आधार पर विद्वानो ने इसे भी गुप्तकालीन माना है। यह विष्णु के समान है और गणेश के नीचे की ओर लटकते हुये पिछले दोनों हाथ दो नन्हें से पुरुषो के मस्तक पर टिके हैं जो स्पष्टतया विष्णु के आयुध पुरुषो का प्रतिनिधित्व करते है।दाहिना हाथ कमल की कली लिये हुये है। बाये मे मोदक पात्र रहा होगा। गणेश के बाये कन्धे से लटकने वाला सर्पयज्ञोपवीत स्पष्ट है।[239]

गुप्तकाल के आरम्भिक चरण मे गणपति की प्रतिमाऍ निर्विवाद रूप से निर्मित होने लगी थी। इन्हे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकाशत इनके निर्माण का प्रतिमाशास्त्रीय

---

235 जोशी, एन० पी०, प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, पृ० 169

236 कृष्णन, युवराज, वही, पृ० 89

237 जोशी, एन० पी०, वही, पृ० 170

238 धवलीकर, एम० के०, वही, पृ० 5

239 वही, पृ० 50

आधार था। इस काल की मूर्तियाँ उदयगिरि [240], अहिछत्र [241], भीतरगाव [242], देवगढ [243], राजघाट [244] आदि स्थलो से प्राप्त हुई है। इस काल की मथुरा सग्रहालय मे सुरक्षित सुन्दर प्रतिमाओ मे गजमुखी, लम्बोदर, शूर्प कर्ण, एकदन्ती, द्विभुजी हैं। गणेश को बाये हाथ मे रखे हुए मोदक को अपने सूँड़ से स्पर्श करते हुये प्रदर्शित किया गया है ।[245] (मथुरा सग्रहालय-सख्यक 1064, 1170 चित्र-3) छठी शताब्दी की बिहार के शाहाबाद जनपद से प्राप्त और पटना सग्रहालय मे सुरक्षित गणपति प्रतिमा को पद्मासन मे बैठे प्रदर्शित किया गया है। उसका सूँड बाये हाथ मे रखे हुये मोदक की ओर आकर्षक ढग से मुड़ा हुआ है। [246] कानपुर जिले के भीतरगाव के मदिर से प्राप्त मृण्फलक मे चतुर्भुजी, गजमुखी गणपति को भी बाएँ हाथ मे स्थित मोदक-पात्र को अपने शुण्ड से पकडते हुए दिखाया गया है। [247] इसका काल चौथी शताब्दी माना गया है। इसी काल की भूमरा से प्राप्त प्रतिमा मे गणपति को द्विभुजी रूप मे एक पीठिका पर आसीन प्रदर्शित किया गया है। [248] भूमरा से ही प्राप्त एक दूसरी प्रतिमा मे गणेश को अपनी शक्ति विघ्नेश्वरी के साथ आलिगन मुद्रा मे प्रदर्शित किया गया है। [249] इसी प्रकार उदयगिरि गुफा मे द्विभुज गणपति को उर्ध्वपीठिका पर अर्धपर्यंकासन मुद्रा मे बैठे दिखाया गया है। [250] उनका शुण्ड बाये हाथ मे रखे हुये मोदक पात्र की ओर मुड़ा हुआ है। गुप्तकाल के अतिम चरण मे गणपति प्रतिमाओ को नृत्य आदि विभिन्न रूपो मे प्रदर्शित किया जाने लगा। मथुरा कला मे निर्मित इस समय की एक गणपति की प्रतिमा मे उन्हे कमल पुष्प के ऊपर नृत्य करते प्रदर्शित किया गया है। [251]

---

240 बैनर्जी, जे० एन०, डेवलममेन्ट ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी, पृ० 256

241 अग्रवाल, वी० एस०, टेराकोटा फ्रीगर्स फ्राम अहिछत्र, एशिएन्ट इडिया, खण्ड-IV

242 ए० एस० आई० ए० आर०, 1908-9, पृ० 10-11

243 वत्स, एम० एस०, द गुप्ता टेम्पल ऑफ देवगढ़, ए० एस० आई०, मेम्योर न०-70, 1951

244 जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोत्तम, प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, पृ० 169

245 नागर, शातिलाल, कल्ट ऑफ विनायक, दिल्ली, 1992, पृ० 100

246 यादव, निर्मला, वही, पृ० 33

247 नागर, शातिलाल, वही, पृ० 107

248. बैनर्जी, आर० डी०, मेम्योर ऑफ द आर्केलॉजिकल सर्वे ऑफ इडिया, न० -16, प्लेट XV, a b

249 गेटी एलिस, वही, पृ० 115, प्लेट 3, आकृति० ए

250 बैनर्जी, जे० एन०, वही, पृ० 359

251 अग्रवाल, वासुदेव शरण, मथुरा कला, पृ० 74, गेटी एलिस, वही, प्लेट0-2, आकृति-9

गुप्तकालीन गणेश प्रतिमाओ का सूक्ष्म अध्ययन करने पर इस काल मे निर्मित प्रतिमाओ की विशिष्टताये स्पष्ट होती है। ये प्रतिमाये प्रस्तर या मिट्टी के माध्यम से बनाई गई है। इन मूर्तियो मे गणेश का मस्तक प्राकृतिक हाथी का है, उसे मुकुट या अन्य अलकार नही पहनाये गये है। नीलकठ जोशी का मत है कि केवल गणेश ही नही, अपितु यह बात साधारण रूप से कही जा सकती है कि प्रारम्भिक काल की मानवेतर मुखवाली मूर्तियो को मुकुट, उष्णीष या अन्य प्रकार के अलकारो से सजाने की प्रथा लोकप्रिय नही थी। इस बात की जॉच, पशुमुखी मातृदेवियो, बकरे के मुखवाले नैगमेश, उदयगिरि के वराह तथा प्रारम्भिक नरसिह की मूर्तियो आदि को देखकर की जा सकती है।[252]

इस काल की गणेश मूर्तियो मे लगभग सभी मे शुण्डा बायी ओर मुड़ी हैं और उसी ओर के हाथ मे मोदक पात्र भी है। इनका यह अकन भीतरगाव तथा कसिया से प्राप्त (लखनऊ सग्रहालय) मूर्तियो मे स्पष्ट परिलक्षित होता है।[253] उदयगिरि के गणेश द्विभुजी हैं, पर गुप्तकाल मे सामान्यत चतुर्भुजी रूप अधिक लोकप्रिय हो गया था।[254] हाथो मे धारण की जाने वाली वस्तुओ मे मोदक पात्र के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओ का अभी अनिवार्य स्थान नही बन पाया था। भीतरगाव के अकन मे मोदक पात्र को लेकर भागते गणपति के हाथो मे कोई आयुध नही अकित है।[255] देवगढ़ से प्राप्त मूर्ति मे मोदक पात्र के अतिरिक्त परशु, दत और सभवत मूली अकित है।[256] सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी मे राजघाट से प्राप्त मूर्ति स्थापित है। इसमे गणेश बायी ओर के ऊपर वाले हाथ मे दॉत या मूली तथा दायी ओर के नीचे वाले हाथ मे बीजपूरक लिये हुये हैं।[257] प्रारभिक काल तथा गुप्तकाल के सभी गणपति प्राय खड़ी मुद्रा मे अकित है। गणेश के परिवार का यदि विचार करे तो स्पष्ट है कि प्रारभ की मूर्तियो मे गणेश का कोई परिवार नही मिलता। यहॉ तक कि उनके वाहन भी नही अकित किये गये। देवगढ़ की मूर्तियो मे गणेश के अगल-बगल दो छोटे यक्ष दिखायी पड़ते है, जिनमे से एक के सिर पर लड्डुओं की टोकरी है।[258] इस काल के गणेश मे अलकारप्रियता नही दिखती। उनका सर्पयज्ञोपवीत अवश्य प्राचीन है। वह कभी-कभी उदबध व भुजबध मे भी

---

252 जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोत्तम, प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, पृ० 169

253 नागर, शातिलाल, वही, पृ० 107

254 बैनर्जी, जे० एन०, वही, पृ० 356-7

255 नागर, शातिलाल, वही, पृ० 107

256 वत्स, एम० एस०, वही, पृ० 135

257 जोशी, नीलकण्ठ, वही, पृ० 170

258 वही, पृ० 170

परिणत हो जाता है। इस सदर्भ मे गणेश की मूर्तियो मे परिलक्षित नग्नता पर विचार करना भी आवश्यक है। गुप्तकालीन मूर्तियो मे उदयगिरि तथा काबुल से प्राप्त मूर्तियो मे यह तत्व स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।[259]

गुप्तोत्तरकालीन गणेश प्रतिमाओ मे दोनो तरह की परम्पराओ का निर्वाह हुआ है। इस काल की प्रतिमाओ को दो वर्गो मे बॉटा जा सकता है–एक वर्ग उन मूर्तियो का है जो साधारण व अलकार रहित है और दूसरे वर्ग मे अलकृत मूर्तियो को रखा जा सकता है। मथुरा से इस काल की अलकार रहित साधारण मूर्तियॉ प्राप्त हुई हैं।[260] ये अपने से पहले यानि कि चौथी से छठी शताब्दी से प्राप्त मूर्तियो की परम्परा का ही निर्वहन करती है। इस काल की कुछ मूर्तियॉ गणेश की नृत्य मुद्रा मे भी प्राप्त होती है। एलोरा के जगेश्वर से प्राप्त छठी-सातवी शताब्दी की नृतगणपति की मूर्ति प्राप्त हुई है जो चतुर्भुजी है। दो सगीतकार भी साथ मे अकित है। बाये हाथ मे मोदक, सूँड़ भी बायी ओर के कधे पर लहराती हुयी, धोती धारण किये हुये, एक बायॉ हाथ दाहिनी ओर नृत्य मुद्रा मे लहरा रहा है। उन्होने अन्य हाथो मे क्या लिया है, यह स्पष्ट नही होता।[261]

सातवी शताब्दी की मथुरा से नृत्य गणपति की मूर्ति प्राप्त हुई है, जो अलकृत है, सिर पर जटामुकुट अकित हैं। चतुर्भुजी मूर्ति के बाये हाथ मे मोदक और एक दाये हाथ मे अकुश है। शुण्ड की गति दायी ओर है। शरीर नृत्य की लयात्मक मुद्रा मे है। मूर्ति के गले के हार, भुजबध, कटिसूत्र और दाये कान में लटकते हुये आभूषण का अकन है। बायी ओर का कर्ण खण्डित हो चुका है। इस मूर्ति मे गण सगीतकार, यहॉ तक कि वाहन मूषक भी नृत्य-मुद्रा मे अकित है।[262]

आठवी से दसवी शताब्दी अर्थात् मध्यकाल तक आते-आते गणेश की प्रतिमाओ का अकन और भी उत्कृष्ट व विविधता से होने लगा। आठवी से नौवी शताब्दी मे गणेश का विकास और प्रचार वृहद् क्षेत्र मे हो चुका था। अत उनकी मूर्तियॉ भी विस्तृत क्षेत्र से प्राप्त होती है। जैसे राजस्थान के जोधपुर जिले मे घटियाल नामक स्थल से एक स्तभ पर गणेश की मूर्तियॉ प्राप्त हुयी हैं। इसमे चार गणेश मूर्तियॉ एक दूसरे से लगी हुई चारो दिशाओ मे

---

259 नागर, शातिलाल, वही, पृ० 101-102

260 नागर, शातिलाल, कल्ट ऑफ विनायका पृ० 101

261 यादव, निर्मला, पृ० 198, नागर, शातिलाल, वही, पृ० 101

262 नागर, शातिलाल, वही, पृ० 101

मुख किये हुये अकित हैं। इस पर लिखे अभिलेख से ज्ञात होता है कि प्रतिहार सामत काकुका ने इसे निर्मित कराया है।[263] मथुरा से ही इसी काल की चतुर्भुजी मूर्ति प्राप्त हुयी है। इसकी एक महत्वपूर्ण विशिष्टता यह है कि मूर्ति मे तीन नेत्र अकित हैं। कश्मीर से नृत्यगणपति की अलकृत प्रतिमा भी इस काल की विशिष्टता को अभिव्यक्त करती है। इसका काल आठवी शताब्दी माना गया है।[264]

नवी शताब्दी की मूर्तियॉ विशेष तौर पर मथुरा, औरगाबाद, इदौर, चित्तौड़गढ़, बैजनाथ (इलाहाबाद सग्रहालय) और बिहार से प्राप्त हुई हैं। ये चतुर्भुजी, षडभुजी व अष्टभुजी है। ये मूर्तिकला मे गणेश के विकसित स्वरूप का प्रतिबिम्बन करती हैं।[265]

पूर्व मध्यकाल तक आते-आते गणपति प्रतिमा को प्रतिमाशास्त्रीय लक्षणो से युक्त, स्थानक, आसन और नृत्य की विभिन्न मुद्राओ मे दिखाया जाने लगा। शास्त्रो मे वर्णित गणपति प्रतिमाओ के अनेक प्रकार, जैसे उच्छिष्ट गणपति, लक्ष्मी गणपति, हेरब गणपति आदि का भी मूर्तन होने लगा।[266] उड़ीसा के मयूरभज जनपद से प्राप्त आरम्भिक मध्ययुगीन प्रतिमा मे चतुर्भुजी गणपति को विभिन्न अलकरणो से युक्त कमल पीठिका पर अभग मुद्रा मे खडे प्रदर्शित किया गया है। उनके दाहिने हाथो मे अक्षमाल और स्वदन्त तथा बायी ओर के एक हाथ मे मोदक पात्र है। दूसरे हाथ की वस्तु अस्पष्ट है। वे सर्प यज्ञोपवीत धारी हैं। मस्तक के ऊपर व्यवस्थित जटा प्रदर्शित है।[267] उड़ीसा से ही प्राप्त गणपति की एक नृत्य प्रतिमा मे अष्टभुजी गणपति को दुहरे कमलासन पर नृत्यमुद्रा मे प्रदर्शित किया गया हैं।[268] उनके सामने का एक दाहिना हाथ गजहस्त मुद्रा मे है। ऊपर उठे हुये दो हाथो मे सर्प पकड़े हैं, जिसके बीच का भाग खण्डित है। अन्य हाथो मे मोदक पात्र, अक्षमाल और स्वदन्त हैं। शेष हाथ खण्डित है। इस प्रतिमा मे प्रतिमाशास्त्रीय लक्षणो के निर्वाह के ही साथ उत्कृष्ट शिल्प का भी दर्शन होता है।[269]

---

263 ए० एस० आई० ए० आर०, 1906-07, पृ० 41

264 नागर, शातिलाल, वही, पृ० 103

265 वही, पृ० 103

266 गुप्ता, एस० के०, एलीफैन्ट इन इण्डियन आर्ट एण्ड मायथोलाजी, दिल्ली, 1983, पृ० 55

267 बैनर्जी, जे० एन०, वही, पृ० 360

268 वही, पृ० 360-61

269 वही, पृ० 361

आठवी-नवी शताब्दी की पटना सग्रहालय मे सुरक्षित गणपति प्रतिमा मे षड्भुजी गणेश को एक पीठिका पर नृत्य मुद्रा मे प्रभावशाली ढग से दिखाया गया हैं।[270] किरीट मुकुटधारी गणेश का सिर दाहिनी ओर मुड़ा हुआ है। किन्तु उनकी शुण्डा बायी ओर मुड़कर बाये हाथ मे रखे मोदक को स्पर्श कर रही है। दाहिनी ओर के दो हाथो मे परशु और पाश है तथा एक हाथ उदर का स्पर्श कर रहा है। बाये हाथो मे सर्प, पुस्तक और मोदक हैं। बाये पार्श्व मे दो स्त्री मूर्तियो को भी नृत्य मुद्रा मे प्रदर्शित किया गया है। पादपीठ पर उनके वाहन मूषक को तथा ऊपर दोनो ओर हार लेकर उडती हुई दो अप्सराओ को दिखाया गया है। इसी प्रकार नृत्तगणपति की बगाल से प्राप्त एक प्रभावशाली प्रतिमा मे अष्टभुजी गणपति को नृत्य मुद्रा मे अति कलात्मक ढग से प्रदर्शित किया गया है।[271]

दसवी शताब्दी की गणेश मूर्तियो मे कुछ अत्यत महत्वपूर्ण है, जो खजुराहो से प्राप्त हुयी है।[272] इस काल की एक अन्य महत्वपूर्ण प्रतिमा भेड़ाघाट से भी प्राप्त हुई है (चित्र-13)।[273] खजुराहो से नृत्त गणपति की द्विभुजी, चतुर्भुजी, अष्टभुजी, दशभुजी, द्वाद्वशभुजी और षोड्शभुजी प्रतिमाये भी प्राप्त हुई हैं। इन प्रतिमाओ मे हार ग्रैवेयक, कौस्तुभणि, ककण, मेखला, पैजनी आदि से अलकृत गजमुख, शूर्पकर्ण, एकदन्ती, सर्पयज्ञोपवीत धारी गणपति को नृत्य करते हुए, विभिन्न मुद्राओ मे प्रदर्शित किया गया है। कुछ प्रतिमाओ मे वे वीरभद्र और सप्त मातृकाओ के साथ नृत्य मुद्रा मे प्रदर्शित हैं।[274]

ग्यारहवी शताब्दी की पाडिचेरी की स्थानक पर आसीन मूर्ति, राजशाही की षड्मुखी नृत्तगणपति जो दुहरे कमलासन पर खड़े हैं, गगकोण्डचोलपुरम् की नृत्तगणपति, राजस्थान के एकलिग मदिर मे स्थित गणेश प्रतिमाये महत्वपूर्ण हैं।[275]

बारहवी शताब्दी की गणेश प्रतिमा आलमपुर सग्रहालय मे सरक्षित है, जो बैठी हुई मुद्रा मे है। यह गणेश का भव्य व विकसित स्वरूप प्रस्तुत करती है।[276] हेलेविद के होपसलेश्वर

---

270 पटना सग्रहालय, न० 10601

271 गागुली, एम , हैन्डबुक टू द स्कल्पचर्स इन द म्यूजियम ऑफ बगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता, 1922, पृ० 81-82

272 श्रीवास्तव, बी० बी०, प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एव मूर्तिकला, वाराणसी, 1998, पृ० 147

273 नागर, शातिलाल, वही, पृ० 103

274 अवस्थी, रामाश्रय, खजुराहो की देव प्रतिमाये, आगरा, 1967, पृ० 41-46

275 नागर, शातिलाल, वही, पृ० 104

276 वही, पृ० 105

मदिर से प्राप्त बारहवी-तेरहवी शताब्दी की प्रतिमा मे करण्ड-मुकुट तथा अन्य आभूषणो से अलकृत अष्टभुजी गणपति को नृत्य मुद्रा मे प्रभावशाली ढग से प्रस्तुत किया गया है।[277] उनके हाथो मे परशु, पाश, मोदक-पात्र, दन्त, सर्प, पद्य स्थित हैं। इस प्रतिमा मे अजलिबद्ध-मुद्रा मे बैठे भक्तो तथा वाद्य यन्त्रो को बजाते हुये अनुचरो को भी प्रदर्शित किया गया है।नीचे मोदक खाने मे व्यस्त मूषक भी अकित हैं।

मध्यकालीन भारत के विभिन्न भागो मे गणेश और उनकी शक्ति की आलिगन प्रतिमाये भी प्राप्त हुई है, जिनमे गणेश को कही पर अपनी शक्ति विघ्नेश्वरी और कही लक्ष्मी के साथ आलिगन मुद्रा मे प्रदर्शित किया गया है।[278] इसीप्रकार शास्त्रो मे वर्णित गणपति प्रतिमाओ के अनेक प्रकारो, जैसे उन्मत्त गणपति, उच्छिष्ट गणपति, महागणपति, हेरम्ब गणपति आदि की[279] प्रतिमाये भी प्रतिमाशास्त्रीय आधार पर निर्मित की गयी हैं। इन मूर्तियो के दिग्दर्शन से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि गाणपत्य सम्प्रदाय का उत्तरोत्तर विकास होने के कारण साहित्य मे गणेश का जितना महत्वपूर्ण व विकसित स्वरूप परिलक्षित होता है उसकी पुष्टि उस काल की मूर्तिकला मे गणेश के स्थान, मुद्राओ, अलकरणो तथा सख्या से स्वत हो जाती है।

लौकिक गणेश[280] से सम्बन्धित प्रतिमाओ को 18 वर्गो मे बॉटा जा सकता है।[281] इनमे छह देवी और गणेश की सयुक्त आकृतियाँ हैं, जो शक्ति गणपति के रूप मे जानी जाती है। इनके नाम हैं–लक्ष्मी गणपति, उच्छिष्ट गणपति, महागणपति, उर्ध्वगणपति, पिंगला गणपति, शक्ति गणपति। अन्य बारह प्रकार की गणेश प्रतिमाये उनके विशिष्ट स्वरूप का प्रदर्शन करती है जिन्हे हेरम्ब, प्रसन्नागणपति, ध्वजगणपति, उन्मत्त गणपति, उच्छिष्ट गणपति, विघ्नराज, भुवनेश गणपति, नृत्तगणपति, हरिद्रागणपति[282], बाल गणपति, तरुण गणपति, भक्ति विघ्नेश्वर, वीर विघ्नेश्वर नाम दिया गया है। इन विभिन्न प्रकारो मे उनके हाथो की सख्या भिन्न-भिन्न है। 2, 4, 6, 8, 10, 16 की सख्या है। हाथो मे धारण की हुई वस्तुओ मे किसी प्रकार की

---

277 राव, गोपीनाथ, एलिमेन्ट्स ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी, खण्ड 1, भाग 1, मद्रास, 1914, पृ० 66-67

278 वही, पृ० 55-57

279 शास्त्री, एच० के०, साउथ इडियन इमेजेज ऑफ गॉड्स एण्ड गोडेसेज, पृ० 173, भट्टसात्री, एन० के०, आइक्नोग्राफी ऑफ बुद्धिस्ट एण्ड ब्रह्मनिकल स्कल्पचर्स इन द डकन म्यूजियम, पृ० 146-47, राव, गोपीनाथ, वही, न० XI-XIV

280 कृष्णन, युवराज, गणेश अनरिवेलिग एन एनिग्मा, दिल्ली, 1999, पृ० 89

281 गुप्ता, आर० एस०, आइक्नोग्राफी ऑफ हिन्दूज, बुद्धिस्ट एण्ड जैन्स, बाम्बे, 1980, पृ० 80-81

282 कृष्णन, युवराज, वही, पृ० 87

समानता नही है। अलग-अलग स्वरूपो ने अलग-अलग आयुध धारण किया है। इनमे एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि गणेश की शक्तियॉ हस्तिमुख नही, अपितु मानवाकृतियॉ हैं।[283]

मदिर वास्तुकला मे गणेश के विकास का क्रम भी विचार योग्य है। मदिर वास्तु-शास्त्र मे गणेश आरम्भ मे द्वार देवताओ के साथ अकित हुये। इन्हे द्वार देवता के नाम से अभिहित किया गया। पौराणिक सदर्भो मे भी गणेश को शिव के अनुचरो के साथ रखा गया था, जो मनुष्यो के लिये आपदाये उत्पन्न करते हैं।[284] इन्हे मदिरो के द्वार पर इसलिए अकित किया गया ताकि वहॉ से गर्भगृह जाने से पहले पूजा अर्चना कर उन्हे प्रसन्न किया जा सके।[285] इसप्रकार गणेश का प्रथम अकन मदिर के मुख्य द्वार या महाद्वार पर हुआ। यह मदिर के मुख्य द्वार के स्तम्भो अथवा उत्तरग (सिर दल) पर मिलता है।बाद मे उनका अकन अग्रमडप के सामने अवस्थित मण्डप के स्तम्भो मे मूर्तियो के साथ किया गया। गणेश धीरे-धीरे पार्श्व देवता के रूप मे विकसित हुए। शिव मदिर के पार्श्व देवताओ मे पार्वती, महिषासुरमर्दिनी, कार्तिकेय व गणेश थे। यहॉ पर गणेश बहुभुजी तथा गणो और भूतो के साथ अकित हैं।[286] जब से गणेश द्वार देवता के रूप मे मदिर वास्तुकला मे अकित हुये उस समय उनके साथ द्वार पर कुबेर, भैरव व पार्वती दर्शाये गये हैं। गणेश को विभिन्न मदिरो के गवाक्षो मे भी दर्शाया गया है। मदिर के गवाक्षो मे इनके अतिरिक्त सूर्य, पार्वती, महिषासुरमर्दिनी भी अकित हैं। दिक्पालो के साथ भी गणेश का अकन हुआ है। ये हैं इन्द्र, वरुण, अग्नि व कुबेर।[287] कालान्तर मे गणेश को 'ललाटबिम्ब' मे भी स्थान मिला है, जो मदिर की धार्मिक सम्बद्धता को अभिव्यक्त करते हैं। कुछ अन्य देवताओ का भी अकन इस सन्दर्भ मे होता था जैसे लकुलीश, अनतशायी तथा गरुण आदि।[288]

देवागना देसाई ने शैव मदिर (कदरिया विश्वनाथ) मे वाह्य भित्ति मे वेदिबध के ऊपर निर्मित देवकोष्ठ मे सप्त मातृकाओ के साथ गणेश का अकन शैव सिद्धान्त की धार्मिक मान्यताओ के अनुरूप बताया है। वाह्य प्रदक्षिणा क्रम मे गणेश की मूर्ति का निश्चित स्थान पर अकन शैव एव शाक्त सम्प्रदायो के साथ उनके सहअस्तित्व एव समायोजन के साथ-साथ उनके महत्व को भी रेखाकित करता है।[289]

---

283 कृष्णन, युवराज, गणेश अनरिवेलिग एन एनिग्मा, दिल्ली, 1999, पृ० 87, पाद टिप्पणी-17

284 वही, पृ० 91

285 वही, सेक्शन IV मे दी गयी मदिरो की सूची, पृ० 96

286 वही, पृ० 91

287 वही, पृ० 91, पाद-टिप्पणी-19

288 वही, पाद-टिप्पणी-20

289 देसाई, देवागना, रिलिजियस इमेजरी ऑफ खजुराहो, बम्बई, 1997, पृ० 135

गणेश के प्राचीन मंदिर

गणेश पुराण मे गणेश के मदिरो के वास्तुशास्त्र से सन्दर्भित कोई विशिष्ट जानकारी वर्णित नही है। गणेश के मदिरो का निर्माण, उनका पुनरुद्धार, मणिमुक्तायुक्त एव चार दरवाजो वाले मदिरो का मात्र उल्लेख भर है। मदिर-स्थापत्य की विशिष्टताओ का विवरण इसमे नही प्राप्त होता। गणपति के कुछ प्रारम्भिक मदिरो का उल्लेख विभिन्न स्थलो पर है। मध्य प्रदेश मे बिलासपुर के निकट राजा रतनदेव तृतीय (1181-1182 ई) का खरोद प्रस्तर अभिलेख प्राप्त हुआ है जिसमे कलचुरि चेदि (सवत् 933) का उल्लेख है। इस अभिलेख मे गणेश के दो मदिरो के निर्माण की चर्चा है। अभिलेख के 34वे श्लोक मे जगलो मे स्थिल वडाड स्थल पर हेरम्ब के मदिर निर्माण तथा 36वे श्लोक मे रतनपुर के निकट टूण्टा गणपति के मण्डल का उल्लेख हुआ है। [290] यद्यपि अनिता रैना का विचार है कि टूण्टा गणपति वस्तुत गणपति का कोई स्वरूप नही अपितु उस स्थल विशेष का नाम होगा, जहॉ पर वह मन्दिर बनाया गया होगा। [291] कल्चुरि वश के शासको (9वी-10वी शताब्दी) के काल के उत्तर प्रदेश के कुमाऊॅ जिले मे सरयू नदी के तट पर कुछ पुराने मदिरो के अवशेष प्राप्त हुए है। वही से गणपति की प्रारम्भिक मूर्तियॉ भी प्राप्त हुई हैं। [292] यह विवादित है कि इन मूर्तियो की स्थापना स्वतत्र मदिरो मे हुयी थी अथवा ये अन्य देवताओ के साथ ही मन्दिर मे स्थापित थी।[293] 11वी शताब्दी के महाराष्ट्र और कर्नाटक क्षेत्र के शिलाहार शासक [294] तथा स्थानीय मोन्धा शासको [295] के अभिलेखो मे गणेश के पूजन का उल्लेख विभिन्न स्थलो पर हुआ है। सिलाहार शासको के ही कोकण क्षेत्र से गणेश के प्राचीनतम मदिर के अस्तित्व का प्रमाण मिला है। [296]

कर्नाटक के उत्तरी कन्नाड जिले के गोकर्ण मे महागणपति का महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध मदिर है जो परम्परानुसार कदम्ब वश (5वी-6ठी शताब्दी) के काल से सम्बद्ध किया जा सकता है। गोकर्ण मे महाबलेश्वर का प्रमुख मदिर तथा शिवतीर्थ है। मदिर का स्थापत्य

---

290 मिराशी, वी० वी० सपा० इन्स्क्रिप्शन ऑफ द कलचुरि चेदिएरा, कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इन्डिकाज, खण्ड 4, भाग 2, पृ० 535

291 थापन, अनिता रैना, वही, पृ० 177

292 लिप्पे, अश्विन डे, इण्डियन मेडिवल स्कल्पचर, पृ० 15

293 थापन, अनिता रैना, वही, पृ० 177

294 ई० आई०, खण्ड-3, सख्या-37, पृ० 262-76, सी० आई० आई०, खण्ड-4, 1977, पृ० 36-44 और 44-54

295 थापन, अनिता रैना, वही, पृ० 177

296 वही, पृ० 178

अत्यन्त प्राचीन है तथा कदम्ब कालीन स्थापत्य को प्रतिबिम्बित करता है। पूज्यदेव गणपति की मूर्ति खड़ी मुद्रा मे तथा द्विभुजी है। यह मूर्ति गणपति के प्राचीन मदिर मे स्थित उनकी मूर्ति के सदृश है जो इडागुन्जी जिले के उप्पीन-पत्तन [297] गणपति मदिर मे स्थापित है। मंदिर प्रारभिक कदम्ब काल मे अस्तित्व मे था, यद्यपि इसका कई बार जीर्णोद्धार कराया गया। यह भी स्पष्ट नही है कि इस मूर्ति की स्थापना स्वतन्त्र गणपति मदिर मे हुयी थी अथवा शिव मदिर का ही एक हिस्सा है। [298] इनके अतिरिक्त कुछ अन्य महत्वपूर्ण मदिरो का उल्लेख भी विभिन्न स्थलो से प्राप्त होता है। 14वी शताब्दी का मोरेगाव का गणेश मदिर, 14वी शताब्दी का ही चिंचवाड का मदिर, गणेश के स्वतन्त्र मदिरो की शृखला मे अग्रणी माने जा सकते है। मध्य प्रदेश मे उज्जैन से, राजस्थान मे नागौर व रायपुर से, बिहार मे वैद्यनाथ, गुजरात मे ढोकला, उत्तर प्रदेश, वाराणसी मे ढुढिराज मदिर गणेश के प्रसिद्ध व महत्वपूर्ण स्वतत्र मदिरो [299] के अतर्गत रखे जाते है।

दक्षिण भारत मे गणेश के स्वतत्र मदिर त्रिचनापल्ली मे जम्बूकेश्वर मदिर, तमिलनाडु मे तिरुच्चेङ्गट्टाऊडि तथा शुचीन्द्रम, कर्नाटक मे कासरागोड व इडगुजी तथा हम्पी, आन्ध्रप्रदेश के भ्रदाचलम मदिर प्रमुख है। [300] दक्षिण भारत मे गणेश की मूर्तियो मे चमकते हुए मुकुट का विशिष्टतापूर्वक अकन प्राप्त होता है, जिसे करडमुकुट कहा गया है। स्पष्ट है कि गणेश के स्वतत्र मदिरो का विकास 14वी शताब्दी के बाद ही प्रारभ हुआ होगा।

उत्तरपुराणकालीन समाज मे पचदेवोपासना प्रचलित हो रही थी। पचदेवो के पूजन के अतर्गत विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणपति लोकप्रिय हो रहे थे। इस समय गणेश को शिव व विष्णु जैसे उच्च तथा वैदिक देवो के साथ स्थापित किया जाने लगा। इसी काल मे उत्तर व दक्षिण भारत मे गणेश का स्तर और उच्च हुआ तथा उनकी विशाल प्रतिमाओ के निर्माण की गति मे तीव्रता आयी। गणेश की विशाल मूर्तियो के साथ-साथ उनके स्वतत्र व भव्य मदिरो के निर्माण की परम्परा भी दिखायी देती है। इस साक्ष्य के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है कि गाणपत्य सप्रदाय समाज मे इस काल तक पूरी तरह स्थापित एव लोकप्रिय हो चुका था।

□□

---

297 गजेटियर ऑफ इण्डिया, कर्नाटक स्टेट, उत्तर कन्नाड जिला, पृ० 970

298 थापन, अनिता रैना, वही, पृ० 177

299 कृष्णन, युवराज, गणेश अनरिवेलिंग एन एनिग्मा, पृ० 92

300 वही, पृ० 92

षष्ठ अध्याय

उपसंहार

षष्ठ अध्याय

उपसंहार

गणेश पुराण मे पूर्वमध्यकालीन समाज मे प्रचलित सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सास्कृतिक तत्वो का निरूपण हुआ है। इन विशेष सन्दर्भो मे गणेश की आवश्यकता और महत्व को प्रतिपादित किया गया है। गणेश की प्राचीनता को वैदिक परम्परा से जोड कर उसे तत्कालीन अन्य देवो से श्रेष्ठ और शीर्ष स्थान प्रदान किया गया है।

पूर्वमध्यकाल के भय, विश्रृखलता और आतक के समय मे विविध धार्मिक सम्प्रदायो के पूर्ववर्ती मूल्य निरर्थक प्रतीत होने लगे थे। समाज को ऐसे धर्म की आवश्यकता थी जो उसे विघ्न एव विपत्ति से न केवल मुक्त करा सके अपितु उसे भौतिक सरक्षण भी दे सके। यदि पश्चिमोत्तर भारत की पूर्वमध्यकालीन राजनीतिक एव सामाजिक परिस्थितियो की पृष्ठभूमि मे गणेश पुराण तथा उसमे वर्णित धर्म का ऐतिहासिक विश्लेषण किया जाये तो यह स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र मे गणेश को प्रधान देवता का स्थान देते हुए एक सर्वथा नवीन धार्मिक सम्प्रदाय, तत्कालीन सामाजिक एव राजनीतिक परिस्थितियो के कारण विकसित हुआ, जिसमे गणेश के महत्व को समाज मे प्रतिस्थापित कर उनके विघ्नहर्ता स्वरूप को जन समुदाय के समक्ष प्रचारित किया गया। पूर्वमध्यकालीन परिवर्तित सामाजिक एव धार्मिक दबाव मे गणेश के प्रचार-प्रसार ने गाणपत्य सम्प्रदाय का विकास किया। गणेश पुराण मे इस सम्प्रदाय और उससे सन्दर्भित धर्म का विस्तृत विवेचन-स्थापन हुआ है। गणेश पुराण का मुख्य उद्देश्य गणेश के महत्व को बताना तथा तत्कालीन समाज मे उन्हे सर्वोपरि देव के रूप मे स्थापित करना था। गणेश की स्वरूपगत अवधारणा के साथ-साथ उनकी आध्यात्मिक एव नैतिक मान्यता का भी विकास हो रहा था। भारतीय धर्म की समन्वयशील प्रवृत्ति ने समाज मे गणेश की उपासना के सन्दर्भ मे भी विभिन्न परम्पराओ को समन्वित करने का प्रयास किया। गणेश को सर्वश्रेष्ठ देव के रूप मे स्थापित करने के लिये प्राचीन एव नवीन तत्वो को एक स्थान पर सुव्यवस्थित करने का महत्वपूर्ण कार्य भी इस रचना ने किया है।

गणेश पुराण का काल, जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, हाजरा महोदय ने 1100-1400 ई० निर्धारित किया है। यह मत सर्वथा तर्कसगत है, क्योकि गणेश पुराण मे उत्तर पूर्वमध्यकालीन सामाजिक, राजनैतिक तथा सास्कृतिक दशा स्पष्टत. प्रतिबिम्बित होती है।

गणेश पुराण मे उल्लिखित सामाजिक परम्पराओ, समाज व काल के अनुसार परिवर्तित हो रही वैदिक मान्यताओ का बोध कराती है। आश्रम व्यवस्था का उल्लेख इसमे प्राप्त होता है, किन्तु इसके प्रति समाज मे प्रतिबद्धता नही दिखायी देती। समाज मे चातुर्वर्ण्य धारणा व्याप्त थी। ब्राह्मण अपनी तप शक्ति तथा बौद्धिक उपलब्धियो के कारण विशेष सम्मान पाया हुआ वर्ग था। गाणपत्य धर्म के प्रचार-प्रसार मे उसका विशेष योगदान रहा । क्षत्रियो को भी सम्मानप्रद स्थान मिला था। उनका स्थान ब्राह्मणो के बाद का है। वैश्यो व शूद्रो की स्थिति परिवर्तनशील थी।

पूर्वमध्यकाल मे राजनीतिक और सास्कृतिक दोनो ही क्षेत्रो मे ऐसी प्रवृत्तियो का प्रादुर्भाव हुआ जिसमे नवीन मूल्य व मान्यताओ की प्रतिस्थापना एव अनिवार्यता पर बल दिया गया। इस काल मे भूमि अनुदानो की परम्परा ने सामती जीवन पद्धति का प्रारम्भ किया, साथ ही जमीन वाले एक मध्यवर्ती वर्ग का विकास भी किया। ब्राह्मणो को भूमि अनुदान दिये जाने से यह वर्ग विकसित हुआ। उन्हे गॉवो मे इस भूमि पर पूरा मालिकाना हक मिला। इन भूमि अनुदानो ने, व्यापारिक गतिविधियो के ह्रास, काव्य-साहित्य, क्षेत्रीय भाषाओ, स्थानीय कला, सम्प्रदायो आदि के उदय मे महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। इन क्षेत्रो मे नये विकास-अकुर उभरते हुए दिखाई देते है। इसी युग के आरभ मे कुछ क्षेत्रीय जातीयताओ का भी विकास हुआ, जो स्थानीय राजवशीय शासन, भूमि अनुदान, लिपि, भाषा, कला, त्योहारो और तीर्थ-स्थानो पर आधारित थी। गुप्तोत्तर काल मे नगरीकरण का ह्रास शुरू हुआ और यह प्रक्रिया पूर्वमध्यकाल के उत्तरखण्ड तक चलती रही। इसने महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तनो को जन्म दिया। जातियो की सख्या मे वृद्धि होने लगी। कुछ गोत्र आधारित इकाइयो जैसे, जन, विश् , ग्राम, कुल, जाति आदि के आधार पर सामाजिक स्तरीकरण होने लगा। जातियो मे भी उपजातियाँ विकसित हो रही थी। सामंतवादी प्रवृत्ति के अभ्युदय के कारण वैश्यो का पतन हो रहा था। ब्राह्मण एव क्षत्रियो के कृषि एव वाणिज्य मे प्रवृत्त होने के कारण वैश्यो की स्थिति ह्रासमान हो गयी थी। शूद्रो के उत्थान मे धार्मिक कारक विशेष सहायक थे। यद्यपि वे पूर्णतया स्वतत्र नही थे। जाति बहुगुणन के कारण चरवाहा, कृषक, आभीर, भिल्ल, सोनार, मोच आदि उपजातियो का प्रादुर्भाव हुआ था। पूर्व मध्यकाल मे सामन्तोपसामन्तीकरण के कारण आर्थिक इकाइयो का आकार अपेक्षाकृत छोटा हो गया था। मुद्राओ के अभाव से ह्रासोन्मुखी अर्थव्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। गणेश पुराण मे सामाजिक व आर्थिक क्षेत्रो मे होने वाला यह परिवर्तन तथा इनका बदलता स्वरूप स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस परिवर्तन-शील मूल्यो के दौर मे गणेश उपासको ने समाज के उस वर्ग को भी स्वय से जोड़ने का प्रयास किया जो सामाजिक स्तरीकरण मे नीचे के स्तर से ऊपर आने का प्रयास कर रहा था। वह

वर्ग शूद्रो का था। गणेश पुराण मे स्पष्ट वर्णित है कि इस पुराण को सुनने वाला शूद्र क्रमश उच्च वर्ण को हासित कर सकता है। एक स्थल पर कहा गया है कि गणेश पुराण के अध्ययन से शूद्र वैश्य, वैश्य क्षत्रिय तथा क्षत्रिय ब्राह्मण वर्ण को प्राप्त कर सकता है। शूद्र गणेश पुराण मे तीर्थो के दर्शन की स्वतन्त्रता के योग्य माने गये हैं। भिल्ल, मल्लाह और चाडाल जैसी उपजातियो को भी गणेश पूजन मे स्थान प्राप्त था। स्त्रियो के साम्पत्तिक तथा धार्मिक अधिकार भी सुरक्षित होने का साक्ष्य मिलता है। स्त्रियो द्वारा जप, तप, पूजा-हवन आदि किये जाने की परम्परा का उल्लेख भी प्राप्त होता है। दूसरी ओर सती प्रथा तथा पति द्वारा घर से निकाल दिये जाने का भी उल्लेख मिलता है। कई स्थलो पर उनके नैतिक पतन से सन्दर्भित कथाये भी प्राप्त होती है जिसके आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस युग मे स्त्रियो के प्रति मिला-जुला दृष्टिकोण रहा होगा।

सामन्ती प्रथा के उदय और विकास का परिणाम भारतीय शासन पद्धति के लिये हानिकारक सिद्ध हुआ। सामन्त अपने क्षेत्र के पूर्ण शासकीय अधिकारो व तत्वो से युक्त होते थे। फलत केन्द्रीय सत्ता के कमजोर होते ही अपनी शक्ति और राज्य क्षेत्र बढ़ाने का प्रयत्न करने लगे थे। जिसके परिणामस्वरूप भारतीय राजनीति मे प्रशासनिक ढीलापन, केन्द्रीय सत्ता का ह्रास, अस्थिरता, विदेशी आक्रमणो को निमत्रण देने वाली स्थिति आदि कमजोरियॉ उत्पन्न हो गयी। इन प्रवृत्तियो ने सामाजिक और धार्मिक स्तर पर गतिरोध, सकोच, रूढिवादिता और अधविश्वास की भावनाओ को जन्म दिया। विभिन्न वर्णो मे जातियो-उपजातियो की बढ़ती हुई सख्या, वर्णेतरो, अत्पृश्यो और अन्त्यजो की स्थिति से सामाजिक भेदोपभेद व दूरी बढ़ने लगी। कर्म की प्रधानता के स्थान पर जन्म की प्रधानता हो गयी। धीरे-धीरे समाज रूढ़िगत, प्रतिक्रियावादी और पुरातनवादी हो गया और नवीन परिस्थितियो के मुकाबले के लिये उसके पास विकल्पो की कमी हो गयी। इस सबके परिणामस्वरूप नगरीय बाजार अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी और इसके स्थान पर धीरे-धीरे बड़े गॉवो की निर्वाह अर्थव्यवस्था पनपी। साथ ही छोटे-छोटे वशागत केन्द्र स्थापित हो गये जिनकी वजह से बाजारो की आवश्यकता कम से कमतर होती गयी। राजकोषीय और प्रशासनिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण इस काल की प्रमुख विशेषता थी। जागीरो की स्थापना या शासकीय अधिकार क्षेत्र वाली व्यक्तिगत माफी की जमीनो और बेशी उत्पादन करने वाली स्वायत्तशासी इकाइयो का निर्माण सातवी शताब्दी के बाद तेजी से होने लगा था। गॉवो मे आ बसे कुछ गिने-चुने ब्राह्मण परिवार राज्य की ओर से भूमिकर से मिली छूट के बलबूते पर खूब फले-फूले। माफीदारो के ही बेशी उत्पादन के प्रबन्धक बन जाने और उसका सीधे ही अपने लिये विनियोजन कर लेने की स्थिति कालान्तर मे स्पष्टत· दिखायी देती है। इसी तरह से, यद्यपि कुशल कारीगरो के नगरो

को छोडकर गॉवो मे जा बसने से ग्रामीण क्षेत्रो मे श्रमपूर्ति की मात्रा मे पर्याप्त वृद्धि हो गयी किंतु इस श्रम शक्ति की बधुआ कृषि मजदूरो के रूप मे परिवर्तन होने की शुरूआत आठवी-नौवी शताब्दी मे प्रारम्भ हो गयी। आर्थिक क्षेत्र मे हुए उपर्युक्त विकास के फलस्वरूप धार्मिक क्षेत्र मे भी यह परिवर्तन देखने मे आया कि पहले से प्रचलित यज्ञ और बलि आधारित उपासना पद्धति के स्थान पर अब मदिर आधारित सम्प्रदाय प्रधान पूजा पद्धतियॉ शुरू हुई और दान-दक्षिणा लेने-देने तथा भेट-पूजा चढाने व ग्रहण करने के नए-नए तरीके प्रचलित हो गये।

सक्षेप मे कहा जा सकता है कि परपरागत ब्राह्मणवादी व्यवस्था मे भौतिक साधनो और आध्यात्मिक उन्नति के परस्पर सहयोग पर आधारित जो नया सबध विकसित हुआ उसने ब्राह्मण, पुरोहित और यजमान को परस्पर एक सूत्र मे बॉध दिया। परन्तु जैसे-जैसे उत्पादन के प्रकार बदलते गये और तदनुसार बेशी उत्पादन के वितरण की व्यवस्था के तरीको मे परिवर्तन आता गया वैसे-वैसे पुरोहितो और यजमानो के परस्पर सम्बन्धो मे भी बदलाव आता रहा। फिर भी बेशी उत्पादन सामग्री पुरोहितो के ही निमित्त विनियोजित होती रही। यह तथ्य इन बातो से प्रगट हो जाता है कि तब पुराहितो ने दान-दक्षिणा प्राप्त करने के लिये नए-नए सिद्धान्त प्रतिपादित किये तथा इस विचारधारा को प्रसारित किया कि पुरोहितो और यजमानो का परस्पर सबध अटूट और शाश्वत है।

उपर्युक्त सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक स्थितियो का प्रतिबिम्बन गणेश पुराण मे स्पष्टत· हो रहा है। विवेचित पुराण मे भूमिदान, ग्रामदान की प्रथा ब्राह्मणो के सन्दर्भ मे बहुतायत से वर्णित है। यत्र-तत्र मत्रियो को भूदान का उल्लेख भी प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त स्वर्ण, आभूषण, रत्न आदि दान करने का भी वर्णन प्राप्त होता है जो तत्कालीन समाज मे व्याप्त सामन्तवादी प्रकृति का द्योतक है। मुद्राओ का उल्लेख मात्र एक स्थल पर हुआ है जो उत्तरपूर्व मध्यकाल के प्रारम्भिक चरण की बद एव गतिहीन अर्थव्यवस्था का परिचायक है। गणेश पुराण में दास, धर्म, पूजा, व्रत, उपासना आदि का पूर्ण कर्मकाण्डीय पक्ष निरूपित है जो तत्कालीन समाज मे ब्राह्मणो की महत्वपूर्ण स्थिति का द्योतक है।

पूर्व मध्यकाल के उत्तरकालीन चरण मे ग्रामीण क्षेत्रो मे मन्दिरो का जाल-सा बिछ गया तथा इनके निर्माण मे पत्थरो का उपयोग शुरू हुआ। दूसरी ओर, बेशी उत्पादो का अकूत सग्रह भी होने लगा। पण्य वस्तुओ के निर्माण मे भी तेजी आयी। जैसे-जैसे कृषि उत्पादो और पण्य वस्तुओ के निर्माण मे वृद्धि होती गयी, वैसे-वैसे उत्पादको और विनियोजको के सम्बन्ध पिरामिडी अधिक्रम वाले बनते गये अर्थात् निचले स्तर पर कई उत्पादनकर्त्ता होते थे, जिनके बेशी उत्पाद का सचय कुछ ही उच्चस्तरीय विनियोजको के हाथो मे होता था। ग्यारहवी

शताब्दी के आते-आते राजनीतिक अधिकार प्राप्त निजी क्षेत्रो वाले सामाजिक वस्तुओ के विनियोजको की भूमिका समाप्त हुई और तब आर्थिक हितो वाले कुछ नये वर्ग उभरे, जिनका प्रतिनिधित्व नगरीय बाजार व्यवस्था के माध्यम से शुरू हुआ। किसान और दस्तकार वर्ग इस नई व्यवस्था से जुड़ गये और इस तरह से उन्होने अपने माल की खपत के लिये बाजारो मे आना-जाना आरभ किया। फलस्वरूप कई नये व्यापारी वर्ग ने जन्म लिया। ये व्यापारी वर्ग अपने सामूहिक हितो की रक्षा हेतु मिल बैठते थे तथा जो निर्णय लिया जाता उस पर साझा कार्यवाही भी करने लगे। सभवत पुन श्रेणी प्रमुखो का अस्तित्व महत्वपूर्ण स्तर पर उभरा होगा। गणेश पुराण मे अर्थव्यवस्था का यह पक्ष स्पष्टत परिलक्षित होता है। इसमे कई स्थलो पर श्रेणी प्रमुखो को मत्री के सदृश ही महत्व प्रदान किया गया है, जिससे उस काल के व्यापार-वाणिज्य के विकास व उन्नत स्थिति का द्योतन होता है।

गणेश पुराण मे वैदिक 'गणपति' की परम्परा से गणेश को जोड़ने का प्रयास किया गया है। साथ ही अनेक धार्मिक सम्प्रदायो, जैसे वैषानस, भागवत, सात्वक, पाचरात्र, शैव, पाशुपत, कालामुख, भैरव, शाक्त, सौर, जैन, अर्हत इत्यादि का भी उल्लेख मिलता है। परन्तु इस पुराण का गणेश की महत्ता के प्रति अत्यधिक सचेष्ट होना इसकी धार्मिक साम्प्रदायिकता की प्रवृत्ति का परिचायक है। वैष्णव, सौर, शाक्त और शैव सम्प्रदाय के उपासको द्वारा गणेश को सर्वोपरि स्वीकार करना तथा विष्णु, शिव, पार्वती व अन्य देवी-देवताओ को गणेश के आश्रित के रूप मे वर्णन किये जाने के आधार पर आर० सी० हाजरा ने यह निष्कर्ष निकाला है कि सभवत· यही चारो सम्प्रदाय गाणपत्य सम्प्रदाय के प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी थे। गणेश पुराण मे 'होरा' तथा 'राशियो' के नाम प्राप्त होते हैं। 'गणेश गीता' अश पर भगवद्गीता का स्पष्टत प्रभाव दिखायी देता है। इस पुराण से ज्ञात होता है कि जिस समय इसकी रचना हुयी, उस समय पचायतन पूजा प्रचलित थी। गजानन की उत्पत्ति से सम्बन्धित अध्यायो मे तात्रिक प्रभाव दिखायी देता है। यह उल्लेखनीय है कि मुद्‌गल पुराण तथा शारदा तिलक मे गणपति के 32 रूपो का उल्लेख प्राप्त हुआ है। शारदा तिलक मे 51 तथा गणेश पुराण मे 50 स्वरूपो का विवरण प्राप्त होता है। गणेश का अग्रपूजक स्वरूप पौराणिक काल से ही भारतीय उपासना पद्धति मे प्रचलित रहा है। कालान्तर मे गणेश उपासना पद्धति पूर्णतया विकसित स्वरूप मे प्राप्त होने लगी जिसमे जप, तप, आचमन, प्राणायाम, षोडशोपचार, मातृपूजन, भूतशुद्धि, मूर्तिपूजन आदि क्रियाविधियॉ शामिल हुई। प्रस्तर, स्फटिक, रत्नकाचन, मृत्तिका, काष्ठ द्वारा निर्मित मूर्तियो द्वारा गणेश पूजा का विधान था। विभिन्न प्रकार के व्रत, उपवास तथा कुछ व्रतो के दौरान मूर्ति स्थापन व व्रत समाप्त होने पर रात्रि जागरण, गाजे-बाजे के साथ नृत्य करते हुये मूर्ति विसर्जन हेतु जाने की परम्परा का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

गणेश पुराण मे गणेश के सगुण-साकार स्वरूप का वर्णन होने के बावजूद उन्हे निर्गुण-निराकर परब्रह्म के स्वरूप से युक्त माना गया है, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नियन्ता है। गणेश पुराण के इस पक्ष पर उपनिषद्, साख्य, योग, वेदान्त दर्शनो का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। साख्य, योग, वैष्णव धर्मो से भी गणेश उपासना पद्धति व गाणपत्य सम्प्रदाय अत्यन्त प्रभावित हुआ। इन परम्पराओ ने गाणपत्य धर्म की महत्ता मे विशेष वृद्धि की तथा ब्रह्मा, विष्णु व शिव तथा गणेश के मध्य पूर्ण एकात्मकता स्थापित हुयी। गाणपत्य साहित्य मे गणेश को इन तीनो देवो से उच्च स्थापित किया गया। गणेश की महत्ता को सर्वोपरि बताया गया। गणेश का कालान्तर मे शक्ति के साथ भी तादात्म्य स्थापित किया गया। मदिरो मे पचायतन पूजा का प्रचलन हो चुका था।

गाणपत्य धर्म तत्रोपासना से पूर्णत प्रभावित हो रहा था। क्योकि तत्रोपासना मे वर्ण, धर्म, लिग तथा अन्य प्रवृत्तियो का विचार किये बिना सभी सम्प्रदायो एव वर्ग के लोगो को समान आचरण की स्वतन्त्रता उपलब्ध थी। इस प्रवृत्ति के कारण जन सामान्य की न केवल धार्मिक प्रत्युत सामाजिक आवश्यकताओ की भी पूर्ति हो रही थी। तन्त्रोपासनान्तर्गत शूद्र तथा स्त्रियो को उपासना की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। तन्त्र मे विविध चिकित्सक तथा ज्योतिषियो के रूप मे जनसामान्य की सेवा करते थे। इसप्रकार तन्त्र-दर्शन समाज के अन्तरग जीवन मे प्रविष्ट होकर गाणपत्य धर्म को लोकप्रिय बना रहा था।

गणेश पुराण के रचनाकार ने गणेश के व्यक्तित्व मे वह सभी चारित्रिक विशिष्टताये सम्मिलित की हैं जो रुद्र, शिव, वरुण, कुबेर, कार्तिकेय व दुर्गा मे हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दू, बौद्ध तथा विभिन्न आगम परम्पराओ से भी इनका सम्बन्ध स्थापित किया है। तात्रिको ने गणेश को शक्ति के साथ सम्बद्ध कर उनके सम्मान मे विभिन्न प्रकार के मत्र की रचना की है। इस रूप मे गणेश को मत्रमति के रूप मे प्रतिस्थापित करते थे। जिसके पीछे दर्शन यह था कि मत्रपति की पूजा उन्हे विभिन्न काली छायाओ से बचाती है। उच्छिष्ट गणेश गुह्यचक्ररत, गुह्यागम निरूपिता यह प्रमाणित करते हैं कि तत्र परम्परा मे गणेश का महत्व किसी भी रूप मे वामचक्र से कम नही था।

गणेश पुराण मे तात्रिक यन्त्र-पूजा को भी एक माध्यम के रूप मे स्वीकार किया गया है। गणेश उपासको को यह निर्दिष्ट किया जाता है कि मत्र, सध्या, न्यास को सम्पादित करने के लिये आगम निर्देशो का अनुपालन सुनिश्चित किया जाये। गणेश पुराण मे यह भी उल्लिखित है कि तांत्रिक पद्धतियो से गणेश की पूजा व विभिन्न प्रतीक-चिन्हो से उन्हे जोड़ने के बावजूद 'गणानां त्वा', ऋग्वैदिक मत्र इन सभी आगमिक परम्पराओ से उत्कृष्ट है।

गणेश की मूर्ति-पूजा के विकास तथा प्रसार मे वृहत्सहिता, गणेश पुराण, मुद्गल पुराण, अग्निपुराण मत्स्यपुराण, विष्णु धर्मोत्तर पुराण, विश्वकर्माशिल्प, रूपमण्डन, अशुमदभेदागम, सुप्रभेदागम, विश्वकर्मशास्त्र, पूर्वकरणागम शिल्परत्न, मानसोल्लास, पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण, भविष्यपुराण, वाराहपुराण, नारद पुराण, गरुण पुराण आदि का विशिष्टतम योगदान रहा है।

शुभ लक्षणो से युक्त प्रतिमा कल्याण करने वाली मानी जाती थी। गणेश प्रतिमा-पूजा के साथ ही उनके परिवार, पार्षद व अनुचरो का भी महत्व बढ़ गया। गणेश के साथ उनके वाहन रूप मे मूषक, मयूर, सिह तथा उनकी शक्तियो, सिद्धि-बुद्धि, कही-कही कार्तिकेय व स्कन्द आदि का अकन भी प्राप्त होता है। गणेश की प्राचीनतम मूर्तियॉ यक्षो और नागो की प्रतिमाओ का प्रतिरूप हैं। यक्ष और नागो की पूजा ईसा से भी कई शताब्दी पहले भारत मे प्रचलित थी। अमरावती से प्राप्त एक शिलापट्ट पर यक्ष का अकन प्राप्त होता है, जिसके कान बड़े है। किन्तु मुख यक्ष का नही है। जयपुर के रेह नामक स्थान से (प्रथम शताब्दी ई पू से प्रथम शताब्दी ई) की मिट्टी की बनी विनायकी की मूर्ति प्राप्त हुयी। मथुरा से (दूसरी शताब्दी ई) प्राप्त मूर्ति पर गजमुखी यक्षो का अकन मिलता है। इन साक्ष्यो के आधार पर कुमारस्वामी, वी एस अग्रवाल आदि यह मानते है कि गणेश की मूर्तियो का विकास इन गजमुखी यक्षो की प्रतिमाओ से हुआ होगा। कुछ विद्वान इस मत को स्वीकार नही करते। यद्यपि इतना स्पष्ट है कि प्रारम्भिक गुप्त युग तक स्वतन्त्र रूप से गणेश की कुछ स्थानक मूर्तियॉ मथुरा से तथा इन्ही की समकालीन आसन-मूर्तियाँ भूमरा से प्राप्त होती हैं।

गणेश का हिन्दू देवमण्डल मे जैसे-जैसे स्थान महत्वपूर्ण होता गया, वैसे-वैसे उनके स्वरूप, भुजाओ, आयुधो, अलकरण मे भी विविधता व जटिलता बढती गयी। प्रारभ मे (प्रथम से चौथी शताब्दी) गणेश प्रतिमाये साधारण, द्विभुजी, अलकारविहीन तथा वाहन विहीन स्वरूप मे अकित हैं। द्विभुजी गणेश का स्वरूप साहित्य मे भी कम प्राप्त होता है। किन्तु कालान्तर मे चतुर्भुजी, षडभुजी, दसभुजी, द्वादशभुजी, षडादशभुजी प्रतिमाओ का साहित्य व प्रतिमा विज्ञान दोनो ही क्षेत्रो मे प्रमाण प्राप्त होने लगा। इन्हे वैष्णव व शैव परम्परा से जोड़ते हुये विष्णु व शिव से उच्च स्थान पर स्थापित किया गया। अत उनके आयुधो मे त्रिशूल, शख, चक्र, गदा, खड्ग, वज्र, पाश, टूटा हुआ दात आदि वर्णित हैं जो शिव, विष्णु, गणेश के समन्वय का भाव प्रतिबिम्बित करते हैं। गणेश ने शिव की ही भाँति मस्तक पर अर्द्ध चन्द्रमा और यज्ञोपवीत के रूप मे सर्प धारण किया है। पूर्व मध्यकाल मे पायी जाने वाली गणेश प्रतिमाओ का स्वरूप विधान गणेश पुराण मे प्राप्त प्रतिमा-लक्षण से साम्य रखता है।

गणेश_पुराण मे गणेश के मदिरो का स्थापत्य शास्त्र के सदर्भ मे उल्लेख प्राप्त नही होता। कुछ महत्वपूर्ण स्थलो के नाम अवश्य प्राप्त होते हैं—जैसे विष्णु ने सिद्धि क्षेत्र मे गणेश का स्फटिक का विशाल मदिर बनवाया, उसका शिखर स्वर्ण का था। उसमे चार द्वार थे। मदिर सुन्दर शोभा से सम्पन्न था। एक अन्य स्थल पर, वामन द्वारा रत्नकाचन जटित मदिर बनवाने, शकर द्वारा त्रिपुर विजय पश्चात् गणेशपुर मे रत्न और स्वर्ण से भव्य मदिर बनवाने, गृत्समद द्वारा पुष्पक क्षेत्र मे विशाल मदिर के निर्माण का उल्लेख प्राप्त होता है। गणेश पूजा के प्रसिद्ध केन्द्रो के सन्दर्भ मे इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रारभ मे गणेश को अन्य देवताओ के साथ मदिर मे स्थान मिला था। 13वी शताब्दी के पश्चात् ही गणेश के स्वतत्र मदिरो का निर्माण हुआ होगा। होयसल शासको की प्राचीन राजधानी हेलेविद मे होयसलेश्वर मदिर की स्थापना विष्णुवर्धन द्वारा (1121 ई) मे कराई गयी। इस मदिर मे नृत्तगणपति की सुन्दर मूर्ति स्थापित है। 12वी-13वी शताब्दी के लगभग तजौर जनपद के पट्टीश्वरम् मे निर्मित शिव मदिर मे प्रसन्न गणपति की त्रिभग प्रतिमा प्रतिष्ठित है। 15वी शताब्दी के लगभग निर्मित नेगापरम् के नीलायताक्षी यमन मदिर मे उच्छिष्ट गणपति की मूर्ति स्थापित है। 1446 ई मे पाड्य शासक अरिकेसरि ने तेनकाशी मे विश्वनाथ स्वामी का मदिर बनवाया, जिसमे लक्ष्मी गणपति की मूर्ति स्थापित है। इसी काल के कुम्भकोणम् के नागेश्वर स्वामी मदिर मे उच्छिष्ट गणपति की मूर्ति प्रतिष्ठित है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि गणेश पुराण मे पूर्व मध्यकालीन सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक प्रवृत्तियो का निरूपण जगह-जगह होने के कारण उसकी तिथि 1100-1400 ई के मध्य रखी जा सकती है। यह भी उल्लेखनीय है कि इस पुराण मे ऐसे अनेक सन्दर्भ मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि गणेश उपासना मे जनजातीय तत्व भी कर्मकाण्ड के अग के रूप मे समाहित हो रहे थे। जैसे, गणेश के इक्कीस नामो के उच्चारण का उल्लेख प्राप्त होता है। उन्हे इक्कीस फल, इक्कीस दूर्वा के टुकड़े, इक्कीस मुद्राये समर्पित करने का विधान प्रस्तुत किया गया है। इसीप्रकार विनायक चतुर्थी व्रत के अवसर पर गणेश की प्रतिमाओ को छत्र, ध्वज इत्यादि से सुसज्जित करके मनुष्यो द्वारा खीचे जाने वाले रथ मे ले जाने का जो उल्लेख है उसमे सामन्ती प्रभाव दिखायी देता है। जन जातीय तत्वो का पौराणिक परम्परा मे समावेश यद्यपि प्राचीन काल से ही प्रारभ हो चुका था परन्तु उसमे तीव्रता पूर्व मध्यकाल मे ही दृष्टिगत होती है। इसी प्रकार धार्मिक क्षेत्र मे सामन्तवादी व्यवस्था के आधार पर देवताओ के स्तरीकरण तथा उनकी उपासना मे ऐश्वर्य एव प्रभुता का समावेश पूर्व मध्यकालीन देन है।

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि गणेश पुराण गाणपत्य सम्प्रदाय का महत्वपूर्ण प्राचीन ग्रन्थ है। यह इस सम्प्रदाय का आधारभूत सग्रह है। स्वय इस ग्रथ मे भी इसे उपपुराण कहा गया है। इसके माध्यम से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि 13वी-14वी शताब्दी तक गणेश की उपासना परम्परा का उत्कर्ष अपने चरम पर पहुँच गया तथा यह परम्परा उत्तरोत्तर विकास करती रही। धीरे-धीरे गणेश धर्म के साथ-साथ कला, साहित्य व जातीय परम्पराओ मे इसप्रकार समीकृत हुए कि आज भारतीय समाज की धार्मिक आवश्यकताओ तथा हिन्दू जीवन पद्धति के अनिवार्य अग बन गये है।

गणेश पुराण के सास्कृतिक अध्ययन के दौरान इस पुराण से सन्दर्भित लगभग हर महत्वपूर्ण पक्ष पर अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन मे यथासभव नवीनता एव अनुल्लिखित पक्षो को सन्निवेशित करने की चेष्टा की गयी है। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एव दार्शनिक पटलो को सम्यक रूप से विश्लेषित एव समीक्षित करने का प्रयास भी किया गया है। इस अध्ययन के पूर्व गणेश पुराण का हिन्दी अनुवाद करना भी एक अनिवार्य एव श्रमसाध्य प्रक्रिया थी। इन कार्यो को पूर्ण मान लेना तर्कसगत नही होगा तथापि गणेश पुराण का तिथि निर्णय, उसका सामाजिक परिप्रेक्ष्य मे विश्लेषण, गणेश पुराण मे वर्णित आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक स्थिति का पूर्व मध्यकालीन परिप्रेक्ष्य मे विवेचन, गाणपत्य धर्म, दर्शन व सम्प्रदाय पर समकालीन अन्य धर्म, दर्शन के प्रभाव तथा तात्रिक प्रभाव, गणपति प्रतिमा-विज्ञान एव मदिरो का सागोपाग विवेचन तथा इन सब विषयो की ऐतिहासिक निष्पक्षता से समालोचना करने का प्रयास किया है।

□□

परिशिष्ट

- सकेत
- शोध पत्रिकाएँ
- मूल ग्रथ
- सहायक ग्रथ
- चित्र

संकेत

ABORI	एनाल्स ऑफ द भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इस्टीट्यूट
ASIAR	आर्केलॉजिकल सर्वे आफ इण्डियन एनुअल रिपोर्ट
ASI	आर्केलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया
BHU	बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी
CII	कारपस इस्क्रिप्शस इण्डिकारम
EA	इपिग्रेफिका एथ्रिका
EI	इपिग्रेफिका इण्डिका
IHQ	इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली
JBBRAS	जर्नल ऑफ द बॉम्बे ब्राच ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसायटी
JBORS	जर्नल ऑफ द बिहार एण्ड उडीसा रिसर्च सोसायटी
JBRS	जर्नल ऑफ द बिहार रिसर्च सोसायटी
JESHO	जर्नल ऑफ द इकॉनामिक एण्ड सोशियल हिस्ट्री ऑफ द ओरियट
JGJRI	जर्नल ऑफ द गगानाथ झा रिसर्च इस्टीट्यूट
JUPHS	जर्नल ऑफ द उ प्र हिस्टारिकल सोसायटी
SII	साउथ इण्डियन इस्क्रिप्शस

शोध-पत्रिकाएँ

इण्डियन आर्कियोलाजी-ए रिव्यू, नयी दिल्ली

इण्डियन एन्टीक्वेटी, बुम्बई

इण्डियन कल्चर, कलकत्ता

इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, कलकत्ता

एशियन्ट इण्डिया, पेशावर (पाकिस्तान)

एशियन्ट इण्डिया (बुलेटिन आफ द आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया) नयी दिल्ली

एपिग्रेफिया इण्डिका

एन्युअल रिपोर्ट आफ आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया

एनाल्स आफ भण्डारकर ओरियटल रिसर्च इस्टीट्यूट, पूना

भारतीय विद्या, बम्बई

जर्नल आफ आध्र हिस्टारिकल रिसर्च सोसायटी

जर्नल आफ द एशियाटिक सोसायटी आफ बगाल, कलकत्ता

जर्नल आफ इण्डियन हिस्ट्री

जर्नल आफ द गगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद

जर्नल आफ इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज, इलाहाबाद

जर्नल आफ उत्तर प्रदेश हिस्टारिकल सोसायटी

जर्नल आफ बिहार एण्ड उडीसा रिसर्च सोसायटी,पटना

जर्नल आफ द न्यूमिस्मेटिक सोसायटी आफ इण्डिया

प्रोसीडिंग्स आफ इण्डियन हिस्ट्री काग्रेस

पुराणम्, आल इण्डिया काशीराज ट्रस्ट, रामनगर, वाराणसी

विशेश्वरानन्द इण्डोलाजिकल जर्नल, होशियारपुर

मैन इन इण्डिया, राची

पुराणा (हाफ इयरली बुलेटिन आफ द पुराणा डिपार्टमेट, आल इण्डिया काशीराज ट्रस्ट) वाराणसी

मूल ग्रंथ

सहिता

ऋग्वेद सहिता – मैक्समूलर (स / अनु) लन्दन, 1849-1874

अथर्ववेद – एस पी पण्डित (स) मुबई, 1895-1898

सामवेद – बी एच सातवलेकर (स) सूरत, 1958

यजुर्वेद सहिता – ग्रिफिथ (अनु)

ब्राह्मण-ग्रथ

ऐतरेय ब्राह्मण – मार्टिन हैथ (स /अनु) मुबई, 1863

ऐतरेय आरण्यक – बी एच कीथ (अनु) आक्सफोर्ड, 1909

शतपथ ब्राह्मण – सेक्रेड बुक आफ द ईस्ट, भाग-12, 26, 41, 46 आक्सफोर्ड, 1882-1900

तैत्तरीय ब्राह्मण – एच एच आप्टे (अनु) पूना, 1898

उपनिषद् साहित्य

ऐतरेय उपनिषद् – गीता प्रेस, गोरखपुर, 1961

बृहदारण्यक उपनिषद् – गोरखपुर, 1968

छान्दोग्य उपनिषद् – गोरखपुर, 1962

द उपनिषदाज – मैक्समूलर (स)

माण्डूक्य उपनिषद् – गोरखपुर 1967

सूत्र साहित्य

आपस्तभ गृहसूत्र – एच ओल्डनबर्ग (अनु)

आपस्तभ धर्मसूत्र – जी वूलर (स) 1892, 1894

आपस्तभ श्रौतसूत्र – गार्वे (स), कलकत्ता, 1882, 1902

बोधायन धर्मसूत्र – पी वी काणे (हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्राज)

बोधायन श्रौत सूत्र – डब्लू कलन्द (स) कलकत्ता, 1904-23

गोमिल गृहसूत्र – एच ओल्डनबर्ग (अनु) सेक्रेड बुक आफ द ईस्ट, भाग-3

गौतम धर्मसूत्र – सेक्रेड बुक आफ द ईस्ट (अनु)

कात्यायन श्रौतसूत्र – विद्याधर शर्मा (स) बनारस,1933

काठक गृहसूत्र – डब्लू कलन्द (स), लाहौर, 1925

मानव गृहसूत्र – रामकृष्ण हर्ष जी शास्त्री (स) ओरियन्टल सिरीज, बड़ौदा, 1926

पराशर गृहसूत्र – गोपाल शास्त्री (स) बनारस, 1926

स्मृति साहित्य

मनुस्मृति – पूना, 1937

पराशर स्मृति – बामन शास्त्री (स), मुबई

याज्ञवल्क्य स्मृति – पूना, 1937

महाकाव्य

महाभारत – पचानन तर्करत्न (स) कलकत्ता, 1826

रामायण – अमरेश्वर ठाकुर (स) कलकत्ता, 1929

काव्य तथा नाट्य-साहित्य

कुमार सभव (कालिदास) – आर टी एच ग्रिफिथ (स) लदन, 1979

मालती माधव (भवभूति) – चौखम्बा, वाराणसी, 1971

ऋतुसहार (कालिदास) – मुंबई, 1922

रघुवश (कालिदास) – जी आर नन्दर्गीकर (स / अनु) बाम्बे, 1976

उत्तर रामचरित (भवभूति) – पी बी काणे (स) मुबई, 1929

पुराण साहित्य

अग्नि पुराण – पचानन तर्करत्न (स)

ब्रह्मपुराण – तारणीश झा (स) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 1976

ब्राह्माण्ड पुराण – क्षेमराज श्रीकृष्ण (स) मुबई, 1906

ब्रह्मवैवर्त पुराण – क्षेमराज श्रीकृष्ण (स) मुबई, 1906

ब्रह्मनारदीय पुराण – पी एच शास्त्री (स) विब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, 1891

भविष्य पुराण – वेकटेश्वर प्रेस, बाम्बे, 1910

भागवत पुराण – टी के कृष्णामचारी (स), मुबई, 1916

देवी पुराण – पी के शर्मा (स) दिल्ली, 1978

देवी भागवत पुराण – बी डी बासु (स) स्वामी विजयानन्द (अनु), पाणिनि कार्यालय, इलाहाबाद

गणपति उपनिषद्

गणपति अथर्वशीर्ष उपनिषद् एक सौ आठ उपनिषद्, चौथा सस्करण, बम्बई 1913

गणेश पूर्वतापिनी उपनिषद

गणेश पुराण – कियोशी थोरोई (अनु)

गरुड पुराण – जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य (स), कलकत्ता, 1810

कलिका पुराण – वेकटेश्वर प्रेस, मुबई, 1908

कूर्म पुराण – बिब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, 1890

लिड पुराण – बिब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, 1885

मत्स्य पुराण – हरिनारायण आप्टे (स), पूना 1907

मार्कण्डेय पुराण – क्षेमराज श्रीकृष्णदास (स), मुम्बई

नारदीय पुराण – वेकटेश्वर प्रेस, मुम्बई, 1905

पद्म पुराण – एम सी आप्टे (स.), आनन्दाश्रम सस्कृत ग्रथावली, पूना 1893-94

शिव पुराण – पचानन तर्करत्न (स), बगवासी प्रेस, कलकत्ता, वि स 1314

स्कन्द पुराण – वेकटेश्वर प्रेस, मुम्बई, 1910

साम्ब पुराण – वेकटेश्वर प्रेस, मुम्बई, 1889

सौर पुराण – आनन्दाश्रम सस्कृत ग्रथावल, पूना, 1924

वाराह पुराण – पी एच शास्त्री (स), कलकत्ता, 1893

वामन पुराण – वेकटेश्वर प्रेस, मुम्बई, 1929

वायु पुराण – हरिनारायण आप्टे (स) पूना, 1905

विष्णु पुराण – गीता प्रेस, गोरखपुर, 1969

विष्णुधर्मोत्तर पुराण – वेकटेश्वर प्रेस, मुम्बई, 1912

शिल्पशास्त्र एव आगम साहित्य

अशुमद्भेदागम – आनन्दाश्रम सस्कृत सिरीज पूना, 1900

वृहत्सहिता – एच कर्न (स) बिब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, 1864

बृहज्जातक – बी सूर्यनारायण राव (स /अनु) बगलौर, 1957

पूर्व करणागम – एपिन्डेसेज इन इलीमेन्टस आफ हिन्दू आइक्नोग्राफी

रूपमण्डन – बलराम श्रीवास्तव (स), वाराणसी, वि स -2001,

शिल्परत्न – श्रीकुमार, त्रिवेन्द्रम, 1922

समाराग सूत्रधार – टी गणपति शास्त्री (स),बडौदा

बैखानसागम – के एस शास्त्री (स) त्रिवेन्द्रम

बौद्ध एव जैन साहित्य

जातक – ई वी कावेल (अनु) लन्दन, 1957

नित्योत्सव – उमानन्द, गायकवाड़ सस्कृत सिरीज, 1923

प्रपचसार – शकराचार्य, 14 सस्करण, 1936

शारदा तिलक – लक्ष्मण देशिकेन्द्र, सस्कृत सिरीज तथा तान्त्रिक टेक्स्ट काशी, 1934

तत्रसार – निर्णय सागर प्रेस, मुबई, 1918

विष्णु सहिता - सस्कृत सिरीज, त्रिवेन्द्रम
यशस्तिलक - सुन्दरलाल शास्त्री (अनु) वाराणसी, 1960

विविध

अर्थशास्त्र - आर रामाशास्त्री (स /अनु) मैसूर, 1929
अष्टाध्यायी - निर्णय सागर प्रेस (स), मुबई, 1955
अपरार्क - टीका, याज्ञवल्क्य स्मृति आनन्दाश्रम सस्कृत सिरीज
हरिभक्ति विलास - गोपाल भट्ट (स) कलकत्ता, 1318
कृत्य कल्पतरु - लक्ष्मीधर, ओरिएन्टल इस्टीट्यूट, बड़ौदा
कृत्य रत्नाकर - पण्डेश्वर, पाण्डुलिपि सख्या-1055 सी, ढाका यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी
काल निर्णय - मध्वाचार्य, बिब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, 1809 शक
निरुक्त - यास्क, लक्ष्मण स्वरूप (अनु), 1962
शब्द कल्पद्रुम - राधाकान्त देव, चौखम्बा सस्कृत सिरीज, वाराणसी, 1967
शुक्रनीति सार - बी के सरकार (अनु), पाणिनि कार्यालय, इलाहाबाद, 1914
स्मृति चन्द्रिका - देवभट्ट, एल पी श्रीनिवासाचार्य (स) मैसूर, 1914-21
सस्कार रत्नमाला - गोपीनाथ भट्ट, आनन्दाश्रम प्रेस, चौखम्बा
वीर मित्रोदय - मित्र मिश्र, वी पी भण्डारी (अनु) कलकत्ता, 1879

सहायक ग्रंथ

A

अग्रवाल, बी एस – गुप्ता आर्ट

– मार्कण्डेय पुराण, एक सास्कृतिक अध्ययन, इलाहाबाद, 1961

– हर्षचरित, एक सास्कृतिक अध्ययन

– मथुरा कला

अली एस एम – द जियोग्राफी आफ द पुराणाज, दिल्ली, 1966

अरोरा आर के – हिस्टारिकल एण्ड कल्चरल डाटा फ्राम द भविष्य पुराण, नयी दिल्ली, 1967

अवस्थी, आर ए – खजुराहो की देव प्रतिमाएँ, आगरा, 1967

आल्टेकर, ए एस – राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स, पूना, 1934

आप्टे, वी एस – सोशल एण्ड रिलिजस लाइफ इन द गृह्यसूत्राज, मुबई, 1954

आल्टेकर, ए एस – द पोजीशन आफ वूमन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, बनारस, 1956, ऐनुवल रिपोर्ट्स आफ आर्कोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया

अब्राहम, मीरा – द मेडिवल मर्चेन्ट्स आफ साउथ इण्डिया, मनोहर पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1988

अग्रवाल, वी एस – मत्स्य पुराण-ए स्टडी, वाराणसी 1963

– वामन पुराण-ए-स्टडी, वाराणसी, 1964

– कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, वाराणसी, 1970

– मार्कण्डेय पुराण-एक सास्कृतिक अध्ययन, इलाहाबाद

– हर्षचरित, एक सास्कृतिक अध्ययन, पटना, 1964

– स्टडीज इन इण्डियन आर्ट, वाराणसी, 1965

B

बनर्जी, जे एन - डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइक्नोग्राफी, कलकत्ता, 1956

भण्डारकर, डी आर - सम आस्पेक्ट्स आफ एशियन्ट इण्डियन कल्चर, मद्रास, 1940

भण्डारकर, आर जी - वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजस सिस्टम, बनारस, 1965

भट्टाचार्य, एन एन - हिस्ट्री आफ शाक्त रिलिजन

भट्टाचार्य, आर एस - इतिहास पुराण का अनुशीलन, वाराणसी, 1963

भट्टाचार्य, बी सी - इण्डियन इमिजेज, भाग-1 ब्रह्मानिक आइक्नोग्राफी, कलकत्ता, 1931

भट्टाचार्य, एम सी. - एन आस्पेक्ट्स आफ इण्डियन सोसायटी, कलकत्ता, 1978

बनर्जी, डी आर - टेम्पिल आफ शिव एट भूमरा, आर्कोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया

ब्राउन, आर.एल - गनेश, स्टडीज इन तत्र, कलकत्ता, 1920

बद्योपाध्याय, एन सी - इकोनामिक लाइफ एण्ड प्रोग्राम इन एशियन्ट इण्डिया, कलकत्ता,1941

बाशम, ए एल - द वन्डर दैट वाज इण्डिया, लंदन, 1931

ब्लन्ट, ई.ए एच - कास्ट सिस्टम इन नार्दन इण्डिया, 1931

बोस, ए एन - सोशल एण्ड रूरल इकोनॉमी आफ नार्दन इण्डिया, कलकत्ता 1945

वहन्नेमन गदरन - द वरशिप आफ महागनपति अकार्डिंग टु द नित्योल्लास, इस्टीट्यूट फार इडियोलाजी, स्विट्जरलैण्ड, 1988

C

चक्रवर्ती, सी - द तत्राज स्टडी आन देयर रिलिजन एण्ड लिटरेचर, कलकत्ता, 1963

चक्रवर्ती, पी सी - आर्ट आफ वार इन एशियट इण्डिया, ढाक्का यूनिवर्सिटी, 1942

कार्टराइट, पी बी - गनेश: लार्ड आफ आब्स्टेकल्स, लार्ड आफ बिगिनिग्स, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1986

D

दत्ता एव चटर्जी - भारतीय दर्शन, पटना, 1982

दत्त, नलिननाथ - उत्तर प्रदेश मे बौद्ध धर्म का विकास

दुबोइस, ए - हिन्दू मैनर्स एण्ड कस्टम्स

दन्त, एन के – ओरिरिजिन एण्ड ग्रोथ आफ कास्ट इन इण्डिया, कलकत्ता, 1931

दाण्डेकर, आर एन – वैदिक माइथोलाजिकल टेक्ट्स, अजन्ता पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1979

दास, वीना – द माइथोलाजिकल फिल्म एण्ड इट्स फ्रेमवर्क आफ मीनिग। एन एनालिसिस आफ जय सतोषी मा, इण्डिया इण्टरनेशनल सेन्टर क्वार्टरली भाग-8, सख्या-1 मार्च, 1980

F

फक्र्यूहर, जे एन – एन आउटलाइन आफ द रिलीजस लिटरेचर आफ इण्डिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1920

G

गोपाल, लल्लन जी – द इकानामिक लाइफ आफ नार्दर्न इण्डिया, वाराणसी 1965

धुरे, जी एस – कास्ट, क्लास एण्ड अकूपेशन, मुम्बई 1961

गैटी, एलिस – गनेश, ए मोनोग्राफ आन एलीफैंट फेस्ड गाड, नयी दिल्ली, 1971

गुप्त, के एम – द लैण्ड सिस्टम इन साउथ इण्डिया बिट्वीन 800-1200 ए डी लाहौर 1933

H

हाजरा, आर सी – स्टडीज इन द पुराणिक रिकार्ड्स आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, ढाका, 1940

– स्ट्डीज इन द पुराणाज, भाग-1, सस्कृत कालेज रिसर्च सिरीज, सं 11, कलकत्ता 1958

– स्ट्डीज इन द पुराणाज, भाग-2 कलकत्ता, 1963

हेराज, एच – द प्राब्लम आफ गनपति, दिल्ली, 1972

हिल, एस सी – ओरिजिन इन कास्ट सिस्टम इन इण्डिया बम्बई 1930

हायकिन, ई डब्लू – द रिलीजन्स आफ इण्डिया, नयी दिल्ली, 1972

J

जिमर, एच – मिथ एण्ड सिम्बल्स इन इण्डियन आर्ट एण्ड सिविलाइजेशन, न्यूयार्क, 1946

जोशी, एन पी – प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1977

K

काणे, पी वी – हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग 1-5, भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इस्टीट्यूट, पूना 1930-62

कीथ, ए वी – ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर, आक्सफोर्ड, 1928

कुमारस्वामी, ए के – हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इन्डोनेशियन आर्ट, लदन, 1927

कौशाम्बी, डी डी – द कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन आफ एशियन्ट इण्डिया इन हिस्टारिकल आउटलाइन, लन्दन, 1965

– एन इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी आफ इण्डियन हिस्ट्री, बाम्बे, 1956

– मिथ एण्ड रियलटी, मुबई, 1962

– द कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन आफ इण्डिया, बाम्बे, 1965

क्रैमरिश स्टेला – इण्डियन स्कल्पचर

M

मजूमदार, बी पी – सोशियो-इकोनामिक हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया (1030-1194ई), कलकत्ता, 1960

मिराशी, वी पी – कारपस इसक्रिप्शस इडिकेरम, जिल्द 4, भाग-1 एव 2 उटकमड, 1955

मिश्र, इन्दुमती – प्रतिमा विज्ञान, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रथ अकादमी, भोपाल, 1972

मैकडानल, ए ए – वैदिक माइथालाजी, वाराणसी, 1963

मित्र, हिरिहास – गणपति, शान्ति निकेतन, 1959

माकन्ड, डी आर – पौराणिक क्रोनोलाजी

मिश्रा, ओ पी – इडियोग्राफी आफ द सप्तमातृक्स, दिल्ली, 1989

मिश्रा, आर एन – यक्ष कल्ट एण्ड इडियोग्राफी, नयी दिल्ली, 1981

N

नियोगी, पुष्पा – ब्राह्मणिक सेटेलमेट इन डिफरेट सब डिवीजन्स, कलकत्ता, 1967

नियोगी, जी – द इकोनामिक हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया, कलकत्ता, 1962

नेगी, जे एस – सम इण्डोलाजिकल स्टडीज, भाग-1, इलाहाबाद, 1966

नागर, शातिलाल – द कल्ट आफ विनायक, नयी दिल्ली, 1992

O

ओझा,जी एच – भारत की मध्यकालीन सस्कृति, इलाहाबाद, 1945

ओम प्रकाश – पोलिटिकल आइडियाज इन पुराणाज, इलाहाबाद, 1977

P

पाण्डेय, जी सी – द मीनिग एण्ड प्रोसेस आफ कल्चर, आगरा, 1972

पाण्डेय, आर बी – हिन्दू सस्काराज, वाराणसी, 1949

पार्जीटर, एफ ई – द पुराण टेक्स्ट्स आफ डायनस्टीज आफ द कलिएज, आक्सफोर्ड, 1913

प्रभु, पी एन – हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन, मुबई, 1958

पुरी, के एन – इग्जकैवेशन एट राइर, जयपुर

पाठक, वी एस – हिस्ट्री आफ शिवा कल्ट्स इन नार्दन इण्डिया, वाराणसी, 1960

R

राय, एस एन – पौराणिक धर्म एव समाज, पचनद पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1968

– हिस्टारिकल एण्ड कल्चरल स्टडीज इन द पुराणाज, पुराणिक पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1977

राय, यू एन – स्टडीज इन एशियन्ट इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, वाल्यूम 1, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1969

राव, गोपीनाथ – इलीमेण्ट्स आफ हिन्दू आइक्नोग्राफी, मद्रास, 1914-16

रेनोडाट, ई – एशियन्ट अकाउन्ट्स आफ इण्डियन एण्ड चाइना बाई टू मोहम्मडन ट्रैवैलर्स, लन्दन, 1733

राव, एस के – गणेश कोश, बगलौर, 1992

S

शर्मा, बी एन - विनायक, नयीदिल्ली 1972

शर्मा, आर एस - इण्डियन फ्यूडलिज्म, कलकत्ता 1965

- पूर्व मध्यकालीन भारत मे सामाजिक परिवर्तन, दिल्ली, 1969

- मैटीरियल कल्चर एण्ड सोशल फार्मेशन्स इन एशियन्ट इण्डिया, दिल्ली, 1983

शर्मा,बी एन - सोशल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री आफ नादर्न इण्डिया (1000-1900) 1932

सरकार, डी सी - सेलेक्टेड इसक्रिप्शस, कलकत्ता, 1965

सूर्यवशी, बी सिह - द आभीराज, देयर, हिस्ट्री एण्ड कल्चर, बडौदा 1962

शास्त्री, एच कृष्णा - साउथ इण्डियन इमेजेज आफ गाड एण्ड गाडेसेज, दिल्ली, 1974

सम्पूर्णानद - गणेश

सोमयाजी, के एन - कासेप्ट आफ गनेश, बगलोर

शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ - प्रतिमा विज्ञान, प्रतिमा लक्षण

सरस्वती, एस के - ए सर्वे आफ इडियन स्कल्पचर, दिल्ली, 1972

सचाऊ, ई सी - अल्बरुनीज इण्डिया, लदन, 1888

सरस्वती, विद्यानाथ - काशी मिथ्स एण्ड रियलिटी, शिमला, 1975

शर्मा, आर एस एव झा, डी एन - द इकोनामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया अप टु ए डी , 1200, ट्रेन्ड्स एण्ड प्रास्पेक्ट्स

शास्त्री, एच के - साउथ इण्डियन इमेजेज आफ गाड्स एण्ड गाडसेज मद्रास 1916

शिव राममूर्ति, सी - इण्डियन स्कल्पचर, नयी दिल्ली, 1961

T

टायनबी, ए - एन हिस्टोरियन एप्रोच टु रिलिजन, लदन, 1956

तिवारी, रमेश तथा सुरेश - पुराणशास्त्र एव जनकथन (अनु)

थापन, अनिता रैना - अण्डरस्टैण्डिग गणपति, मनोहर प्रकाशन, 1998

U

उपाध्याय, बलदेव – पुराण विमर्श, वाराणसी, 1965

उपाध्याय, वासुदेव – सोशियो रिलिजस कन्डीशन आफ नार्थ इण्डिया (700-1200ई) वाराणसी, 1964

W

विटरनित्ज, एम – ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, कलकत्ता, 1950

वाटर्स, टी – आन यूवानचाग्स ट्रैवेल इन इण्डिया,

वुडराफ, सरजान – प्रिंसपल आफ तत्र, मद्रास, 1960

– शक्ति एण्ड शाक्त, मद्रास 1963

– इण्ट्रोडक्शन टू तत्रशास्त्र, मद्रास, 1969

– द गारलैण्ड आफ लेटर्स, मद्रास, 1974

– द सरपेण्ट पावर, मद्रास, 1974

विलकिन्स, इ जे – हिन्दू माइथोलाजी, दिल्ली, 1972

विल्सन, डब्लू जे – हिन्दू माइथोलाजी, रिप्रिन्ट दिल्ली

Y

यादव, निर्मला – गणेश इन इडियन आर्ट एण्ड लिटरेचर, जयपुर, 1997

युवराज, कृष्णन – अनरिवेलिग निग्मा, नयी दिल्ली, 1999

यादव, बी एन एस. – सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया इन ट्वेल्थ 198

चित्र - 1

द्विभुजी गणेश, प्रस्तर मूर्ति, मथुरा (पहली से तीसरी शताब्दी)
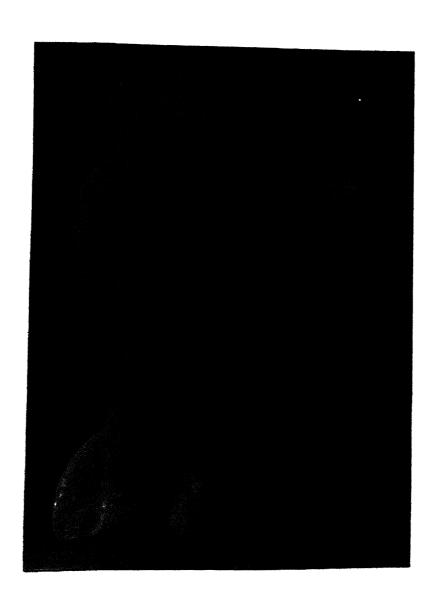
चित्र - 2

द्विभुजी गणेश, बलुआ प्रस्तर, मथुरा (पहली से तीसरी शताब्दी)
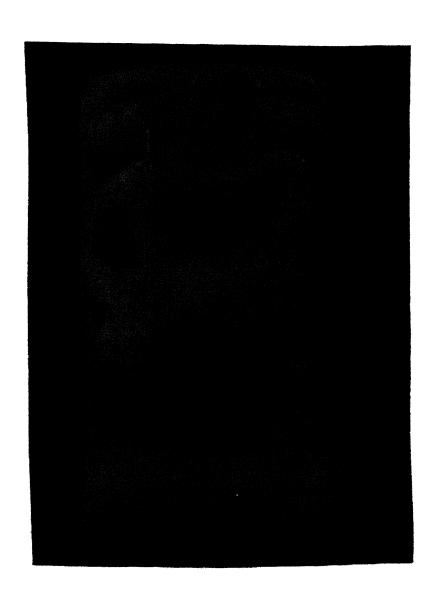
चित्र - 3

चित्र - 3

द्विभुजी गणेश, बलुआ प्रस्तर, मथुरा (चौथी-पाँचवी शताब्दी)

चित्र - 4

गणेश-कार्तिकेय, ऐलीफैन्टा (गुफा सख्या-1), महाराष्ट्र (पॉचवी-छठी शताब्दी)

चित्र - 5

नृत्य करते गणेश, बादामी (गुफा सख्या-1), जिला-बीजापुर, मैसूर (छठी शताब्दी)

चित्र - 6

गणेश, शिव मदिर, गर्भगृह-दक्षिणी भित्ति, इन्दौर, जिला-गुना, मध्य प्रदेश (आठवी शताब्दी)

चित्र - 7

बैठे गणेश, बलुआ प्रस्तर, नरेश्वर, मध्य प्रदेश (आठवी-नवी शताब्दी)
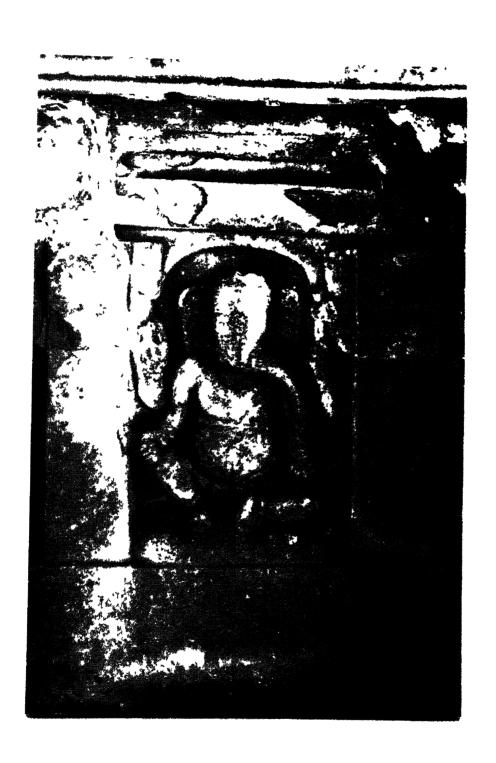
चित्र - 8

बैठे गणेश, बलुआ प्रस्तर, नदचाद गॉव, मध्य प्रदेश (नवी शताब्दी)

चित्र - 9

अष्टभुज गणेश, बलुआ प्रस्तर, भरतपुर, राजस्थान (नवी शताब्दी)
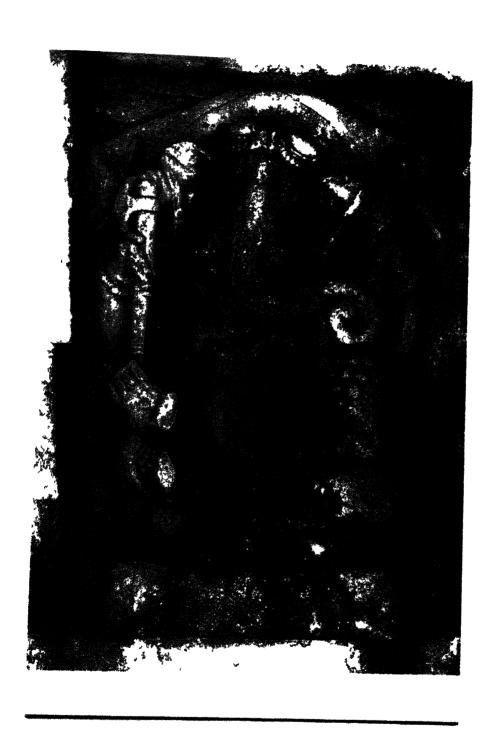
चित्र - 10

गणेश, बलुआ प्रस्तर, दहला शैली, महादेव मदिर, गढ़, जिला- रीवा, मध्य प्रदेश (दसवी शताब्दी)

चित्र - 11

गणेश-लक्ष्मी, बलुआ प्रस्तर, दहला शैली, लक्ष्मी गणेश मदिर, मध्य प्रदेश (दसवी शताब्दी)

चित्र - 12

पचविनायक, बलुआ प्रस्तर, सुरवाया, मध्य प्रदेश (दसवी शताब्दी)

चित्र - 13

नृत्य करते गणेश, बलुआ प्रस्तर, चौसठ योगिनी मदिर, भेड़ाघाट, मध्य प्रदेश (दसवीं शताब्दी)

चित्र - 14

नृत्य करते गणेश-सहवादको के साथ, इक्सारी सरन, बिहार (ग्यारहवी शताब्दी)

चित्र - 15

नृत्य करते गणपति, कौशाम्बी, उत्तर प्रदेश (ग्यारहवी शताब्दी)